अक्टूबर
१९३१

# चाँद

वर्ष ९, खण्ड २
सं० ६, पूर्ण सं० १०८

सम्पादक :—

वार्षिक चन्दा ६॥)
छःमाही चन्दा ३॥)

डॉक्टर धनीराम 'प्रेम'
एम० आर० सी० एस०, एल० आर० सी० पी० (लन्दन)

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥=)

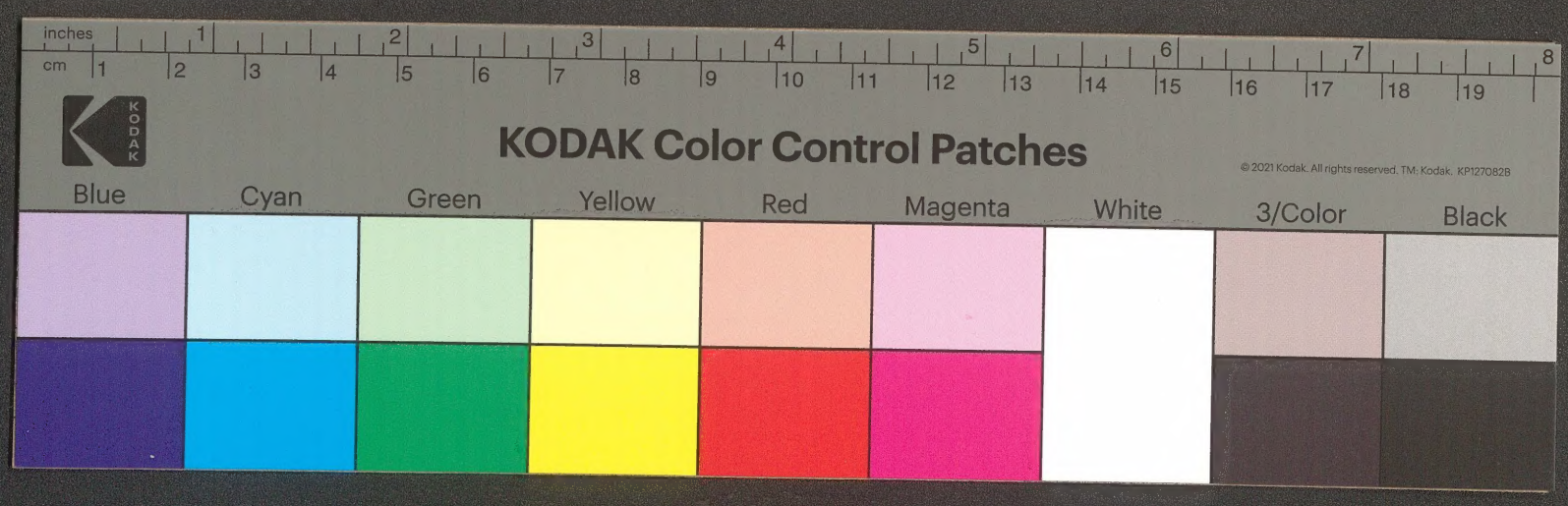

# हिन्दी के पत्र-जगत् में एक नई बात!

## सबसे बड़ा चिन्ह

'चाँद' का अक्टूबर का अङ्क, जो आपके हाथों में है!

इसमें—

(१) 'सिनेमा तथा रङ्गमञ्च', 'विज्ञान तथा वैचित्र्य', 'पुरस्कार-प्रतियोगिता' आदि स्तम्भ बिल्कुल नए हैं, जो आपको किसी और पत्र में न मिलेंगे।

(२) इसके लेखों, कहानियों तथा कविताओं का स्टैण्डर्ड ऊँचा कर दिया गया है।

भविष्य में प्रत्येक महीने—

(१) किसी सरल तथा विचित्र बात के लिए पुरस्कार दिया जायगा। नवम्बर के 'चाँद' में फिर एक पहेली निकलेगी, जिसके लिए पुरस्कार मिलेगा।

(२) चिकित्सा-विभाग द्वारा 'चाँद' के ग्राहकों के चिकित्सा-सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर दिए जायँगे।

याद रखिए, ये सब सुविधाएँ आपको 'चाँद' के स्थायी ग्राहक होने पर ही मिल सकती हैं!

### आज ही

ग्राहकों में नाम लिखाइए तथा अपने मित्रों को ग्राहक बनाइए!

नहीं तो पछताना पड़ेगा, क्योंकि—

**कुछ दिनों का विलम्ब किया और एक पुरस्कार आपके हाथ से गया**

ग्राहकों से पुरस्कार में भाग लेने की कोई विशेष फ़ीस नहीं ली जाती!

व्यवस्थापिका,
'चाँद' कार्यालय
चन्द्रलोक
इ-ला-हा-बा-द

वर्ष ९, खण्ड २

मई, सन् १९३१ से अक्टूबर, सन् १९३१ ई० तक

सम्पादक—

डॉक्टर धनीराम प्रेम

सञ्चालिका—

श्रीमती विद्यावती सहगल

'चाँद' कार्यालय

चन्द्रलोक, इलाहाबाद

मुद्रक—

फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज

इलाहाबाद

वार्षिक चन्दा ६॥) ] [ छमाही ३॥)

Printed and Published

by

SHRIMATI LAKSHMI DEVI

at

THE FINE ART PRINTING COTTAGE

28, Edmonstone Road

Allahabad

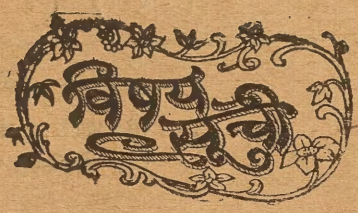


## १—गद्य


| क्रमाङ्क | लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १ | अति | श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक | ४४५ |
| २ | अनासक्त | श्री० ऋषभचरण जी जैन | ३३८ |
| ३ | अम्मा | श्री० धनीराम जी प्रेम | ६४६ |
| ४ | अवध के मुसलमान शासक | श्री० मुन्शी नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव | ५६६ |
| ५ | ईश्वर-भक्ति | श्री० नयनसिंह जी नेगी, बी० ए०, एल्-एल्० बी० | ३७ |
| ६ | ईश्वरवाद की परीक्षा | श्री० रमाशङ्कर जी मिश्र, एम० ए०, बी० एल० | ४३६ |
| ७ | उपन्यास-कला और प्रेमचन्द के उपन्यास | श्री० केशरीकिशोर शरण जी, बी० ए० (ऑनर्स), साहित्य-भूषण, विशारद | ३५७-४८६-६२७-७३० |
| ८ | एशिया में राष्ट्रीयता का विकाश | श्री० शङ्करदयालु जी श्रीवास्तव, बी० ए०, विशारद | २३ |
| ९ | कहानी-लेखक | श्री० धनीराम जी प्रेम | २०७ |
| १० | कान्यकुब्ज-ब्राह्मण-परिचय | मेजर एम० एल० भार्गव, आई० एम० एस० | ६८६ |
| ११ | गृह-विज्ञान | श्री० बी० एल० शर्मा; श्री० मोहनलाल जी मेहरा, वैद्य | १२१-३७८ |
| १२ | घरेलू दवाइयाँ | कुमारी लक्ष्मी देवी; श्रीमती चम्पावती देवी; श्रीमती शुभङ्करी देवी | ९९ |
| १३ | जलधारा | 'प्रतिमाकार' | १३७ |
| १४ | जला-भुना | श्री० धनीराम जी प्रेम | ३९३ |
| १५ | टर्की में राज-विद्रोह, मुस्लिम देश और रूस में वैमनस्य, मिश्र में अशान्ति | श्री० मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट् | १७० |
| १६ | दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह | "पागल" | ९५-२३३-३६३-४६७-६१३-७३४ |
| १७ | दुबे जी की चिट्ठी | श्री० विजयानन्द (दुबे जी) | २३८-३७०-५०२ |
| १८ | पराजय | श्री० प्रकाशदत्त जी, एम० ए० | १६१ |
| १९ | पराजय | श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक | २६५ |
| २० | पर्दा | श्री० 'रतन' | ६९७ |
| २१ | पुरस्कार-प्रतियोगिता | | ७५९ |
| २२ | प्रेत-छाया-चित्रण अर्थात् मृत व्यक्तियों की फ़ोटोग्राफ़ी | डॉक्टर गोरखप्रसाद जी, डी० एस-सी० | १७ |
| २३ | प्रोवेट | श्री० भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी० | ९ |
| २४ | बदला | श्रीमती तेजरानी पाठक, बी० ए० | ५६१ |
| २५ | भेद | 'मुक्त' | ५२१ |
| २६ | मैथिल-मनोवृत्ति | श्री० भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी० | ५८५ |
| २७ | वर्तमान मुस्लिम-जगत | "एक डॉक्टर ऑफ़ लिट्रेचर" | १५१-२७३-४२१-५३५-६५८ |
| २८ | विज्ञान और वैचित्र्य | (सम्पादक) | ७५१ |
| २९ | वीरा क्रिगनर | श्री० सुरेन्द्र शर्मा | ५४३-६७२ |

| क्रमाङ्क | लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| ३०— | वेश्या का हृदय ... ... | श्री० धनीराम जी प्रेम ... ... | .. २६७ |
| ३१— | श्रीजगद्गुरु का फ़तवा ... | हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द विरूपाक्ष | १२७-२५३-३८१-५०६-६३६-७५७ |
| ३२— | सङ्गीत-सौरभ ... ... | श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय ( नीलू बाबू ) | १२५-२४६-३७७-५०१-६३३-७५६ |
| ३३— | सत्यं धर्म सनातनः ... | श्री० राधामोहन गोकुल जी ... ... | ६६५ |
| ३४— | साम्यवाद की बाढ़ ... | डॉक्टर मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट् | २७६ |
| ३५— | साहित्य-संसार ... ... | श्री० अवध उपाध्याय; श्री० नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव ... ... | २३१-४८७ |
| ३६— | सिनेमा तथा रङ्गमञ्च ... ... | ... ... ... ... | ७५३ |
| ३७— | संयोग ... ... | श्री० अनूपलाल जी मण्डल, साहित्य-रत्न | ७२५ |
| ३८— | संसार-चक्र ... ... | मुन्शी नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव ... | १०० |
| ३९— | स्वर्गीय बाबू कृष्ण बलदेव वर्मा ... | श्री० बालदत्त जी पाण्डेय ... ... | ३४६ |
| ४०— | स्वास्थ्य और सौन्दर्य ... ... | श्री० रतनलाल जी मालवीय, बी० ए०, एल्-एल्० बी० ... | २२५-३७३-५०५-६३४-७४५ |


* * *

## रङ्ग-भूमि

( सम्पादकीय )


| | | |
|---|---|---|
| ४१— | अन्धों की समस्या ... ... | ... ... ... ... ... ४८१ |
| ४२— | अभिशाप और लज्जा ... | ... ... ... ... ... ४७१ |
| ४३— | उन्नतिशील मैसूर ... ... | ... ... ... ... ... ३६७ |
| ४४— | उपहासजनक अभिज्ञता ... | ... ... ... ... ... ४८२ |
| ४५— | एक अनुकरणीय बिल्ल ... | ... ... ... ... ... ४८२ |
| ४६— | कवि-सम्राट का प्रमाद ... | ... ... ... ... ... ३६६ |
| ४७— | गूँगे और बहिरों की समस्या ... | ... ... ... ... ... ६१८ |
| ४८— | जीवन का आदर्श और स्त्रियाँ ... | ... ... ... ... ... ४८४ |
| ४९— | नरक के अड्डे और पाप का व्यापार ... | ... ... ... ... ... ३६८ |
| ५०— | न्याय-प्रियता का आदर्श ... | ... ... ... ... ... ६२३ |
| ५१— | बज़ाज जी की सामाजिक सेवा ... | ... ... ... ... ... ६१६ |
| ५२— | बिहार राष्ट्रीय महिला-सम्मेलन ... | ... ... ... ... ... ६२० |
| ५३— | वेलफ़ेयर ऑफ़ इण्डिया लीग ... | ... ... ... ... ... ४८३ |
| ५४— | शराब-बन्दी का आन्दोलन ... | ... ... ... ... ... ६१८ |
| ५५— | स्वर्गीय देशबन्धु चितरञ्जन दास ... | ... ... ... ... ... ३६५ |


## विविध विषय


| | | |
|---|---|---|
| ५६— | अर्वाचीन भारतीय ग्रामीण-समाज | ... श्री० प्रकाशचन्द्र दत्त जी 'सहिष्णु' ... ४६५ |
| ५७— | आर्थिक उथल-पुथल का समाज पर प्रभाव | ... श्री० रामनिरीक्षण सिंह जी ... ... ३२६ |
| ५८— | आधुनिक शिक्षा पर दृष्टिपात ... | ... श्री० श्यामनारायण जी बैजल ... ... ३२४ |
| ५९— | आध्यात्मिक शिक्षा ... | ... श्री० ज्ञानमल्ल हंसराज जी जैन ... ... ४६३ |
| ६०— | कान्यकुब्जों में एकता ... | ... श्री० रामदुलारे जी दीक्षित, बी०ए०, बी० एल० ५३ |

| क्रमाङ्क | लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| ६१ | कान्यकुब्जों में सहभोज्यता | श्री० शालिग्राम जी दुबे | ७८ |
| ६२ | कान्यकुब्ज और बिस्वा-प्रथा | श्री० श्यामानन्द जी उपदेशक | २०२ |
| ६३ | कान्यकुब्ज-ब्राह्मण-परिचय | श्री० रजनीकान्त जी शास्त्री, बी ए०, बी० एल० | १८५ |
| ६४ | क्या शिखा-सूत्र वैदिक है ? | श्री० बी० भास्कर | ६०७ |
| ६५ | गृह-कलह | श्री० वृन्दावनदास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी० | १६५ |
| ६६ | चित्र | श्री० रानी रामरतन कुमारी | ७२१ |
| ६७ | चुम्बन | श्री० वंशीधर जी मिश्र, एम० ए०, एल्०-एल्० बी० | ४५६ |
| ६८ | पतितोद्धार का प्रयत्न | श्री० दण्डपाणि जी | ७१४ |
| ६६ | परदे की समस्या | श्री० वृन्दावनदास जी बज़ाज | ३११ |
| ७० | परदा उठ कर ही रहेगा | महाराजकुमारी ललितादेवी | ४६२ |
| ७१ | पारसी रङ्ग-मञ्च और हमारा नाट्य-साहित्य | श्री० अख़्तरहुसेन जी रायपुरी | १६७ |
| ७२ | बन्दी की बहिन की राखी | श्रीमती विजया देवी | ७१६ |
| ७३ | भारतीय देवियाँ और उनका आदर्श | श्रीमती इन्दिरा देवी वैद्यशास्त्री | १६३ |
| ७४ | भारतवासियों का स्वास्थ्य | श्री० दीनानाथ जी व्यास, विशारद | ४५६ |
| ७५ | भारतवर्ष के अधिपतन का कारण | श्री० स्वामी शिवानन्द जी | ७१३ |
| ७६ | महिलाओं का जेल-जीवन | श्रीमती हंसा मेहता | ६०३ |
| ७७ | महिलाओं के लिए श्री० सेखसरिया पारितोषिक | श्री० दयाशङ्कर जी दुबे, एम० ए०, एल्-एल्० बी | ७२० |
| ७८ | मारवाड़ी महिलाओं का वेष-भूषा | श्री० गोपीकृष्ण जी मोहता, बी० कॉम० | ३१४ |
| ७६ | मृतक-भोज और मेवाड़ | 'एक मेवाड़ी' | ६०६ |
| ८० | वात्सायन-कामसूत्र | श्री० विद्याधर जी, विद्यालङ्कार | ६५ |
| ८१ | वृद्ध-विवाह निषेध क़ानून की आवश्यकता | श्री० रामसकल सिंह जी, बी० ए०, बी० एल० | ५६ |
| ८२ | शक्ति-सञ्चय की आवश्यकता | श्री० हज़ारीलाल जी जैन | ७३ |
| ८३ | सनातनधर्म और अछूत | श्री० श्यामसुन्दर लाल जी दीक्षित | ६२ |
| ८४ | सी० आई० डी० विभाग में स्त्रियाँ | श्रीमती संयोगिता देवी मेहता | ४५५ |
| ८५ | स्त्री-सामुद्रिक | श्री० गणेशदत्त जी शर्मा गौड़ 'इन्द्र' | ७७ |
| ८६ | हमदर्दी | साहित्याचार्य 'मग' | ३२३ |
| ८७ | हमारी सन्तान | श्री० मोहनलाल जी बड़जात्या | ३१६ |
| ८८ | हिन्दू धर्मदाय में क्रान्ति | श्री० जीवानन्द जी डोभाल | १६६ |


* * *

## विश्व-वीणा


| | | |
|---|---|---|
| ८६ | बीसवीं सदी में भारतीय नारियाँ | ७४७ |
| ६० | स्त्रियों के वोट देने और कौन्सिलों की सदस्या होने के अधिकार | ४६७ |
| ६१ | स्त्रियों का व्यापक क्षेत्र | ४६६ |
| ६२ | स्त्रियों का स्थान | ७४६ |


* * *

## सम्पादकीय विचार


| | | |
|---|---|---|
| ६३ | दर्द की तस्वीरें | ५१५ |
| ६४ | देश का गलित कोढ़ | ५ |
| ६५ | बीसवाँ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन | २६१ |

| क्रमाङ्क | लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| ९६ | भारत का भावी शासन-विधान और स्त्रियाँ | ... ... ... ... | ... २५९ |
| ९७ | श्री० देवधर की हरीक जयन्ती | ... ... ... ... ... | ... ६४८ |
| ९८ | स्पेन में प्रजातन्त्र की विजय | ... ... ... ... ... | ... १ |
| ९९ | स्वर्गीय पं० विष्णु दिगम्बर | ... ... ... ... ... | ... ६४७ |
| १०० | स्त्रियों के जन्मसिद्ध अधिकार | ... ... ... ... ... | ... ६४२ |
| १०१ | हमारा निकट भविष्य | ... ... ... ... ... | ... १३१ |
| १०२ | हमारी धार्मिक समस्याएँ | ... ... ... ... ... | ... ३८६ |


* * *

## २—पद्य


| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | अज्ञात | ... ... | श्री० हज़ारीलाल जी वर्मा 'रञ्जन' ... ... ४३७ |
| २ | आदेश | ... ... | श्री० रामकुमार जी वर्मा, एम० ए० ... ... ३८५ |
| ३ | आह | ... ... | श्री० 'बघेल' ... ... ३७९ |
| ४ | आँसुओं के प्रति | ... ... | श्री० नरेन्द्र ... ... ६३१ |
| ५ | आँसू | ... ... | श्री० विश्वेश्वरप्रसाद जी 'विप्र', एम० ए०, एल्-एल्० बी० ७१२ |
| ६ | उद्वेलित स्मृति | ... ... | श्री० 'सतीश' ... ... ५५२ |
| ७ | उद्वेलित गीत | ... ... | श्री० ब्रजकिशोर जी वर्मा 'श्याम' ... ... ६१७ |
| ८ | उपालम्भ | ... ... | श्री० 'सुकुमार' ... ... ५०४ |
| ९ | कनवजियों का ब्याह | ... ... | श्री० देवशङ्कर जी त्रिवेदी, बी०ए० ... ... २६४ |
| १० | कवि का जीवन-सङ्गीत | ... ... | श्री० 'मिलिन्द' ... ... ५१३ |
| ११ | कामना | ... ... | श्री० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय "हरिऔध" ... ५२० |
| १२ | केसर की क्यारी | ... ... | सम्पादक—कविवर 'बिस्मिल' इलाहाबादी २२९-३८०-४९५ |
| १३ | चुम्बन के प्रति | ... ... | श्री० बालकृष्ण राव ... ... ३७२ |
| १४ | जागृति-गीत | ... ... | श्री० सोहनलाल जी द्विवेदी ... ... ९३ |
| १५ | जीर्ण-गृह | ... ... | श्री० रामकुमार जी वर्मा, एम० ए० ... ... २५७ |
| १६ | जीवन-नौका | ... ... | श्री० देवीप्रसाद जी गुप्त "कुसुमाकर" बी० ए०, ए-ल्० बी० ... ... ६०२ |
| १७ | तुमसे | ... ... | श्री० 'व्यथित हृदय' ... ... ४६९ |
| १८ | तूतू-मैंमैं | ... ... | श्री० रामचरित जी उपाध्याय ... ... ३३७ |
| १९ | दानी 'चाँद' | ... ... | श्री० मातादीन जी गुप्त 'मत्त' ... ... ६८० |
| २० | नन्ददुलारे आ जा | ... ... | कविवर 'बिस्मिल' इलाहाबादी ... ... ६३७ |
| २१ | नारी-जीवन | ... ... | श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव २३५-३५३-४५१-६२४ |
| २२ | नाव भारत की किनारे पे लगा दे मोहन | ... | श्री० शिवनन्दनप्रसाद जी वर्मा, 'हुनर' गयावी ... ६३८ |
| २३ | नूरजहाँ | ... ... | श्री० रामकुमार जी वर्मा, एम० ए० ... ... १ |
| २४ | पावस-प्रसङ्ग | ... ... | श्री० फूलबदन सिंह जी 'फूल' ... ... ६५७ |

| क्रमाङ्क | लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| २५ | पुष्प | श्री० लक्ष्मीनारायण जी अग्रवाल | ४५० |
| २६ | प्रेम | श्री० बालकृष्ण राव | ५८४ |
| २७ | फूल | श्रीमती गायत्री देवी 'विन्दु' | ३७६ |
| २८ | मुरझाया फूल | श्रीमती गायत्री देवी 'विन्दु' | ३०६ |
| २९ | मेरा प्रेम | श्री० लक्ष्मीनारायण जी अग्रवाल | ४५० |
| ३० | विचित्र उपहार | श्री० 'अधीर' | ५६७ |
| ३१ | विनाश के पथ पर | श्री० कैलाशपति जी त्रिपाठी | २८७ |
| ३२ | विराट रूप | श्री० रामकुमार जी वर्मा, एम० ए० | ६४१ |
| ३३ | वीर नख-सिख | श्री० अम्बिकाप्रसाद जी भट्ट, "अम्बिकेश" | १६-२७८ |
| ३४ | वेदना-गान | श्री० दिवाकरप्रसाद जी विद्यार्थी | २२ |
| ३५ | व्याकुल विधवा | श्री० देवीप्रसाद जी गुप्त "कुसुमाकर" बी० ए०, एल्-एल्० बी० | २०५ |
| ३६ | स्मृति | श्री० कालीचरण जी, विशारद | ६४८ |
| ३७ | हृदय | श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव | १२९ |



अपूर्व उपहार !

प्रतिष्ठाता

डाक्टर एस.के.बर्मन

# डाबर (डाक्टर एस०के०बर्म्मन) लिमिटेड कलकत्ता

स्थापित

सन १८८४ ई०

अपूर्व उपहार !

विभाग नं० १५, पोष्ट बक्स नं० ५५४, कलकत्ता : ५० वर्ष से प्रचलित शुद्ध भारतीय पेटेण्ट दवा

( Registered )

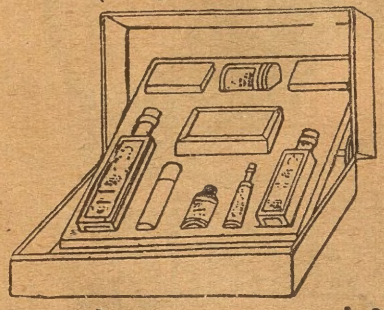

## "नैवेद्य" ( उपहार में देने का शृङ्गारदान )

### ( इसमें चुनी हुई नौ शृङ्गार-सामग्रियाँ हैं )

वर्ष-गाँठ, विवाह आदि अन्य शुभ-कार्यों में अपने प्रिय जनों को कुछ भेंट देने का सुअवसर प्रत्येक परिवार में उपस्थित होता रहता है, अतः उपरोक्त सुअवसरों पर उपहार के लिए यह नैवेद्य बनाया गया है।

इसमें नित्य प्रयोजनीय शृङ्गार-सामग्रियाँ पूरी मात्रा में सुन्दर बक्स में सजी हुई हैं। बक्स देखने में मनोहर है तथा ग्राहकों को मुफ़्त पड़ता है। मू०—एक बक्स का ५) पाँच रुपया, डा०म० १॥)

नोट—समय तथा डाक-ख़र्च की बचत के लिए अपने स्थानीय हमारे एजेण्ट से ख़रीदिए।

बिना मूल्य—सम्वत् १९८८ का "डाबर पञ्चाङ्ग" एक कार्ड लिख कर मँगा लीजिए।

एजेण्ट—इलाहाबाद ( चौक ) में बाबू श्यामकिशोर दुबे

## ३—चित्र-सूची

### तिरङ्गे

१—अवध के भूतपूर्व शासक
२—कर्तव्य-पालन
३—चिकित्सा
४—नूरजहाँ
५—यौवन का मोल
६—यौवन का भार
७—सावन का झूला
८—सिपाही की दुलहिन

### आर्ट-पेपर पर रङ्गीन

१—इन्दौर की राजमाता—श्रीमती महारानी चन्द्रावती
२—कुमारी सुलताना
३—कुमारी मीठाँ टाटा, एम० एस-सी०, बार-ऐट-लॉ
४—कुमारी रुख़िया ख़ातून
५—चितवन
६—तीन आदर्श बहिनें
७—प्रकृति के चमत्कार
८—प्रकृति
९—बसेरा
१०—यूरोप की सात सुन्दरियाँ
११—रूस की सुप्रसिद्ध बॉलशेविक नेत्री—मैडम ज़रनाफ़
१२—सहोदरा
१३—साक़ी

### सादे

१-२८—अवध के मुसलमान शासक सम्बन्धी—२८ चित्र
२९-६४—कराँची कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी—३६ चित्र
६५-६९—'गोविन्दकुमार-भवन' कलकत्ता, सम्बन्धी—५ चित्र।
७०-७१—प्रेत-छाया-चित्र सम्बन्धी—२ चित्र
७२-७९—भारतीय नारी-जीवन ( व्यङ्ग )—८ चित्र
८०-३५९—भिन्न-भिन्न स्त्री-पुरुषों के चित्र, ग्रूप तथा दृश्य आदि—२८० चित्र।
३६०-३७८—भिन्न-भिन्न विषयों के कार्टून—१९ चित्र
३७९-४१५—विगत सत्याग्रह आन्दोलन सम्बन्धी—३७ चित्र।
४१६-४१७—वीरा फ़िगनर—२ चित्र
४१८-४३३—शाही मज़दूर कमीशन के सदस्य—१६ चित्र
४३४-४४०—स्वर्गीय सरदार भगतसिंह तथा स्वर्गीय शिवराम राजगुरु का वंश-परिचय—७ चित्र।
४४१—सुप्रसिद्ध सिनेमा स्टार—मिस सुलोचना


# उम्दा माल

## ख़रीदना ही सस्ता पड़ता है

ऐसे नाज़ुक वक़्त में आपको फ़्लेक्स के ख़ालिस चमड़े ही के शूज़ पहिनने चाहिए, क्योंकि वह मुद्दत तक चलते हैं और बहुत आराम देने वाले होते हैं, और किसी मौसम में भी उनकी शकल नहीं बिगड़ती।

अपने शहर के फ़्लेक्स एजेण्ट की दूकान पर जाकर फ़्लेक्स शूज़ देखने में आपका कुछ ख़र्च न होगा और वह हमारा एजण्ट आपको एक बढ़िया किताब देगा, जिसमें कि फ़्लेक्स शूज़ की ख़ूबियाँ बयान की गई हैं।

दाम ६।।।) प्रति जोड़े से लेकर

FLEX
FOOTWEAR

हिन्दुस्तान भर में एक ही दाम पर फ़्लेक्स शूज़ बिकते हैं।

F 30

# दीवाली का अनूठा उपहार

इस अङ्क का मूल्य लगभग ३) रु०

ग्राहकों को मुफ़्त !

का

# राजपूताना-अङ्क

"भविष्य" और "चाँद" के विद्वान् लेखक—

**डॉक्टर मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी-लिट्, विशारद**

**के सम्पादन में प्रकाशित होगा !**

**इसकी विशेषताएँ :—**

राजपूताने की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक दशा का

**सच्चा चित्र और सुधार के उपाय**

इसमें निम्न-लिखित लेख प्रकाशित करने का उद्योग किया जा रहा है :—

वर्तमान राजपूत कौन हैं - हूण या आर्य ?
मेवाड़ प्रताप से पूर्व और पीछे ( सचित्र )
राजपूताने के प्रसिद्ध युद्ध
राजपूताने के प्रसिद्ध क़िले ( सचित्र )
जौहर और भीषण आत्मोत्सर्ग ( सचित्र )
मुग़ल-कालीन राजपूताना ( सचित्र )
राजपूताने की रियासतों से अङ्गरेज़ी सरकार की सन्धियाँ।
राजपूताना और मराठे
राजपूतों के अन्तःपुर
रियासतों का राज-प्रबन्ध
राजपूताने में राजनैतिक असन्तोष
बीजोलिया और बूँदी
ग़ुलामी और बेगार
राजपूताने के कर
मारवाड़ी व्यापारी
राजपूताना के अङ्गरेज़ी अफ़सर
डिङ्गल काव्य
मीराबाई के भजन
जयपुर का अजायबघर
राजपूत चित्र-कला
इत्यादि, इत्यादि, इत्यादि।

शीघ्र ही ग्राहकों की श्रेणी में नाम लिखा लीजिए

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

## चिकित्सा

"बनि आए गोपीनाथ वैद्य बनवारी"

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ९ खण्ड २ | अक्टूबर, १९३१ | संख्या ६ पूर्ण संख्या १०८

# विराट रूप

[ प्रो० रामकुमार वर्मा, एम० ए० ]

मेरी जीवन-तन्त्री में कितनी आहों के तार लगे।
मेरे रोम-रोम से कितने ही दुख के संसार लगे॥
मेरी अन्तर-बहिर प्रकृति में प्रबल हार के हार लगे।
मेरे जीवन-नभ को दुख-दामिनि के चपल प्रहार लगे॥
ज्ञान-कोष में आँसू के कितने ही भाण्डार लगे।
मेरे मानस में छल करने वाले कितने प्यार लगे॥

मेरे आँसू की संख्या से तारों का उपहास हुआ।
मेरे हँसने से ही शशि-किरणों का उज्ज्वल हास हुआ॥
मेरे दुख के अन्धकार से रजनी का शृङ्गार हुआ।
मेरे बिखरे भावों से बिखरा सा यह संसार हुआ॥
मेरे सुख से ही जग में सुख का है कुछ आभास हुआ।
मेरे जीवन से ही मानव-जीवन का इतिहास हुआ॥

अक्टूबर, १९३१

# स्त्रियों के जन्मसिद्ध अधिकार

वर्तमान युग को यदि हम 'अधिकारों का युग' कहें तो अयुक्ति न होगी। आज जिधर देखिए, उधर ही अधिकारों की चर्चा सुन पड़ेगी, मानो विश्व के सकल प्राणी एक भीषण प्रलय के बाद जागे हों और अपने-अपने सामान की खोज कर रहे हों। किसान अपने अधिकारों की बात कर रहे हैं, श्रमजीवी अपने अधिकारों की चिन्ता में निमग्न हैं, पीड़ित राष्ट्र अपने अधिकारों के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। बात यह है कि अब तक क्या समाज में, क्या धर्म में, क्या राजनीति में, सर्वत्र अधिकारों का बटन उन्हीं के हाथों में रहा है, जिनके पास शक्ति रही है—धन की शक्ति, राज्य की शक्ति, सेना की शक्ति और सङ्गठन की शक्ति। वे जब चाहे, जिधर चाहे और जिस प्रकार चाहे उस बटन को दबाते रहे हैं। परन्तु आज समय पलट गया है। जिनका काम ही शक्तिशाली के सामने सिर नीचा करना और उसकी इच्छापूर्ति के लिए भरसक प्रयत्न करने को अपना कर्तव्य समझना रहा है, वे आज सहसा सिर उठा कर ऊपर देखने लगे हैं और उन्हें यह विदित हो गया है कि उनमें और उनके स्वामियों में कितना अन्तर है। आज वे सहसा पूछने लगे हैं, 'क्यों, हममें और उनमें इतना अन्तर क्यों?' यही प्रश्न है, जो उनके अधिकारों की चर्चा का आधार है। इस प्रश्न के करने वालों में सबसे बड़ी संख्या है उनकी, जिनका संसार की जन-संख्या में आधा भाग है, परन्तु जिनकी आवाज़ उतनी ज़ोरदार नहीं है। वे हैं हमारी माताएँ, हमारी बहिनें, हमारी बेटियाँ

श्रीमती सरलादेवी चौधरानी भारत की उन थोड़ी-सी महिलाओं में से हैं, जिन्होंने राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में बहुत-कुछ कार्य किया है। उनकी सेवाएँ पुरानी हैं और उनका अनुभव बहुत प्रौढ़। वे जो कुछ कहती हैं, वह सारगर्भित तथा गवेषणापूर्ण होता है और उसमें मनन करने योग्य पर्याप्त सामग्री रहती है। अभी हाल ही में उन्होंने 'बङ्गाल-महिला-कॉङ्ग्रेस' की सभानेत्री की हैसियत से जो भाषण दिया है, वह बड़ा महत्वपूर्ण है। उस भाषण में भारतवर्ष के सामने तथा भारतवर्ष के द्वारा संसार के सामने उन्होंने बड़े स्पष्ट तथा ज़ोरदार शब्दों में स्त्रियों के जन्मसिद्ध अधिकारों

की माँग पेश की है। जिन अधिकारों की उन्होंने अपने भाषण में चर्चा की है, वे इस प्रकार हैं :—

१—जब तक पति जीवित रहे, तब तक उसकी आय में आधे भाग की वह अधिकारिणी हो। विधवा होने पर पति की सम्पत्ति में सन्तान के साथ समान अधिकार हो।

२—माता-पिता, भाई तथा बहिनों की सम्पत्ति में, उनकी मृत्यु के बाद, पुत्रियों तथा बहिनों को, पुत्रों तथा भाइयों के समान, बराबर का अधिकार हो।

३—अपनी सन्तान के संरक्षण का समान अधिकार हो। (अभी माता को पिता के समान अधिकार नहीं हैं।)

४—न्याय, डॉक्टरी, क़ानून, शिक्षा, नेवी, एअर-फ़ोर्स आदि विभागों में प्रवेश पाने का तथा कौन्सिल, एसेम्बली, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपैलिटी आदि की सभासदी के लिए खड़े होने का तथा मिनिस्टर, गवर्नर आदि पद पाने का स्त्रियों को समान अधिकार हो।

५—नागरिकता के पूर्ण अधिकार।

६—वेश्यावृत्ति, भोली लड़कियों को फँसाना तथा कुमार्ग पर चलाना आदि अपराधों के लिए समान दण्ड।

७—जो स्त्रियाँ कारख़ानों में काम करती हैं, उनको निर्वाह के लिए पर्याप्त वेतन का मिलना तथा—

(अ) मज़दूरी के लिए समय की सीमा।

(ब) कारख़ानों का वातावरण स्वास्थ्यप्रद तथा पवित्र हो।

(स) बुढ़ापे तथा रोग के दिनों में सहायता।

(द) प्रसव-समय के लिए छुट्टी मिले, और उन दिनों का पूरा वेतन मिले।

८—राज्य द्वारा बेकार स्त्रियों के लिए विशेष प्रबन्ध किया जाय।

९—लड़कियों के लिए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा तथा विवाहिता स्त्रियों के लिए शिक्षा की विशेष सुविधा प्राप्त हो।

१०—समस्त बालिग़ स्त्रियों को वोट देने का अधिकार हो।

इन माँगों की सूची को देखने पर कोई भी न्याय-शील व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि इनमें से कोई भी माँग अनुचित है। परन्तु दुर्भाग्यवश हमारे देश में ऐसे न्याय-शील व्यक्तियों की अभी अधिक संख्या नहीं है। जो समाज स्त्रियों को ग़ुलामों की भाँति रखता आया है, जिस समाज ने स्त्रियों को कभी अपने अधिकारों की चर्चा करने के योग्य भी नहीं रक्खा, वह समाज यह कब सहन कर सकता है कि स्त्रियों की ये माँगें आज न्याय-सङ्गत बता दी जायँ। इसीलिए इन माँगों के विरोधियों की संख्या, गिनने पर, बहुत बड़ी मिलेगी। इन विरोधियों में एक दल तो ऐसा है, जो, कुछ अधिकारों को मानता हुआ भी, यह कहता है कि, 'स्त्रियों को इस समय अलग अधिकार माँगने की क्या आवश्यकता है। जब स्वराज्य होगा तो स्त्रियों को सब अधिकार स्वयं ही मिल जायँगे।' परन्तु उनकी इस दलील के उत्तर में श्रीमती चौधरानी अपने भाषण में कहती हैं :—

"चारों ओर से यह प्रश्न किया गया है कि बङ्गाल की स्त्रियों के लिए अलग कॉङ्ग्रेस बुलाने की क्या आवश्यकता थी? जहाँ तक मैं समझती हूँ, यह कॉङ्ग्रेस बङ्गाली स्त्रियों की आत्म-जागृति का एक चिह्न है। यह जागृति बङ्गाली पुरुषों की जागृति से बिल्कुल भिन्न है। इस जागृति के उत्पन्न होने का कारण वह भेद-भाव-भरा व्यवहार है, जो स्त्री के साथ उसके जीवन भर किया जाता है। यह जागृति प्रत्येक स्त्री के अन्तर्जगत् में छिपी हुई पड़ी थी और इस बात के लिए तयार ही थी कि बाहर प्रकाशित होकर स्त्री-समाज को सुसंबद्ध कर दे। उसके अन्तर्जगत् में इसका बीज तो उसी दिन बोया जा चुका था, जब उसकी बालिकावस्था में स्वयं उसकी माता उन पदार्थों से उसे वञ्चित रखती थी, जो उसके भाइयों को विशेष रूप से दिए जाते थे।.....न तो स्त्री के भाव कभी पुरुष के भाव हुए हैं, न कभी स्त्री का दृष्टिकोण पुरुष का दृष्टिकोण!"

श्रीमती चौधरानी जी के इन शब्दों में वह सत्य छिपा है, जिसका खण्डन स्त्रियों के अधिकारों के विरोधियों में से कोई भी करने की क्षमता नहीं रखते। इन शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष की जो मनोवृत्ति स्त्रियों के सम्बन्ध में रही है, उस पर स्त्रियाँ कभी विश्वास नहीं कर सकतीं और, चाहे स्वराज्य हो या न हो, वे अपनी माँगों को स्वीकार कराने का प्रयत्न करती रहेंगी।

स्त्रियों के अधिकारों का एक और विरोधी दल है।

उसकी समझ में, 'स्त्रियों को कोई अधिकार माँगने का भी अधिकार नहीं है। उनका कर्त्तव्य यही है कि पुरुषों की इच्छानुसार अपना जीवन व्यतीत करें और कोई शिकायत न करें।' ये विचार बहुत पुराने हैं, परन्तु इनके मानने वालों की संख्या अब भी बहुत बड़ी है। वे तर्क और विवेक का आश्रय नहीं लेते, वरन् इधर-उधर की स्मृतियों तथा प्राचीन ग्रन्थों की दुहाई देते हैं और यह सिद्ध करते हैं कि सृष्टि के आदि काल से ही ऐसी व्यवस्था चली आ रही है। और यदि इस व्यवस्था को भङ्ग कर दिया तो यह पृथ्वी स्थिर नहीं रह सकती; सारे संसार में अधर्म का राज्य हो जायगा और संसार राक्षसों का निवास-स्थान बन जायगा। वे स्मृतियों के उन श्लोकों को चिल्ला-चिल्ला कर पढ़ते हैं, जिनके अनुसार स्त्री, जीवित या मृत, इस लोक में या परलोक में, आर्थिक, शारीरिक, एवं धार्मिक, प्रत्येक रूप में पुरुष के ऊपर अवलम्बित है। या फिर वे तुलसीदास जैसे लेखकों के 'ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी।' आदि महावाक्यों (?) को सुना देते हैं।

परन्तु उन्हें यह पता नहीं कि वैदिक काल में स्त्रियों के क्या अधिकार थे और धीरे-धीरे पुरुषों ने स्वार्थवश इन अधिकारों को कहाँ से कहाँ ला रक्खा और स्मृतियाँ आदि रच कर अपने विचारों पर धर्म और क़ानून की मुहर लगा दी। इस विषय में श्री० महादेव शास्त्री, बी० ए० अपनी विद्वत्तापूर्ण पुस्तक Emancipation of Women में लिखते हैं :—

"There was a time, when, among the cultured classes of the Aryan Community, woman's status was almost equal to man's, when she had equal opportunities for receiving a complete education.

"Next stage was marked by a transition to a lower ideal of married life and to a lower status of women. . . . . we find the idea of equality of man and woman replaced by the idea of woman's subordination to man. Woman's early education became at first limited and afterwards altogether neglected, till it became a recognised rule in practice that no woman should be taught the Veda and Science.

"Coming to the present age, when the society is governed by the laws laid down in the Smritis, we see that the cultured classes hold woman as an embodiment of sensualism and evil against which man has ever to guard himself.

"She is religiously excluded from all education and is ordained to lead a life of dependence on man in all concern of life, temporal as well as spiritual."

अर्थात्—"एक समय था, जब आर्यों के सभ्य समाज में स्त्रियों का पद पुरुषों के समान था, जब कि उसे सब प्रकार की शिक्षा पाने की समान सुविधा प्राप्त थी।

"आगे चल कर विवाह का आदर्श गिर गया और साथ ही स्त्रियों का पद नीचा समझा जाने लगा! समानता के स्थान पर स्त्रियों के भाग में पुरुषों की पराधीनता पड़ी। सब से पहले स्त्रियों की शिक्षा सीमित कर दी गई, फिर स्त्रियाँ उससे बिलकुल ही वञ्चित रक्खी जाने लगीं; यहाँ तक कि समाज का यह एक नियम हो गया कि किसी भी स्त्री को वेद तथा विज्ञान पढ़ने का अधिकार नहीं है।

"वर्तमान काल में जब कि समाज का शासन स्मृतियों के नियमों के अनुसार होता है, सभ्य समाज स्त्री को विषय-वासना तथा पाप की मूर्ति समझता है, जिससे पुरुष सदा अपनी रक्षा करने की चेष्टा करता है। उसे किसी प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती और जीवन के प्रत्येक विभाग—इहलौकिक या पारलौकिक—में वह पराधीनता का जीवन बिताने के लिए विवश की जाती है।"

अब प्रश्न यह उठता है कि वैदिक काल की आदर्श समानता से वर्तमान काल की निरङ्कुशता पर स्त्रियों को ला बिठाने का दोष किसका है? स्त्रियों ने स्वयं यह दशा स्वीकार की अथवा पुरुषों ने स्वार्थवश उन्हें इस दशा को पहुँचाया। कुछ ऐसे व्यक्ति हैं, जो पुरुष को

इस दोष से विमुक्त करने के लिए स्त्रियों को ही दोषी सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। वे स्त्री को अबला (Weaker Sex) कह कर और डॉक्टरों तथा दर्शन-शास्त्र-वेत्ताओं की उक्तियों को पेश करके यह सिद्ध करना चाहते हैं कि स्त्री बिना पुरुष की सहायता के संसार में कुछ कर ही नहीं सकती और इसीलिए वह इच्छा से उसकी ( पुरुष की ) पराधीनता में रह रही है। इसके प्रमाण में वे यह भी कहते हैं कि स्त्रियों में अधिकांश अब भी ऐसी हैं, जो इस 'अधिकारों की माँग' को एक ढकोसला समझती हैं। डॉक्टरों और दार्शनिकों की उक्तियाँ आजकल की अनेकों स्त्रियों के आश्चर्यित करने वाले कार्यों को देख कर सारहीन हो गई हैं। रही स्त्रियों की, इस प्रश्न को ढकोसला समझने की, बात। इस विषय में अमेरिका की स्त्रियों ने एक शताब्दी पूर्व जो घोषणा ( Declaration of Sentiments ) निकाली थी, उसमें उन्होंने बड़ी खूबी के साथ पुरुषों को दोषी सिद्ध किया है। घोषणा में उन्होंने कहा था :—

" That he (man) had endeavoured in every way that he could to destroy her (woman's) confidence in her own powers, to lessen her self-respect and to make her willing to lead a dependent and abject life. The power to think and will for themselves has been so killed in women, they have been turned to hypnotic subjects to such an extent that those amongst them, who by chance wake up from the trance and would fain warn and awaken others meet with the greatest resistence from their own sex."

अर्थात्—"पुरुष ने इस बात के लिए सतत उद्योग किया कि स्त्रियों का अपनी शक्तियों में जो विश्वास था वह नष्ट हो जाय, उनके भीतर आत्म-सम्मान की मात्रा कम हो जाय और वे इच्छापूर्वक पराधीन तथा निरर्थक जीवन व्यतीत करें। स्त्रियों में विचार-शक्ति तथा इच्छा-शक्ति का इतना ह्रास हो गया है तथा उन पर मोहिनी शक्ति का इतना गहरा प्रभाव पड़ा है कि यदि कुछ स्त्रियाँ संयोगवश इस मूर्छा से चैतन्य हो जाती हैं और अपनी अन्य बहिनों को जगाने का प्रयत्न करती हैं, तो वे ही बहिनें उनका विरोध करने के लिए खड़ी हो जाती हैं।"

हम भारतवर्ष के धर्म-ग्रन्थों की बात बता चुके हैं, परन्तु अन्य धर्मों में भी पुरुषों ने स्त्री को पराधीन बनाने के लिए क़ायदे और क़ानून बना दिए थे। ईसाइयों के सन्त पॉल ने कहा है—'Wives, obey your husbands !' ( स्त्रियो, अपने पति की आज्ञा पालो।) इसी प्रकार अन्य कई स्थलों पर स्त्री को ऐसी ही शिक्षा दी है। ईसाइयों में विवाह के समय जो प्रतिज्ञा की जाती थी, उसमें भी Obey ( आज्ञा-पालन ) शब्द था, परन्तु अब स्त्रियों के आन्दोलन के कारण कई देशों में यह शब्द प्रतिज्ञा से निकाल दिया गया है।

भारतवर्ष के सम्बन्ध में हम यह दिखा चुके हैं कि वैदिक काल में स्त्रियों को समान अधिकार प्राप्त थे, परन्तु धीरे-धीरे वे अधिकार पराधीनता में परिणत हो गए। यूरोपीय देशों के इतिहास में कोई ऐसा काल नहीं पाया जाता, जब स्त्री को समान अधिकार प्राप्त रहे हों। वहाँ स्त्रियाँ किस प्रकार पुरुषों द्वारा पराधीन बनाई गईं, इसका वर्णन इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध लेखक जॉन स्टुअर्ट मिल ने इस प्रकार किया है :—

"The adoption of this system of inequality never was the result of deliberation, or forethought, or any social ideas, or any notion whatever of what conduced to the benefit of humanity or the good order of society. It arose simply from the fact that from the very earliest twilight of human Society, every woman (owing to the value attached to her by men, combined with her inferiority in muscular strength) was found in a state of bondage to some man. Laws and Systems of polity always begin by recognising the relations they find already existing between individuals. They convert what was a mere physical fact into a legal right, give it the sanction of

society, and principally aim at the substitution of public and organised means of asserting and protecting these rights, instead of the irregular and lawless conflict of physical strength. Those who had already been compelled to obedience became in this manner legally bound to it."

सारांश—"इस असमानता की प्रणाली की उत्पत्ति किन्हीं ऐसे विचारों के कारण नहीं की गई थी, जिनसे मनुष्य जाति का कुछ लाभ हो या समाज सुव्यवस्थित रहे! इसकी उत्पत्ति का कारण केवल यह था कि समाज के निर्माण के समय से ही प्रत्येक स्त्री, पुरुष के लिए अपनी उपयोगिता तथा शारीरिक बल की कमी के कारण, किसी न किसी पुरुष की आश्रित हो चुकी थी। क़ानून और समाज की व्यवस्था, व्यक्तियों में पहले से ही जो पारस्परिक सम्बन्ध होता है, उसीके आधार पर बनते हैं और इस प्रकार जो काम पहले शारीरिक बल-प्रयोग द्वारा होता था, वही अब 'क़ानूनी अधिकार' कह कर किया जाता है और इस प्रकार उस काम पर समाज की छाप लग जाती है।"

इन अवतरणों से पाठकों को पता चल जायगा कि जिन्हें आज पुरुष अपने अधिकारों के नाम से पुकारते हैं, उन अधिकारों को उन्होंने किस प्रकार प्राप्त किया था। और यही कारण है कि पुरुष स्त्री-जाति की जागृति के मार्ग में अब भी बाधा उपस्थित करने के लिए तैयार रहता है और उसकी प्रत्येक माँग का विरोध करने के लिए उद्यत हो जाता है। भारतवर्ष में तो अभी स्त्रियों की इतनी जागृति नहीं हुई; यूरोप तथा अमेरिका में भी, जहाँ स्त्रियों की आशातीत जागृति हुई है, स्त्रियों के अधिकारों की अवहेलना की जाती है। जब-जब स्त्रियाँ कोई अधिकार माँगती हैं, तब-तब एक आन्दोलन उनके विरुद्ध खड़ा हो जाता है। इङ्गलैण्ड की पार्लामेण्ट के लिए वोट देने के अधिकार के लिए स्त्रियों ने जब आवाज़ उठाई थी, तो उनका विरोध बड़े ज़ोरों से हुआ था। सैकड़ों देवियों को जेल की यातना भोगनी पड़ी थी, सहस्रों को पुलिस के अत्याचारों का सामना करना पड़ा था और अनेकों को सामाजिक विरोध सहन करना पड़ा था। परन्तु उनके अदम्य उत्साह और संलग्नता के सामने पुरुषों के विरोध की कुछ भी न चली। आज फल यह है कि संसार के प्रत्येक सभ्य राष्ट्र की पार्लामेण्ट की स्त्रियाँ मेम्बर हैं। हाल ही में जो स्पेन का प्रजातन्त्र स्थापित हुआ है, उसमें भी महिलाओं को प्रमुख भाग मिला है। इङ्गलैण्ड की मज़दूर गवर्नमेण्ट में भी दो देवियाँ थीं। इतना होते हुए भी कुछ पुरुषों के हृदय की आग नहीं बुझी। लन्दन के अनुदार दल के पत्र 'डेलीमेल' ने हाल ही में स्त्रियों के मताधिकार के विषय में विष उगला था। इससे भी मनोरञ्जक कथा है उन युवतियों की, जो लन्दन के अधिकांश मेडीकल कॉलेजों में प्रवेश के लिए आती हैं और प्रवेश नहीं पातीं। कई कॉलेजों की तो यह पॉलिसी है कि युवतियों को वहाँ दाख़िल ही न किया जाय। कुछ महीने पूर्व किंग्स कॉलेज के एक सज्जन की मृत्यु हुई, तो वह अपने बिल में अपनी जायदाद कॉलेज के नाम छोड़ गए, परन्तु शर्त यह लगा गए कि कॉलेज में कोई लड़की न ली जाय। किंग्स कॉलेज में इस समय लड़कियों को दाख़िल किया जाता है, अतः अधिकारियों के सामने यह समस्या है कि वे लड़कियों को लेना बन्द कर दें या उस जायदाद से हाथ धो बैठें। यह मनोवृत्ति है पुरुषों की स्त्रियों के अधिकारों के विषय में। ऐसी दशा में जो स्त्रियाँ समानता के अधिकार के लिए अपनी आवाज़ बलन्द कर रही हैं, वे भावी समाज का बड़ा उपकार कर रही हैं।

जब हम स्वयं अधिकारों के विषय में विचार करते हैं तो हमें पता चलता है कि कई देशों में कुछ अधिकार स्त्रियों को मिलने लगे हैं और उन अधिकारों का उपयोग करके स्त्रियों ने यह दिखा दिया है कि वे उनका सदुपयोग ही कर रही हैं और पुरुषों की यह धारणा, कि पुरुषों के कार्य स्त्रियाँ कर ही नहीं सकतीं, निर्मूल सिद्ध हो रही है। जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, राष्ट्र-निर्माण में कई देशों में स्त्रियों ने भाग लिया है। भारतवर्ष के सत्याग्रह-संग्राम में स्त्रियों ने जो कुछ किया है, वह किसी पर अविदित नहीं है। अफ़ग़ानिस्तान, तुर्की, रूस तथा चीन में भी स्त्रियाँ पुरुषों के साथ-साथ राष्ट्र के उत्थान में भाग ले रही हैं। अनेकों स्त्रियाँ वकील, बैरिस्टर, मैजिस्ट्रेट, गवर्नर, डॉक्टर आदि हैं। पुलीस जैसे विभाग में भी, जहाँ स्त्री

की सफलता असम्भव समझी जाती थी, आजकल संसार भर में स्त्रियों की संख्या लगभग १,००० है, जिनमें से ६०० अमेरिका में, १६० जर्मनी में तथा १४० इङ्गलैण्ड में हैं। इसी प्रकार अन्य विभागों में भी, जैसे हवाई-जहाज़ चलाना, मोटर-रेस, घुड़दौड़ आदि, जहाँ पुरुषोचित साहस तथा वीरता की आवश्यकता होती है, स्त्रियों ने अच्छी ख्याति पाई है। अन्य देशों में तो स्त्रियों के आर्थिक अधिकार कई अंशों में मान लिए गए हैं; परन्तु भारतवर्ष में इस माँग को बड़े उपहास की दृष्टि से देखा जाता है और उसमें मातृत्व की दुहाई दी जाती है। परन्तु विचार करके देखने पर पता चलता है कि बिना आर्थिक स्वतन्त्रता के स्त्री की पराधीनता में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। आज जब स्त्री और पुरुष का झगड़ा हो जाता है तो पति कह देता है—'जा, तू अपने पीहर चली जा।' आर्थिक परतन्त्रता के कारण वह कुछ भी नहीं कर सकती। इसी प्रकार सैकड़ों विधवाएँ हैं, जो बड़े कष्ट से अपना काल-यापन करती हैं। न तो उनका सम्पत्ति पर कोई अधिकार होता है और न उनके लिए कोई उद्योग-धन्धे खुले हुए हैं। फल यह होता है कि रुपए के लिए, या तो घरों में व्यभिचार होता है या वेश्याओं की संख्या बढ़ती है। हम तो यह समझते हैं कि स्त्री की आर्थिक कठिनाइयाँ दूर कर दी जायँ, तो वह एक अधिक सफल माता बन सकती है, क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि आर्थिक स्वतन्त्रता मिलने पर प्रत्येक स्त्री मातृत्व के भावों को भूल कर, अपने पति से अलग पैसा पैदा करने जायगी!

अब समय आ गया है, जब स्त्रीत्व की सुप्त आत्मा जाग पड़ी है। इस जागृति को दबाना असम्भव है, हानिकारक है। स्त्रियों को उनके जन्मसिद्ध अधिकार दिए बिना श्रमजीवियों, किसानों और अछूतों आदि के अधिकारों की चर्चा व्यर्थ है। हमारा कल्याण इसी में है कि जिस प्रकार महात्मा गाँधी मुसलमानों को उनके अधिकारों के लिए कोरा काग़ज़ देने को तैयार हैं, उसी प्रकार पुरुष-जाति स्त्री-जाति को एक कोरा काग़ज़ दे दे, जिस पर वे अपने जन्मसिद्ध अधिकार लिख सकें।

❀ ❀ ❀

# स्वर्गीय पं० विष्णु दिगम्बर

पाठकों को यह जान कर दुःख होगा कि आधुनिक सङ्गीत-शास्त्र के आचार्य तथा प्रवर्तक पं० विष्णु दिगम्बर का देहान्त गत २१वीं अगस्त को मिराज में हो गया। पण्डित जी के देहावसान से भारतीय पुरातन-संस्कृति तथा सङ्गीत-शास्त्र को जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति का होना बहुत कठिन है। क्योंकि यह पण्डित जी का ही कार्य था कि मृतप्राय सङ्गीत-शास्त्र आज इस उन्नत दशा को प्राप्त हो सका है।

पण्डित विष्णु दिगम्बर का जन्म सन् १८७२ ई० में बेलगाम जिले में हुआ था। बाल्यकाल से ही उन्हें सङ्गीत से बहुत प्रेम था। अतः उनके पिता ने उन्हें मिराज भेज दिया, जहाँ वे पण्डित बालकृष्ण बरवा से सङ्गीत की शिक्षा प्राप्त करने लगे। उन दिनों सङ्गीत-विद्या की पहुँच भले घरों में नहीं थी। सङ्गीत बाज़ारू स्त्रियों तथा कुछ असंस्कृत व्यक्तियों का पेशा हो गया था। अतः समाज की दृष्टि में एक गायक का पद बहुत नीचा समझा जाता था। एक घटना से यह बात पण्डित जी के हृदय में चुभ गई। मिराज में, एक रूई के कारख़ाने में एक भोज दिया गया था, जिसमें नगर के सभी सम्भ्रान्त व्यक्ति आमन्त्रित थे, परन्तु विष्णु दिगम्बर जो के गुरु महाराज को निमन्त्रण नहीं मिला था; वह केवल इसीलिए कि बरवा महोदय एक गायक थे। गुरु के इस अपमान से पण्डित जी को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने सङ्गीत को उच्च पद पर आसीन करने की प्रतिज्ञा कर ली। सन् १८९६ में उन्होंने २५) से अपना कार्य प्रारम्भ किया और सन् १९०१ में लाहौर में गान्धर्व महाविद्यालय की स्थापना की। उस समय उन्हें बड़ी आपदाओं तथा विघ्नों का सामना करना पड़ा। परन्तु उनके अध्यवसाय से सङ्गीत की पुकार धीरे-धीरे भले घरों के कोनों तक पहुँच गई और शीघ्र ही विद्यालय में ४० विद्यार्थी हो गए। आज वही गान्धर्व विद्यालय सङ्गीत के लिए भारत भर में एक अद्वितीय संस्था समझा जाता है।

कुछ समय के अनन्तर उन्होंने बम्बई में भी एक विद्यालय की स्थापना की। परन्तु, चूँकि वहाँ शिक्षा

तथा निवास के लिए कोई शुल्क नहीं लिया जाता था, अतः पण्डित जी उसे धनाभाव के कारण चला न सके और उन्होंने नासिक में सन् १९२२ में 'रामनामाधार-आश्रम' नामक संस्था की स्थापना की। मृत्यु से कई वर्ष पूर्व से पण्डित जी सङ्गीत द्वारा भक्ति की ओर जा रहे थे। उनके आश्रम में लगातार चौबीसों घण्टे 'रघुपति राघव राजा राम, पतित-पावन सीता राम' नामक गायन होता रहता है।

पण्डित जी ने पिछले तीस वर्षों में समस्त भारत, लङ्का तथा नेपाल में घूम-घूम कर विद्यालयों एवम् सङ्गीत-समाजों की स्थापना करके तथा अनेकों पुस्तकें लिख कर मृतप्राय सङ्गीत-शास्त्र को जीवन प्रदान कर दिया और यदि आज सङ्गीत-विद्या की चारों ओर चर्चा है, तो उसका श्रेय केवल पण्डित जी को है।

पण्डित जी के नश्वर देह का अन्त हो गया है, परन्तु आधुनिक समाज-निर्माताओं में उनका नाम सदा अमर रहेगा। हमारी यही प्रार्थना है कि भगवान उनकी मृतात्मा को शान्ति दें!

## श्री० देवधर की हीरक-जयन्ती

जिन्होंने पूना के 'सेवासदन' का नाम सुना है, उन्होंने श्रीयुत जी० के० देवधर, एम० ए०, सी० आई० ई० का नाम भी अवश्य सुना होगा। आप 'सर्वेण्ट ऑफ़ इण्डिया सोसायटी' के एक ख्यातनामा सदस्य हैं तथा पूना के सुप्रसिद्ध 'सेवासदन' के प्रधान हैं। आपने 'सेवासदन' द्वारा हिन्दू-समाज की, और विशेषकर स्त्री-समाज की, जो सेवाएँ की हैं, वे किसी पर अविदित नहीं हैं। यह आप ही के सतत परिश्रम का फल है कि 'सेवासदन' ने अब तक लगभग १,६०० स्त्रियों तथा बालिकाओं को भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा दी है तथा स्त्रियों के लिए अन्य उपयोगी कार्य किए हैं। हाल ही में 'सेवासदन' ने आपकी ६० वर्ष की आयु पूर्ण होने के उपलक्ष में आपकी हीरक-जयन्ती मनाई थी। हमारी यही कामना है कि श्री० देवधर जी चिरजीवी हों और इसी प्रकार इस अस्त-व्यस्त समाज के पुनर्निर्माण में भाग लेते रहें।

## स्मृति

[ श्री० कालीचरण जी, विशारद ]

निरख कर वह शरीर सुकुमार,
आज भी निज स्वप्नों में हाय!
हृदय की गति जो होती यहाँ,
बताऊँ कैसे कह दो शीघ्र!

❀

नहीं है शक्ति लेखनी मध्य,
नहीं वाणी में हो हैं शब्द!
करूँ जिनके द्वारा ही व्यक्त,
आज मानस का हाहाकार!

नहीं इतनी भी है सामर्थ्य,
रखूँ अब रोक हृदय के भाव!
अभी भी, लिखने के ही समय,
निकलते वे आँखों के मार्ग!

❀

यदपि दिन कई गए हैं बीत,
अभी ऐसा होता है स्मरण!
यथा हो वह कल की ही बात,
हृदय में रमण कर रही मूर्त्ति!

# अन्धा

[ डॉ० धनीराम जी 'प्रेम' ]

सना बड़ा घर होते हुए भी चम्पा अपने आप को अकेली समझती थी। उस घर में उसकी सास थी, ससुर थे, देवर थे, जेठ थे, देवरानी-जिठानी थीं, परन्तु फिर भी वह अपने को उस घर में अकेली समझती थी ; क्योंकि सब के होते हुए भी उस घर में एक अभाव था—वह विधवा थी। उसके पति का देहान्त विवाह के कुछ वर्ष पश्चात ही हो गया था। न पति, न कोई सन्तान, फिर उस घर में वह अपने को अकेली न समझती तो और क्या करती ?

जब से चम्पा विधवा हुई थी, तब से उसके लिए संसार संसार न रह कर, श्मशान हो गया था। न उसके लिए शृङ्गार था, न वेश-भूषा ; न अच्छा भोजन था, न अच्छे वस्त्र। काम, काम और काम। प्रातः से लेकर अर्द्ध-रात्रि तक वह मैशीन की भाँति काम में जुटी रहती। उठ कर सारा घर झाड़ती, चौका लगाती, बर्तन साफ़ करती। फिर तीन बार भोजन बनाती—आठ बजे दफ़्तर जाने वालों के लिए, दस बजे स्कूल जाने वालों के लिए, बारह बजे दूकान पर काम करने वालों के लिए। दोपहर के बाद फिर वही दिनचर्या। यदि समय मिलता था तो इस दिनचर्या के दो खण्डों के मध्य में—जब दोपहरी का सूर्य ठीक सिर के ऊपर होता है। उस समय वह आँगन के छप्पर के नीचे एक ओर को बैठ कर अपने जीवन के ऊपर कुछ विचार कर लेती थी। सो वह अवकाश का समय भी कभी-कभी ही मिल पाता था। क्योंकि बहुधा देवरानी-जेठानियाँ उस शान्ति में बाधा डालने को वहाँ आ पहुँचती थीं। उनका तो यह आमोद-प्रमोद था। उनके लिए चम्पा का दुर्भाग्य परिहास का विषय था। उनके लिए चम्पा की दर्द-भरी आहें कौतूहल की सामग्री बन जाती थीं। चम्पा उनसे कुछ कह न सकती थी—सास तो उसे दण्ड देने को उद्यत थी। एक बार उसने एक ननद से इतना कह दिया था, 'बहिन जी, मैं वैसे ही दुखिनी हूँ, आप मेरी और हँसी क्यों उड़ाती हैं !' और बस सास के क्रोध का क्या ठिकाना ? शिकारी कुत्ते की भाँति पीछे पड़ गई। इतना साहस। ननद से मुँहजोरी। सब के आगे अपना दुखड़ा। इतना खाती है, इतना पहनती है, गुलछर्रे उड़ाती है, फिर भी कहती है कि दुखिनी है। भला बताओ, दुख इसे क्या है ? कर्महीन है, सो कर्मों को रोती रहती है। जलती है औरों की हँसी देख कर। पर विधाता ने तो इसे रोने के लिए बनाया है, रोएगी नहीं तो करेगी क्या ? पहले जन्म की कोई चाण्डालिन रही होगी।

उस दिन से चम्पा ने सबसे कहना छोड़ दिया था। वह समझती थी कि जिस प्रकार पति का देहान्त उसके भाग्य में लिखा था, उसी प्रकार इन विपत्तियों का सहना भी उसके भाग्य में लिखा है। परन्तु कठिनता यह थी कि यदि वह घर वालों से बच कर जाय तो जाय कहाँ ? उसे घर से बाहर पैर निकालने की आज्ञा न थी। वह एक प्रकार बन्दी का जीवन व्यतीत करती थी। श्रावणी का दिन था। घर के पुरुष श्रावणी के मेले को देखने गए थे। सास भाद्र-मास की गप्पों की समालोचना कराने पड़ोस में दौरा कर रही थी। स्त्रियाँ मुहल्ले में पड़े हुए झूले पर झूलने के लिए गई थीं। चम्पा अकेली घर की रखवाली कर रही थी। उसे श्रावणी का झूला झूलने की आज्ञा न थी। स्त्रियाँ गा रही थीं—"पड़ोरी हिंडोलौ चम्पा बाग़ में, सब सब झूलन जायँ।" चम्पा खीर बनाने के लिए चावल बीन रही थी। उसने भी यह गान सुना। 'सब सब झूलन जायँ।' उसने गुनगुनाया और फिर एक साथ वह चुप हो गई। उसके बड़े-बड़े नेत्रों की कोरों से टप-टप आँसू बरसने लगे। हाय, वह सब स्त्रियों में गिनने के योग्य न थी। उसने अञ्चल से शीघ्र आँसू पोंछे, कि कहीं कोई आकर देख न ले। वह रोने के लिए भी तो स्वतन्त्र न थी !

इस प्रकार उस ग़रीबिनी का जीवन बीतता था। नित्य वही दिनचर्या, वही अपमान, वही रोना, वही

आहें, न कोई सहानुभूति दिखाने वाला था, न कोई धैर्य धराने वाला। इस प्रकार दिन के बाद दिन, मास के बाद मास और वर्ष के बाद वर्ष व्यतीत होने लगे, उसी प्रकार जिस प्रकार एक लम्बे—अनन्त—मरुभूमि के एकाकी यात्री के दिन व्यतीत होते हैं।

२

यदि कोई उस थके हुए घोड़े के भावों को व्यक्त कर सके जो मार खाता हुआ फिर भी बोझे को आगे ले जाता है, तो शायद वह घोड़ा भी अपने अस्तित्व को इतना निकम्मा और आत्महीन न समझे, जितना चम्पा अपने अस्तित्व को समझती थी। और यह उसके लिए स्वाभाविक ही था। जब हम यह समझते हैं, कि हमारे अस्तित्व में किसी की दिलचस्पी नहीं है, किसी की सहानुभूति नहीं है, तो हम उस अस्तित्व को अस्त कर देने तक की इच्छा कर बैठते हैं। क्योंकि संसार में किसी प्राणी का जीवन आत्मीयता तथा सहानुभूति इन दो के बिना बिलकुल नीरस, बिलकुल सारहीन हो जाता है। चम्पा पहले आत्मीयता तथा सहानुभूति के लिए छटपटाया करती थी, उनके लिए तरसती थी, परन्तु धीरे-धीरे उसकी सारी शक्तियाँ कुण्ठित होने लगी थीं और उनमें से हृदय के भावों का नाश सबसे पहिले हुआ था। एक घटना ने चम्पा के इस जीवन-क्रम में परिवर्तन ला उपस्थित किया।

चम्पा की एक ननद का विवाह कुछ महीनों पूर्व हुआ था। उसके पीछे जमाई बाबू पहली ही बार ससुराल आ रहे थे। उनके स्वागत के लिए और उनके ठहरने के लिए बड़े भारी प्रबन्ध किए गए थे और सेवा का भार छोड़ा गया था चम्पा के ऊपर। कुटुम्ब के एक सदस्य के रूप में नहीं, नौकरानी के रूप में। सास जमाई को यह बताना अशकुन समझती थी कि चम्पा उसके घर की ही एक व्यक्ति है।

जमाई आए। तुनुक-मिज़ाज थे। आते ही कहने लगे, 'सिर में दर्द है।' सास को चिन्ता हो गई। किसी को पास न जाने दिया। चम्पा को सिर दबाने वहाँ भेजा। चम्पा ने कभी ऐसा कार्य नहीं किया था। सेवा उसने की थी, बन्दियों से भी अधिक। परन्तु एक पुरुष की सेवा उसने नहीं की थी। वह सकुचाई हुई जमाई बाबू के कमरे में गई और उनका सिर दबाने लगी। जमाई बाबू ने चम्पा को नौकरानी समझा था। उसे पुकार कर वह बोले—नौकरानी, ज़रा पैर और दबा दे। चम्पा सब समझ गई। जमाई बाबू के सामने उसे नौकरानी रूप में उपस्थित किया गया था। वह चाकरी करने से नहीं घबराती थी, परन्तु उसे इस प्रकार का व्यवहार अखर गया। क्या वह इस योग्य भी न थी, कि उसे घर के आदमी का रूप भी दिया जा सके। वह जमाई बाबू के आदेश पर खिन्न-मना हुई उठी और उसके एक पैर को हाथों में लेकर दबाने लगी। दबाते-दबाते उसके नेत्रों से दो बूँद आँसू टपक पड़े और वे जमाई बाबू के पैरों पर गिर पड़े। सतर्क होकर जमाई बाबू चिल्ला कर बोले—यह क्या ?

चम्पा चुप रही।

"नौकरानी।"

चम्पा ने आँचल से आँसू की बूँदें जमाई बाबू के पैरों पर से पोंछ दीं, परन्तु वह बोली नहीं।

"नौकरानी !"—उन्होंने फिर पुकारा।

"जी !"—रोते हुए कम्पित स्वर से चम्पा ने इस बार उत्तर दिया।

जमाई बाबू ने इस 'जी' को सुना। इस स्वर में एक नौकरानी का उत्तर न था। उन आँसुओं में एक नौकरानी के आँसू न थे। जमाई बाबू उठे। चम्पा की ओर दृष्टि फिराई। उन्हें उसके अधखुले घूँघट में से उसका म्लान मुख और आँसू भरी आँखें दीख पड़ीं।

"तुम नौकरानी हो ?"—उन्होंने फिर पूछा।

"आप नहीं जानते ?"—पूछ कर चम्पा ने दो आँसू फिर जमाई बाबू के पैर पर गिरा दिए।

"नहीं। विवाह के समय तो मैंने तुम्हें देखा नहीं था। तुम कौन हो ?"

"इस घर की दासी।"

"यह नहीं हो सकता।"

"क्यों ?"

"तुम्हारे मुख से विदित होता है कि तुम दासी नहीं हो।"

"फिर कौन हूँ ?"

"कोई अत्याचार-पीड़िता।"

"अब बातें रहने दीजिए। आपके पैर दबा दूँ। सास यदि देखेंगी....."

"सास ?"

"नहीं, कुछ नहीं। मुझे मेरा काम करने दीजिए।"—चम्पा अपनी भूल को बचाती हुई पैर दबाने लगी। जमाई बाबू ने पैर चम्पा के हाथ से छुड़ा कर कहा—तुमसे पैर न दबवाऊँगा।

"क्यों ?"

"मेरी इच्छा।"

"मुझे दण्ड मिलेगा।"

"तुम्हें कौन दण्ड देगा ?"

"आप कुछ नहीं जानते ?"

"अब जानने लगा हूँ। तुम मेरी सलहज हो ?"

"आप इन झगड़ों में न पड़िए। आप दो-चार दिन के लिए आए हैं। फिर चले जायँगे। मैं वर्षों से यहाँ हूँ और सदा यहीं रहना है। मेरा यही जीवन है।"

"यह जीवन नहीं है। यह अत्याचार है।"

"विधवा का जीवन जीवन नहीं है। उसके पर्य्याय-वाची अनेकों शब्द हैं।"

"तुम्हारे विषय में सुना बहुत था। परन्तु तुम्हें इस रूप में देखने की आशा नहीं थी।"

"आप मुझसे क्यों इतनी सहानुभूति दिखलाते हैं ?"

"न जाने क्यों! तुम्हारा दुःख मुझे अपना ही दुख प्रतीत होता है।"

इतने ही में सास ने चम्पा को नीचे बुला लिया। चलते-चलते चम्पा ने जमाई बाबू की ओर कृतज्ञता-भरी दृष्टि से कुछ देर देखा और कहा—"आप बड़े दयालु हैं।"

"तुम भी दया की पात्र हो।"—जमाई बाबू ने उत्तर दिया।

चम्पा शीघ्र-शीघ्र सास की ओर गई और काम करने लगी। परन्तु आज वह अपने अन्तर में बहुत कुछ परिवर्तन देख रही थी। वह परिवर्तन ऐसा था कि उसका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ा था। उसके नेत्रों को देखने से पता चल सकता था कि उसमें कुछ परिवर्तन था। उसके हृदय की धड़कन बता रही थी कि उसमें कुछ परिवर्तन था। उसके श्वास की गति बता सकती थी कि उसमें कुछ परिवर्तन था।

आज प्रथम बार उसे एक सहानुभूति प्रकट करने वाला मिला था। प्रथम बार एक ऐसा व्यक्ति मिला था, जिसने चम्पा के लिए कुछ आत्मीयता दिखाई हो। यही तो वह चाहती थी। आत्मीयता और सहानुभूति। इन्हीं की तो उसके जगत में कमी थी। आज उसे इनका दर्शन हुआ। उसकी आत्मा जाग पड़ी। जमाई बाबू को केवल दो-चार दिन रहना था, फिर भी उसे ऐसा विदित हुआ मानो उसे एक रक्षक मिल गया हो, एक ऐसा व्यक्ति मिल गया हो जिस पर वह कुछ आशाएँ बाँध सके और जिसका सहारा ले सके।

इन उल्लासमय विचारों के कारण उसे आज संसार नूतन प्रतीत होता था। चिड़ियाँ पहले भी उसके घर के पीछे वाले नीम पर बैठती थीं और चह-चह का नाद किया करती थीं, परन्तु चम्पा कभी उस ओर दृष्टि भी न करती थी। आज उन चिड़ियों का चहचहाना उसे बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था। सामने के छोटे-छोटे वृक्षों के नए कोंपल पहले कभी उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट न कर सके थे, परन्तु आज उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो वे नए कोंपल एक दूसरे को छेड़-छेड़ कर, ताथा-थेई ताथा-थेई नृत्य कर रहे थे। श्रावण के वे गीत, जो उसे विषमय मालूम देते थे, आज उसके श्रोत्रों को प्यारे लग रहे थे। वह धीरे-धीरे, जिधर जाती उधर ही, गुनगुनाती जाती थी :—

पड़ोरी हिंडोलो चम्पा बाग़ में,
सब सब झूलन जायँ।
मैं झूलूँ, मेरो सखियाँ झूलें,
बालम झोंके लगायँ॥ पड़ोरी०॥

भोली चम्पा! उसे क्या पता था कि इस उल्लास के पर्दे की ओट में संसार उससे एक तीव्र बदला लेने का षड्यन्त्र रच रहा था।

## ३

जमाई बाबू चले गए, परन्तु चम्पा का सर्वस्व अपहरण कर ले गए। कुछ दिनों में चम्पा यह जान गई कि उसने जो कुछ किया था, उसका क्या परिणाम होने वाला था। इसके लिए घर में वह स्थान प्राप्त नहीं कर

सकती थी। वह जानती थी कि कुछ दिनों में ही उसका वहाँ रहना असम्भव हो जायगा। पाप करना और बात है और समाज में पापी के नाम से रहना कुछ और।

एक दिन जब निशीथ की गोदी में जगत सो रहा था, चम्पा घर से निकल चली। उसे जमाई बाबू से बहुत-कुछ आशा थी। उनके सहारे पर ही वह ऊँचा घोड़ा चढ़ रही थी; और जमाई बाबू भी चलते समय उसे यही आश्वासन दिला गए थे। उस आश्वासन का प्रथम भाग पूरा न हुआ था। चम्पा को उनसे एक पत्र की आशा थी, परन्तु अभी तक उसे कोई समाचार न मिला था। फिर भी चम्पा का विश्वास कम न हुआ। शायद पत्र न डाल सके हों, शायद वह पत्र मार्ग में कहीं रुक गया हो।

चम्पा जमाई बाबू से मिली, परन्तु यह वह जमाई बाबू नहीं थे, जिन्होंने उसके साथ सहानुभूति प्रकट की थी, जिन्होंने उसे आत्मीयता की दृष्टि से देखा था। इन जमाई बाबू के नेत्रों में निर्मोहीपन था, व्यवहार में रुक्षता थी और वाणी में थी कटुता।

"कहो, चम्पा, यहाँ कैसे ?"—उन्होंने चम्पा को देख कर पूछा।

"आपके लिए।"

"ननद की छाती पर दाल दलने के लिए ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

चम्पा ने उन्हें समझाया।

"कलङ्क-कालिमा ?"

"जो कुछ भी कहिए।"

"किसने यह कालिमा लगाई ?"

चम्पा अवाक् रह गई।

"बोलो !"—जमाई बाबू ने आदेशपूर्वक कहा।

"जानते नहीं ?"

"जानता तो पूछता ही क्यों ?"

"क्या वे चार दिन भूल गए ?"

"मैं ?"

"हाँ।"

"कोई पुराना पाप ?"

"नहीं।"

"झूठ।"

"इसलिए कि मैं अबला हूँ ?"

"त्रिया-चरित्र।"

"कुछ भी सही। मेरे दोनों संसार तो बिगड़ ही गए, अब क्या करूँ ?"

"यहाँ क्या है ?"

"और कहाँ है ?"

"घर जाओ।"

"जलती हुई भट्टी में फिर ?"

"करनी का फल भोगना ही पड़ेगा।"

"केवल मुझे ?"

"और कौन भोगेगा ?"

"तुम कहाँ जाओगे ?"

"समाज के पर्दे के पीछे।"

ठीक है। चम्पा ने विचार किया तो उसे यह बात सत्य मालूम हुई। समाज के पर्दे के पीछे ऐसे पुरुषों के लिए स्थान था। परन्तु उसके लिए कहाँ स्थान था ? वह किसकी शरण में जायगी ? उसका शिकवा, उसकी फ़रियाद कौन सुनेगा ? उसके नेत्रों से आँसुओं की एक धारा बहने लगी। जमाई बाबू उसके नेत्रों के सामने—उन रोते हुए, आँसू भरे नेत्रों के सामने—राक्षस की भाँति निर्मम, निर्दय होकर खड़े थे। चम्पा बिना कुछ कहे चुपचाप उठी। जमाई बाबू ने उसे उठते देख कर कहा—"सुनो।"

चम्पा ठहर गई।

जमाई बाबू ने कुछ रुपए जेब से निकाले और उन्हें चम्पा की ओर करके बोले—दस-बीस रुपए से मैं सहायता कर सकता हूँ। कहीं जाकर 'इस' का प्रबन्ध करा लेना।

चम्पा ने रुपए जमाई बाबू के हाथ से लेकर, बड़े ज़ोर से खींच कर, उसके मुख पर दे मारा और बोली—"राक्षस, इन रुपयों को अपनी राक्षसी पिपासा शान्त करने के लिए रख ले। मैं 'इस' का प्रबन्ध अपने बल पर करूँगी।"

## ४

रोती-रोती चम्पा वहाँ से चली। उसने निश्चय कर लिया कि न तो वह अपनी हत्या करेगी और न अपने बच्चे की। भिखारिणी की भाँति वह नगर-नगर घूमी, धूप-ताप सही, भूखी-प्यासी रही, परन्तु उस दिन की

आशा में वह जीवित रही। समय पाकर एक निर्जन, अकेले स्थान में, उसकी आशा एक दिन उसके सामने आ पड़ी। पुत्र था! चम्पा की बाँछें खिल गईं। उसके नेत्रों में एक अपूर्व ज्योति थी। उसका शरीर सुडौल तथा गौर वर्ण था। चम्पा कुछ देर तक उसके साथ केलि करती रही। परन्तु जब उसने अपनी ओर देखा तो उसका हृदय बैठ गया। जब तक वह न आया था, तब तक उसके विषय में चिन्ताएँ न थीं। परन्तु अब उसके लिए अनेकों काम करने पड़ेंगे। अनेकों वस्तुओं की आवश्कयता पड़ेगी। वह कहाँ से लाएगी इन सब वस्तुओं को? कहाँ उसके बच्चे को भोजन मिलेगा, कहाँ वस्त्र; कहाँ उसके सोने-खेलने के लिए स्थान? उसने बच्चे को एक ओर पड़े पयाल पर, बिछी हुई अपनी फटी साड़ी पर लिटा दिया और वह रोने लगी। बच्चे का प्राप्त होना जितना कठिन है, उसका रखना भी उतना ही कठिन है। वह कभी अपनी ओर देखती, कभी बच्चे की ओर। जब अपनी ओर देखती तो उसे दुःख होता, निराशा होती, वेदना होती। क्या वह इस योग्य थी कि अपने को उस बच्चे की माँ कह सके? क्या वह इस योग्य थी कि बच्चा बड़ा होकर उसे उतनी ही श्रद्धा की दृष्टि से देखेगा, जितनी श्रद्धा से एक साधारण माँ का बच्चा उसे देखता है? क्या उसके साथ बच्चे का भविष्य कुछ बन सकेगा, या उसे जन्म भर एक अज्ञात भिखारिणी के पुत्र के रूप में सदा भीख ही माँगनी पड़ेगी? जब वह बच्चे की ओर देखती तो उसके ये सारे विचार उड़ जाते। मातृ-स्नेह की ज्वाला उसके हृदय में धधक उठती। वह सारे संसार को भूल जाती, बच्चे को उठा कर छाती से लगा लेती और उसी में पूर्णतया तल्लीन हो जाती। उसका हृदय चिल्ला उठता—मैं पापिनी ही सही, मैं भिखारिणी ही सही, परन्तु है तो यह मेरा लाल। जगत को उससे उपेक्षा करने का क्या अधिकार है? हाँ, जगत को उसे मेरी गोदी से छीन लेने का क्या अधिकार है? नहीं, मैं अपने छौने को अपनी छाती से अलग नहीं करूँगी। उसके बिना मेरे नेत्रों में ज्योति कहाँ से आएगी? उसके बिना मेरे हृदय में गति कहाँ से आएगी? उसके बिना मेरी आत्मा और मेरा शरीर साथ रह कर क्या करेंगे?

दो दिन उसने बच्चे को अपने साथ रक्खा। परन्तु इन दिनों में ही उसे पता लग गया कि बच्चे का पालन करना उसके लिए असम्भव था। बच्चे का भविष्य और मातृ-स्नेह इन दोनों के बीच उसके हृदय में युद्ध हो रहा था। वह किस पक्ष को ग्रहण करे? बच्चे के हित के लिए उसकी ममता छोड़ दे? उसने इस प्रश्न पर विचार किया। अन्त में उसका निश्चय बन गया। उसने बच्चों को किसी सुरक्षित स्थान पर छोड़ना ही श्रेयस्कर समझा।

बच्चे को छाती से चिपटाए, भूखी-प्यासी वह एक नगर में होकर जा रही थी। गली में उसने देखा कि एक बहुत बड़ा यज्ञ हो रहा था। उसने पूछा, वह यज्ञ किस लिए था। उसे उत्तर मिला कि एक सेठ के पुत्र नहीं होता था, इसलिए वह यज्ञ किया जा रहा था। चम्पा ने थोड़ी देर विचार किया और फिर वह नगर के बाहर चली गई।

निशा का अवसान होने जा रहा था। मुर्गे 'कुकड़ू-कूँ' की ध्वनि लगा रहे थे। कहीं-कहीं स्त्रियों के चक्की पीसने का शब्द सुनाई दे रहा था। परन्तु मनुष्यों का आवागमन अभी आरम्भ न हुआ था। अपनी फटी हुई साड़ी में से एक टुकड़ा फाड़ कर चम्पा ने अपने बच्चे को उसमें लपेटा और चुपचाप सेठ के मकान की ओर चल दिया। मकान के द्वार पर कोई था नहीं। रात्रि का यज्ञ कराने के बाद सब सोए पड़े थे। चम्पा ने बच्चे को सँभाल कर द्वार की सीढ़ी पर एक ओर रख दिया। बच्चा सो रहा था। चम्पा ने उसकी ओर देखा। उसके नेत्रों से आँसू की लड़ी झड़ने लगी। उसका बच्चा कुछ घण्टों में ही दूसरे का हो जायगा। उसके लिए संसार में यह महान् त्याग था। समाज के अत्याचार और दरिद्रता की भेंट वह अपने एकमात्र पुत्र, अपने सर्वस्व को चढ़ा रही थी, उसने कुछ मिनटों तक बच्चे की ओर हसरत-भरी निगाह से देखा, उसके गाल पर चुम्बन की एक हलकी-सी छाप लगा दी और आँसू बहाती हुई उधर से चल दी।

५

चम्पा के बच्चे का लालन-पालन सेठ के घर में बड़े लाड़-प्यार से होने लगा। सेठ-सेठानी उस बच्चे को यज्ञ का प्रसाद समझते थे, अतः बच्चे के आराम की

उन्हें बड़ी चिन्ता रहती थी। इस लाड़-प्यार के जीवन में बच्चा बड़ा होने लगा। चम्पा कभी-कभी आकर उसे दूर से देख जाया करती थी। भिखारिणी थी। महीनों के लिए वह बाहर चली जाती थी और जिस दिन बच्चे की वर्षगाँठ होती थी उस दिन वह अपने बचाए हुए पैसों से अनेकों वस्तुएँ ख़रीद कर सेठ जी के द्वार पर छिप कर रख आती थी। उसका यह क्रम कई वर्ष तक चलता रहा। सेठ के सभी सम्बन्धी इस बात से चकित थे कि प्रति वर्ष इस प्रकार वस्तुएँ भेजने वाला कौन है, परन्तु उन्हें कुछ पता न लगा था।

बच्चा जब कुछ बड़ा हुआ तो सेठ जी का एक नौकर उसे छोटी गाड़ी में बैठा कर पार्क में खेलाने के लिए ले जाने लगा। चम्पा ने अब तक बच्चे को केवल दूर से ही देखा था और दूर से ही उसके लिए वस्तुएँ भेजी थीं। अब इतने वर्षों के बाद, जब वह बोल लेता था, खा-पी लेता था, चम्पा की यह इच्छा हुई कि वह बच्चे को एक बार तो अपनी गोदी में खेलावे तथा कुछ तो उसे अपने हाथों से खिला ले। उसने कुछ मिठाई ख़रीदी और पार्क की ओर चल दिया। एक ओर पेड़ों के झुरमुट में वह खेल रहा था। नौकर उस ओर नहीं था। चम्पा ने बच्चे को पुकारा—

"बेटे ?"

"हाँ !"—कह कर बच्चा उसकी ओर इस प्रकार चला आया, मानो उसे बहुत पहले से ही जानता हो।

"तू राजा बेटा है ?"

"हाँ !"

"तेरा नाम क्या है ?"

"अर्जुन !"

"मुझे पहचानता है ?"

"नहीं!"—भोले बच्चे ने भोली प्रकार से कह दिया। परन्तु चम्पा के हृदय में यह 'नहीं' चुभ गई। उसका बच्चा और उसी को नहीं पहचानता। विधि का कैसा विधान है !

"तेरी माँ हैं ?"

"हाँ !"

"कै हैं ?"

"एक !"

"कहाँ हैं ?"

"घर !"

"माँ अच्छी हैं ?"

"हाँ !"

"तुझे प्यार करती हैं ?"

"हाँ बहुत !"

"तू उन्हें प्यार करता है ?"

"हाँ !"

"और किसी को भी ?"

"पिता जी को !"

"और किसी को ?"

"और किसी को नहीं !"

"मैं अच्छी लगती हूँ ?"

"हाँ !"

"मेरी गोदी में बैठेगा ?"

"हाँ !"

चम्पा ने उसके आगे हाथ फैला दिए। बच्चा अर्जुन उसकी गोद में आकर चुपचाप बैठ गया।

"मुझे प्यार करेगा ?"

"नहीं !"

"क्यों ?"

"अम्मा ने कहा है !"

"यदि मैं अम्मा होती तो तू मुझे प्यार करता ?"

"हाँ !"

चम्पा ने उसका मुख चूमा और अपने आँचल से मिठाई का दोना निकाल कर कहा—अर्जुन, मिठाई खाएगा, बेटा !

"नहीं !"

"क्यों ?"

"अम्मा ने कहा है !"

"यदि मैं अम्मा होती तो तू खा लेता ?"

"हाँ !"

चम्पा का हृदय गद्गद होने लगा। उस भिखारिणी के लिए यही बड़ी सन्तोष की बात थी। रह-रह कर उसके मन में आया कि वह अर्जुन को बतला दे कि वही उसकी माँ है। परन्तु वह जी मसोस कर रह गई। उसने मिठाई में से एक ग्रास अर्जुन की ओर करके कहा—इतना खा लेगा मेरे कहने से ?

अर्जुन ने चम्पा की ओर देखा। चम्पा ने अर्जुन

की ओर देखा ! अर्जुन ने कुछ न कहा और मिठाई का ग्रास अपने हाथ में ले लिया। वह उसे खाने ही वाला था कि किसी ने चिल्ला कर कहा—क्या करता है, अर्जुन ! ख़बरदार जो मिठाई खाई।

वह शब्द सेठ जी का था। अर्जुन ने उन्हें सामने देखते ही हाथ की मिठाई पृथ्वी पर फेंक दी। चम्पा ने यह देखा तो अर्जुन को नीचे उतार दिया और बड़ी दीन-वाणी में बोली—उससे कुछ न कहना, मेरा ही दोष है।

"तू कौन है ?"—सेठ जी ने पूछा।

"भिखारिणी !"

"यहाँ क्या कर रही है ?"

"बच्चे के साथ खेल रही थी !"

"खेल रही थी या कुछ चुराने का प्रबन्ध कर रही थी ?"

"नहीं, नहीं, बच्चे मुझे प्यारे लगते हैं।"

"भिखारिणी होकर ऐसे स्वप्न ! तेरे सात पुश्तों में भी कोई ऐसा हुआ है, जिसके यहाँ ऐसा बच्चा हो ! ख़बरदार ! अब कभी उसे हाथ लगाया तो !"

"हाथ नहीं लगाऊँगी, परन्तु कभी-कभी देख लिया करूँ ?"

"जाती है या नहीं, अधिक बातें कीं तो बस चालान करा दूँगा।"

चम्पा एक ओर को चली। अर्जुन ने चम्पा को जाते हुए देखा तो वह रोकर बोला—हम उसके साथ खेलेंगे।

सेठ जी ने उसकी बात न सुनी और उसे डाँटते हुए घर की ओर ले चले।

घर जाने के एक घण्टे बाद ही अर्जुन को ज़ोर का बुख़ार चढ़ आया। रात भर वह अचेत रहा और बार-बार "भिखारिण", "भिखारिण" चिल्लाता रहा। सेठ जी से उनकी स्त्री ने पूछा—यह भिखारिण कौन है ?

"न जाने कौन है।"

"अर्जुन उसकी इतनी याद क्यों कर रहा है ?"

"पता नहीं ! पहले तो कभी उसे इधर देखा नहीं।"

"उसे बुला दो।"

"भिखारिणी को ?"

"कोई भी हो। बच्चे की जान तो बचानी है !"

"यह तो बेहोशी की दशा में ऐसा कह रहा है। कल तक ठीक हो जायगा।"

"इसका भी तो कोई कारण होगा। बच्चे के लिए क्या नहीं करना पड़ता ?"

सेठ जी उन्हें अप्रसन्न नहीं कर सकते थे। यद्यपि उन्हें एक भिखारिणी को इस प्रकार की प्रतिष्ठा का स्थान देना अखर रहा था, फिर भी पुत्र की ममतावश वह भिखारिणी को खोजने के लिए निकल पड़े।

चम्पा उन्हें मिली, सेठ जी समझे थे कि भिखारिणी उनसे रुपए माँगेगी, उनके बच्चे के रोग को पैसा कमाने का साधन बनाएगी ; परन्तु नहीं। चम्पा ने ज्योंही बच्चे की दशा का समाचार सुना, वह दौड़ी-दौड़ी सेठ जी के साथ आई। अर्जुन ने चम्पा को देखा। "भिखारिण" कह कर वह उससे लिपट गया। चम्पा ने रोते-रोते उसे अपनी छाती में छिपा लिया।

## ६

अर्जुन चम्पा की परिचर्या से अच्छा हो गया। उसके निरोग हो जाने पर चम्पा ने वहाँ से चलना चाहा। वह वहाँ पर रहना नहीं चाहती थी। उसे डर था कि कहीं मातृ-स्नेह से विवश होकर वह किसी के सामने यह न कह दे कि अर्जुन उसका पुत्र था। वह उसे भूलना, उससे दूर भाग जाना चाहती थी, ताकि उसका भविष्य उज्ज्वल तथा सुरक्षित रहे। परन्तु सेठ जी ने यह न माना। अर्जुन के नाम पर उससे प्रार्थनाएँ कीं और चम्पा को वहाँ नौकर की भाँति रहना पड़ा।

चम्पा और सेठानी के मातृ-प्रेम में पल कर अर्जुन बड़ा हुआ। चम्पा को यह भी अधिकार न था कि वह अर्जुन को बेटा कह कर पुकार भी ले। कभी जब सेठानी अर्जुन को प्यार करती, तो चम्पा का जी छोटा हो जाता। कभी-कभी उसके हृदय में यह लालसा बलवती हो जाती कि सेठानी के स्थान पर अर्जुन उसे माँ कह कर पुकारे। परन्तु वह बड़े साहस और बड़ी वीरता से हृदय के इन कोमल भावों को दमन कर जाती थी।

एक रात को सेठ जी के घर पर डाकुओं ने प्रहार किया। अर्जुन चम्पा की देख-रेख में एक कमरे में था। सेठ जी ने घर घिरा देख कर चम्पा से कहा—

"भिखारिण !"

"जी !"—चम्पा ने उत्तर दिया।

"इस समय अर्जुन की रक्षा तुम्हारे द्वारा ही हो सकती है।"

"मैं प्राण देकर भी उसकी रक्षा करूँगी।"

"सेठानी के होश उड़े हुए हैं। उनको और अर्जुन को इस कमरे में आध घण्टे तक रखना। तब तक मैं बाहर जाकर कुछ व्यक्तियों को लाता हूँ।"

"आप निश्चिन्त होकर जाइए।"

"तुम इस समय अपने को अर्जुन की माँ समझना।"

"सगी माँ से अधिक। उसके लिए कोई भी बलिदान बड़ा न होगा।"

सेठ जी छिप कर बाहर गए। चम्पा ने सेठानी के हाथों से अर्जुन को छुड़ा कर छोटी कोठरी में बन्द कर दिया और डाकुओं का मार्ग देखने के लिए वह उसके द्वार पर जम कर बैठ गई। डाकू आए। चम्पा को देखा।

"कुँवर कहाँ है ?"—डाकुओं ने पूछा।

"उसका क्या करोगे ?"

"हत्या।"

"हत्या ?"—चम्पा चीख़ पड़ी।

"हाँ, उसे सेठ जी के धन का उपभोग न करने देंगे !"

"तो तुम डाकू नहीं हो ?"

"न, हम हैं सेठ जी के वारिस।"

"मुझे पता नहीं, कुँवर कहाँ है।"

सेठानी उधर कोने में छिपी बैठी थीं। डाकुओं ने उन्हें पकड़ लिया।

"यही तो सेठानी हैं। कुँवर कहाँ है ?"—डाकू चिल्लाए।

"मैं नहीं जानती।"—सेठानी बोलीं।

"नहीं बताती तो बालों में तेल डाल कर आग लगा दो।"—डाकू बोले।

सेठानी सिहर उठीं।

"मुझसे न पूछो। वह जानती है।"—कह कर सेठानी ने चम्पा की ओर इशारा किया और पृथ्वी पर गिर पड़ी। चम्पा के हृदय में सेठानी से घृणा हो गई। यह वह स्त्री है, जिसे संसार अर्जुन की माँ समझता है और वह ज़रा-सा बलिदान भी नहीं कर सकती। परन्तु चम्पा से मातृत्व का अधिकार भी छीन लिया। चम्पा डाकुओं की ओर गई। थोड़ी देर तक उनकी ओर देखती रही। उसके नेत्रों से भयानक ज्वालाएँ निकल रही थीं। उसका मुख तमतमा रहा था।

"मैं जानती हूँ, परन्तु बताऊँगी नहीं।"—उसने दहाड़ कर कहा।

डाकुओं का सरदार अवाक् होकर, चम्पा की ओर थोड़ी देर तक देखता रहा। फिर यह विचार कर कि वह एक स्त्री से पराजित होना स्वीकार कर रहा था, उसने चम्पा की ओर बढ़ कर कहा—न बताओगी ?

"नहीं !"—उसके स्वर में वही दृढ़ता थी।

"नहीं ?"

"मरते समय तक नहीं।"

डाकुओं के सरदार ने एक कोड़ा चम्पा को मारा। वह बिलबिला उठी। परन्तु वहाँ से हिली नहीं।

"और मारो, कायर !"—वह बोली। डाकू ने दूसरा कोड़ा मारा, तीसरा कोड़ा मारा, चौथा कोड़ा मारा। चम्पा मूर्ति की भाँति शान्त खड़ी रही। उसके शरीर से रक्त बहने लगा। उसका मुख पीला पड़ता गया, मुख से झाग निकलने लगे। कुछ मिनटों में ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। इतने ही में नीचे से बन्दूक़ का शब्द हुआ। सेठ जी की सहायता आ पहुँची थी। डाकू भाग खड़े हुए। सेठ जी ने आकर देखा, चम्पा अचेत पृथ्वी पर पड़ी थी। उन्होंने चम्पा का शिर उठाया। उसके नेत्र कुछ-कुछ हिल रहे थे।

"भिखारिण !"—उन्होंने पुकारा।

"अर्जुन !"—चम्पा के मुख से निकला। सेठानी ने कोठरी की ओर इशारा कर दिया। कोठरी का द्वार खुलवाया जा रहा था कि सेठानी चम्पा के पास आई और उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर बोली—भिखारिण !

"हाँ !"

"अर्जुन से इतना प्रेम क्यों ?"

"तुम न समझ सकोगी।"

"मेरे हृदय में एक बात है। सुनोगी ?"

"क्या ?"

"तुम अर्जुन की माँ हो ?"

चम्पा के हृदय में युद्ध होने लगा। क्या वह कह दे

कि अर्जुन उसी का पुत्र था ? क्या मरते समय वह यह सन्तोष प्राप्त कर ले कि अर्जुन उसकी स्मृति अपनी माँ के रूप में करेगा ? परन्तु इसका मूल्य अर्जुन को चुकाना पड़ेगा।

"सेठानी, नहीं, वह मेरा बच्चा नहीं है।"

"फिर ?"

"मेरा भी एक बच्चा था। ऐसा ही। यही मुख, यही शरीर, यही आँखें, यही स्वर !"

"उसका क्या हुआ ?"

"खो दिया।"

"मर गया ?"

"नहीं।"

"फिर क्या हुआ ?"

"लोप हो गया, किसी दूरस्थ देश में। किसी अनजान दिशा में ?"

"अभागिनी !" कह कर सेठानी अपनी और चम्पा की आँखों से आँसू पोंछने लगीं। इतने ही में अर्जुन बाहर निकल आया। वह अब समझदार बालक था। आते ही उसने चम्पा का शिर अपनी गोदी में ले लिया।

"अर्जुन !"—चम्पा क्षीण स्वर में बोली।

"हाँ, भिखारिण !"

"तुम अच्छे हो ?"

"हाँ, भिखारिण !"

"तो मैं तुम्हारी रक्षा करके मर रही हूँ ?"

"तुम मरोगी नहीं, भिखारिण !"

"अब मैं जीवित न रह सकूँगी, अर्जुन !"

"मेरे लिए यह सब कुछ। तुम मेरे लिए मर रही हो, भिखारिण ?"

चम्पा ने शिर हिला दिया।

"फिर कभी आओगी, भिखारिण ?"

"क्यों ?"

"ऐसा विदित हो रहा है कि मैं कोई मूल्यवान वस्तु खो रहा हूँ।"

"मेरी याद किया करोगे ?"

'रो-रोकर !"

'मैं सन्तोष से मरूँगी।"

"और कुछ चाहती हो, भिखारिण ?"

"करोगे ?"

"एक बार नहीं, अनेक बार।"

"एक बार, अन्तिम बार, मुझे 'अम्मा' कह कर पुकारोगे ?"

अर्जुन की आँखों से आँसू बहने लगे।

वह चम्पा से लिपट कर बोला—"अम्मा !"

चम्पा ने उसके शिर पर हाथ फेर कर कहा—बेटा !

माता तथा पुत्र के इस अन्तिम एवं अनजान मिलन पर सभी के नेत्रों से आँसू बह रहे थे।

# पावस-प्रसंग

[ श्री० फूलबदनसिंह जी, 'फूल' ]

बीति गई अब तो वह ग्रीष्म की लुवार सखी,
लता हरियानी आज सारे उपवन में।
उड़तो थी धूल जहाँ खिलते हैं फूल वहाँ,
करते किलोल केकी कानन-कुञ्जन में॥
हाहाकार उबाल-सो समीर जहाँ बहतो थी,
लगते थे अग्नि-बान कोमल बदन में।
पड़तो वहाँ है यह आज क्या ही पावस की,
सुरभि गुलाब-सी फुहार मधुबन में॥

# वर्तमान मुस्लिम-जगत

[ एक डॉक्टर ऑफ़ लिट्रेचर ]

( गताङ्क से आगे )

## सङ्घ का ध्येय और कार्य

नेसिया-सङ्घ ने भी विदेशी सरकारों से कभी खुल्लमखुल्ला मुठभेड़ नहीं की है। पिछले पचास वर्षों से यह सङ्घ काफ़ी शक्तिमान रहा है, पर तो भी उसने कभी किसी सरकार से प्रत्यक्ष में लड़ाई नहीं लड़ी। उत्तर-अफ़्रीका के अनेक भागों में, जहाँ भी सरकार के विरुद्ध बलवे हुए हैं, उनमें सेनेसिया-सङ्घ के लोग प्रायः सम्मिलित हुए हैं; लेकिन सम्पूर्ण सङ्घ ने सरकार के विरोध की नीति की कभी ज़ाब्ते में घोषणा नहीं की है। इस विषय में यह सङ्घ और आर्य-समाज बहुत मिलते-जुलते हैं। इस नीति का अनुसरण इस सङ्घ ने ईसाई शासकों के प्रति ही नहीं, बल्कि तुर्की शासकों के प्रति भी किया है। तुर्कों के प्रति कभी भी इनका व्यवहार मित्रता का नहीं रहा। सुल्तान अब्दुल-हमीद, जो इस्लाम-सङ्गठन का बड़ा हामी था और जिसको कई मुसलमान देशों ने अपना ख़लीफ़ा स्वीकार किया था, उसको भी सेनेसिया-सङ्घ सन्देह की दृष्टि से देखा करता था। सेनेसिया अलमहदी ने तो एक समय यहाँ तक कह दिया था कि, "तुर्क और ईसाई दोनों को मैं एक ही प्रकार से मारना चाहता हूँ।" वास्तव में आदि अरब मुसलमानों की भाँति यह सङ्घ स्वातन्त्र्या-भिलाषा में रँगा हुआ था। इसको स्वाधीनता के सिवाय और कोई योजना पसन्द नहीं आ सकती। इस सङ्घ का ध्येय है पहिले उत्तर-अफ़्रीका को ऐक्य सूत्र में बाँधना और फिर उसमें सम्पूर्ण मुस्लिम-संसार को सम्मिलित करके मुसलमानों के अभ्युदय-काल की "दमामत" की जागृति करना। ये लोग उन दिनों का स्वप्न देख रहे हैं, जब ख़लीफ़ा अबूबकर और उमर इस्लाम के नेता थे और मुसलमानों में एक प्रकार का प्रजातन्त्र सङ्गठन था। इस सङ्घ का कार्यक्रम है पहिले धार्मिक और सामाजिक जागृति और तदनन्तर राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति।

इस समय सेनेसिया-सङ्घ के आश्रम अफ़्रीका में बढ़ते जाते हैं और उनके द्वारा कितने ही मदरसे स्थापित होते जाते हैं। लोगों को हाकिमों और वकीलों के हुक्म की तत्काल तामील करने की तथा आह्वान पर एकत्र होकर धर्म-रक्षा के निमित्त अपना सर्वस्व अर्पण कर देने की शिक्षा दी जा रही है। साथ ही लाखों नीग्रो लोगों को इस्लाम धर्म में मिलाया जा रहा है।

वर्तमान मुस्लिम जागृति का सर्व-प्रधान अङ्ग है इस्लाम-प्रचार। यों तो आरम्भ-काल से ही इस्लाम के कार्यक्रम में अन्य मतावलम्बियों को येन-केन-प्रकारेण अपने धर्म में मिलाना मुख्य अङ्ग रहा है। अबूबकर और उमर जैसे निःस्वार्थी नेताओं के समय में भी छल, बल और कौशल से इस्लाम धर्म स्वीकार करवाना बुरा नहीं माना जाता था। इसके फल-स्वरूप करोड़ों मनुष्यों ने डेढ़ सौ साल के अन्दर ही इस धर्म को स्वीकार कर लिया था। पतन-काल में इस्लाम का यह कार्य बन्द नहीं होने पाया था, परन्तु न्यून अवश्य हो गया था। मध्यकाल में तो भारत, चीन, बालकन अन्तरीप, फ़िली-पाइन्स, जावा, बोर्नियो आदि देशों में इस्लाम की आश्चर्यकारिणी उन्नति हुई थी। फिर भी १८वीं शताब्दी में यह कार्य प्रायः कुण्ठित सा हो चला था।

## अफ़्रीका

१९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब इस्लामी सङ्गठन के प्रयत्न किए जाने लगे तो नवीन उत्साह और उमङ्ग के साथ मुसलमान उपदेशकों ने अन्य मतावलम्बियों को अपने धर्म में सम्मिलित करना आरम्भ किया। मुसलमान मुल्लाओं तथा फ़क़ीरों के अतिरिक्त प्रत्येक मुसलमान अपने धर्म के अनुयायियों की संख्या बढ़ाने का प्रयत्न करने लगा और यूरोप के सिवाय सम्पूर्ण मुस्लिम संसार

में यह कार्य अधिकाधिक सफल होने लगा। प्रत्येक मुसलमान अपने ग़ैर मुस्लिम पड़ोसी को मुसलमान बनाना अपना कर्तव्य समझने लगा और यात्री, व्यापारी, शिक्षक, अधिकारी, सब में यह अभिलाषा प्रबल हो उठी कि जैसे-तैसे इस्लाम के अनुयायियों की संख्या बढ़ाई जावे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक सङ्घ और मण्डलों की स्थापना हुई और सर्वत्र इस तञ्ज़ीम के कार्य की उन्नति होने लगी। इन तञ्ज़ीम-सङ्घों में सब से अधिक प्रबल और सफल सङ्घ है सेनेसिया-सङ्घ। धर्म-प्रचार की अभिलाषा और शारीरिक कष्टों की उपेक्षा से भरे हुए अनेक उपदेशक सेनेसिया-सङ्घ से दीक्षा ले-लेकर दूर-दूर देशों में गए हैं और उन्होंने आश्चर्यकारिणी सफलता प्राप्त की है। पश्चिमी और मध्य अफ़्रीका के नीग्रो लोगों में इनको असाधारण साफल्य मिला है। इन देशों में जो यूरोपियन गया, उसको यह बात अनुभव हुए बिना न रही कि इस्लाम वहाँ पर दिन-दिन उन्नति कर रहा है। एक अङ्गरेज़ ने सन् १९०० में लिखा था कि—"अफ़्रीका के मध्य में इस्लाम-धर्म ज़ोरों से बढ़ रहा है। इससे नीग्रो लोगों का प्रारम्भिक धर्म शीघ्रता के साथ उच्छिन्न होता जा रहा है, और यह कहना कि यहाँ ईसाई मत का प्रचार हो सकता है, भारी भ्रम है।" एक फ़्रन्सीसी ईसाई उपदेशक ने उसी वर्ष लिखा था कि "अफ़्रीका के मध्य में इस्लाम बढ़ता जा रहा है। कभी इसकी गति धीमी हो जाती है, लेकिन इसका वेग रुकता कभी नहीं। अनेक विघ्नों को पार करता हुआ इस्लाम धर्म निरन्तर उन्नत हो रहा है। इसको किसी का डर नहीं है। ईसाई मत इसका प्रतिद्वन्द्वी है। लेकिन इसको अपनी विजय में इतना अटल विश्वास है कि वह ईसाई मत से भी घृणा नहीं करता। ईसाई लोग अपनी विजय के केवल स्वप्न देखा करते हैं, लेकिन मुसलमान लोग उसको नित्य प्राप्त करते जाते हैं।"

अभी लगभग २० वर्ष पूर्व अङ्गरेज़ों को पता चला कि न्यासालैण्ड में इस्लाम फैलता जाता है। तहक़ीक़ात करने पर विदित हुआ कि यह सब ज़ेञ्ज़ीबार टापू के निवासी अरबी मुसलमानों का कार्य था। इन लोगों ने १९०० के लगभग अपना कार्य आरम्भ किया था और १० वर्ष में ही इतनी सफलता प्राप्त कर ली कि दक्षिणी न्यासालैण्ड के प्रत्येक गाँव में मुसलमान मुल्ला और मस्जिद दिखलाई देने लगे। यह आन्दोलन खुल्लमखुल्ला यूरोपियन लोगों के विरुद्ध था, लेकिन तो भी अङ्गरेज़ी अधिकारियों को यह साहस नहीं हुआ कि इसको रोक सकें। उनको इस बात का भय था कि इसी प्रकार का आन्दोलन अन्यत्र भी आरम्भ हो जावेगा। अनेक यूरोपियन यात्रियों की धारणा है कि कुछ समय बाद इस्लाम-मत जेम्बेसी नदी को पार करके दक्षिणी अफ़्रीका में भी पहुँच जावेगा।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस्लाम धर्म का प्रचार केवल उन नीग्रो लोगों में ही नहीं हो रहा है जिनका कोई व्यवस्थित धर्म नहीं है, बल्कि ईसाई-मत को भी इससे भारी क्षति पहुँचती जाती है। पश्चिमी अफ़्रीका में अनेक ईसाई मुसलमान होते जाते हैं और मध्य-भाग की तरफ़ ऐबीसीनियन लोगों का प्राचीन ईसाई सम्प्रदाय इस्लाम की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई बाढ़ में शीघ्र ही विलीन होता हुआ जान पड़ता है। शस्त्र द्वारा नहीं, लेकिन प्रचार द्वारा मुसलमान लोग अपने आपको इन प्रदेशों में प्रबल बनाते जा रहे हैं। जिन जातियों में ४०-५० वर्ष पहिले एक भी मुसलमान नहीं था, वे प्रायः अब सब मुसलमान हैं।

## रूस और चीन

इस १९वीं शताब्दी के इस्लाम-प्रचार को सर्वाधिक सफलता तो अफ़्रीका में ही प्राप्त हुई, परन्तु संसार के अन्य भागों में भी यह असफल नहीं हुआ। रूस का दक्षिणी भाग, जिसमें अधिकांश जन-संख्या तारतारी लोगों की है, वह बहुकाल तक तुर्की के आधिपत्य में था और इसलिए वहाँ के निवासियों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। लेकिन जब वह प्रदेश तुर्की के राज्य से निकल कर रूस में मिल गया तो वे लोग अधिकतर ईसाई हो गए। ११वीं शताब्दी की धार्मिक जागृति के समय इस्लाम के मुल्ला इस तारतारी देश में पहुँचे और अपने उन भाइयों को, जो इस्लाम को त्याग कर ईसाई मत ग्रहण कर चुके थे, पुनः अपने धर्म में सम्मिलित करने लगे। वहाँ के ईसाई पादरियों ने इससे त्रस्त होकर इस्लाम का बहुत विरोध किया और रूसी सरकार ने भी दमन-नीति का कभी-कभी उपयोग किया, लेकिन फिर भी इस्लाम का प्रचार नहीं रुक सका।

इस समय चीनी मुसलमानों में भी नवजीवन का सञ्चार होने लगा। अरबी सौदागर और सैनिकों के द्वारा इस देश में इस्लाम कई शताब्दी पूर्व पहुँच चुका था। वहाँ ये लोग कई शताब्दियों से बसे हुए हैं और चीनी स्त्रियों से इनकी शादियाँ हुआ करती हैं। परन्तु तो भी ये लोग चीनी लोगों से पृथक हैं और अपने को एक उन्नत जाति समझते हैं। मुसलमानों की अधिक संख्या चीन के पश्चिमी भाग में चीनी तुर्किस्तान में पाई जाती है। १९वीं शताब्दी के मध्य तक तो इन लोगों के साथ चीन-सरकार का व्यवहार बहुत अच्छा था, लेकिन फिर इनके गर्विष्ट आचरण और गुस्ताख़ाना रुख़ से सरकार को सन्देह होने लगा और मुसलमानों के प्रति कई प्रकार की सख़्तियाँ और अत्याचार होने लगे। जब इस्लामी सङ्गठन की प्रबल लहर चीन में पहुँची तो वहाँ कई उपद्रव हुए और सन् १८७० के लगभग तुर्किस्तान तथा यूनन सरकार के विरुद्ध उठ खड़े हुए। धर्मान्ध मुसलमानों ने भयङ्कर युद्ध-शक्ति का परिचय दिया और याकूब बेग़ नामक एक नेता के सञ्चालन में तुर्किस्तान तथा यूनन कई वर्ष तक प्रायः स्वतन्त्र ही रहे। उस समय ऐसा विदित होने लगा था कि चीन के पश्चिमी भाग में एक स्वतन्त्र मुसलमान-राज्य स्थापित हो जायगा और शायद वह सारे चीन को एक दिन हड़प बैठेगा। याकूब बेग़ की प्रसिद्धि सारे मुस्लिम-जगत में हो गई और तुर्किस्तान ने उसको शमसुद्दीन की उपाधि से सम्मानित किया। वर्षों तक उसमें और चीन-सरकार में युद्ध जारी रहा। कई बार भयङ्कर लड़ाइयाँ हुईं, कई बार लोमहर्षण क़त्लेआम हुए, अन्त में उपद्रव शान्त हो गया और बलवाई लोग दब गए। इस समय चीनी मुसलमानों की संख्या घट गई है और उनकी सोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त नहीं हो सकी है, पर तो भी उनमें जीवन और उत्साह है और उनकी संख्या इस समय एक करोड़ के लगभग है, जो कदापि चीन-सरकार के लिए उपेक्षणीय नहीं है।

## भारत

भारतवर्ष में इस्लाम का प्रचार यों तो अब भी जारी है, लेकिन पिछली शताब्दी में यह बहुत प्रबल था। जिस समय स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य-समाज का प्रचार आरम्भ किया था, उस समय मुसलमानों की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती थी और हिन्दुओं की घटती जाती थी। ऋषि दयानन्द ने चाँदापुर के मेले में एक प्रसिद्ध मुसलमान विद्वान मौलवी मोहम्मद क़ासिम के साथ शास्त्रार्थ किया था और वह मुसलमानों को भी वैदिक धर्म में शामिल करना धर्मानुकूल समझते थे। इस कारण मुसलमानों ने उनका घोर विरोध किया था और आर्य-समाज के प्रसिद्ध वक्ता श्री० लेखराम जी को एक मुसलमान ने क़त्ल किया था। इस समय भी देश का दुर्भाग्य है कि हिन्दू-मुसलमानों में शुद्धि और तञ्ज़ीम के कारण अनेक झगड़े हो जाया करते हैं। भगवान से प्रार्थना है कि अपने धर्म पर दृढ़ रहते हुए भी मुसलमान भाई शीघ्र यह समझने लगें कि भारतवर्ष उनकी भी मातृ-भूमि है और इसकी रक्षा करना उनका उतना ही बड़ा कर्तव्य है, जितना अपने धर्म की रक्षा करना। भारतवर्ष के सिवाय जावा, बोर्नियो, सुमात्रा, स्याम आदि प्रदेशों में भी १९वीं शताब्दी में इस्लाम का प्रचार काफ़ी बढ़ा था।

## जमालुद्दीन का कार्य एवं उसके विचार

इस प्रकार धर्म-प्रचार के साथ ही साथ मुसलमान देशों में यूरोपियन जातियों के प्रति घृणा भी बढ़ती जाती थी। मुस्लिम संसार यह अनुभव कर चुका था, और उसका अनुभव भी ठीक था कि मुसलमानों के देशों से यूरोपियन लोगों को निकाले बिना उनका सङ्गठन, सुधार या स्वातन्त्र्य असम्भव है। इसलिए अनेक नेता यूरोपियन लोगों के प्रति घृणा का प्रचार करने लगे और उनकी कूटनीति से मुसलमानों को सचेत करने लगे। इस काम को करने वालों में सय्यद जमालुद्दीन अफ़ग़ानी सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसका जन्म ईरान के असदाबाद नामक नगर में हुआ था, परन्तु इसका पिता अफ़ग़ानी था। इसकी बुद्धि असाधारण थी और इसका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक तथा प्रभावोत्पादक। इसमें कार्य करने की शक्ति और ध्येय-दृढ़ता अद्भुत थी। उसने अधिकांश मुस्लिम जगत में ही नहीं, बल्कि पश्चिमी यूरोप में भी भ्रमण किया था। इस विस्तृत भ्रमण के अतिरिक्त उसने अध्ययन भी ख़ूब किया था। उस संयुक्त अनुभव का उसने अपने

आन्दोलन में उपयोग किया था, जिसके कारण वह जहाँ जाता था, वहाँ ही उसको सफलता प्राप्त होती थी। ऐसा मालूम होता था मानो उसका जन्म ही इस कार्य के लिए हुआ हो। अपने आकर्षक व्यक्तित्व और धारा-प्रवाह भाषण के द्वारा वह जहाँ चाहता था वहाँ एक नवीन विचार-धारा और लोगों के हृदयों में हलचल उत्पन्न कर सकता था। सेनूसी की भाँति वह धर्म पर इतना ज़ोर नहीं देता था जितना राजनीति पर। जमालुद्दीन प्रथम मुसलमान था, जिसने पश्चिमीय राजनैतिक आधिपत्य के ख़तरे को भली भाँति समझ कर मुसलमानों को उससे सचेत करने का प्रयत्न किया और उससे अपनी रक्षा करने की योजनाएँ सुझाईं। यूरोप के औपनिवेशिक अधिकारी लोग उसको शीघ्र ही ख़तरनाक मानने लगे। अङ्गरेज़ लोग उससे डरने लगे और उसको तङ्ग करने लगे। कुछ समय तक वह भारत-वर्ष में क़ैद रहा और फिर १८८० के लगभग वह मिश्र में गया और वहाँ अरबी पाशा ने यूरोपियन लोगों के विरुद्ध जो आन्दोलन कर रक्खा था उसमें उसने सहयोग दिया। सन् १८८२ में जब अङ्गरेज़ों ने मिश्र पर अपना अधिकार जमा लिया तो उसको उन्होंने देश से निकाल दिया। कुछ समय तक वह इधर-उधर घूमता रहा और यूरोप के विरुद्ध मुसलमानों को उत्तेजित करता रहा। आख़िर को वह क़ुस्तुनतुनिया पहुँच गया और सुलतान तुर्की से उसकी मैत्री हो गई। सुलतान अब्दुल हमीद इस समय मुस्लिम-सङ्गठन की योजनाएँ सोच रहा था, इसलिए जमालुद्दीन के विचार और ध्येय उसको बहुत अच्छे लगे और वह सङ्गठन-विभाग का अध्यक्ष बना दिया गया। कुछ लोगों का यह भी ख़्याल है कि अब्दुल हमीद की नीति, योजनाएँ और प्रयत्न, सब में जमालुद्दीन का बड़ा भारी हाथ था, बल्कि वही सबका विधाता था। सुलतान की केवल सहायता थी। सन् १८९६ में जमालुद्दीन का काफ़ी वृद्धावस्था में देहान्त हो गया, लेकिन अन्त समय तक वह अपने ध्येय की पूर्ति में लगा हुआ था।

जमालुद्दीन के विचार सारांशतः निम्नलिखित थे :—

"ईसाई लोगों में आन्तरिक धर्म-भेद, जाति-भेद और राष्ट्र-भेद अनेक हैं, लेकिन पूर्वी देशों को हड़पने में और विशेषकर मुसलमानों को दबाने में वे सब एक हैं।

"मध्य-कालीन धर्म-युद्ध के भाव ईसाइयों में अब भी मौजूद हैं। सेण्टपीटर की भावनाएँ उनमें अब भी भरी हुई हैं। उनके हृदय में अब भी इस्लाम के प्रति भारी घृणा भरी हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून में मुसलमान राष्ट्रों को ईसाई राष्ट्रों के समान नहीं माना जाता। इससे भी ईसाइयों का दम्भ प्रकट होता है। मुसलमान राष्ट्रों को अवनत और असभ्य कह कर उन पर आक्रमण करना और उनको लूटना ईसाई लोग धर्मानुकूल और न्यायानुकूल मानते हैं, लेकिन जब मुसलमान अपने समाज को सुधारने का यत्न करते हैं, तो ईसाई लोग उसमें अनेक प्रकार के विघ्न डालते हैं और कभी-कभी इन स्तुत्य प्रयत्नों को विफल करने के लिए युद्ध तक की घोषणा कर देते हैं।

"सब ईसाई जातियाँ मुसलमानों से घृणा करती हैं और इस्लाम का उच्छेद करने के लिए निरन्तर यत्न करती रहती हैं।

"मुसलमानों के प्रत्येक सद्विचार और आकांक्षाओं का ईसाई लोग उपहास किया करते हैं। जिस भाव को वे अपने यहाँ देश-प्रेम या राष्ट्रीयता कहते हैं, उसी को इस्लाम में धर्मान्धता बतलाते हैं। जिसको वे यूरोप में आत्म-सम्मान कहते हैं, वही इस्लाम में उनको अभिमान और पागलपन जान पड़ता है।

"इससे स्पष्ट है कि ईसाइयों के आक्रमण से बचने के लिए और अपनी रक्षा करने के लिए मुसलमानों को अपना सङ्गठन करना चाहिए। इस सङ्गठन में उनको यूरोप की अनेक बातें ग्रहण करनी चाहिए और जिसकी वजह से यूरोप उन्नत और शक्तिमान बन सका है, उन्हीं उपायों का अनुसरण करना चाहिए।"

पश्चिमी हड़प-नीति को मुस्लिम-जगत ख़ूब समझ चुका था। मुसलमान लोग उनसे डरने लग गए थे, और उनसे घोर घृणा करने लगे थे। ऐसे वायुमण्डल में जमालुद्दीन के विचार और भावों का प्रबल प्रचार होना स्वाभाविक बात थी। जो कुछ वह कहता था सो था भी ठीक। मुसलमान ही क्या एशिया के सम्पूर्ण देशों के प्रति ईसाइयों का यही रुख़ रहा है। निर्बल देशों को दबाना, उनकी सम्पत्ति को लूटना, व्यापार को नष्ट करना और फिर इस काण्ड को धर्मानुकूल बतलाना और यह दम भरना कि यह सब सभ्यता और शिक्षा का

प्रचार करने के लिए है, यह ईसाइयों की साधारण नीति है। पर मध्य काल में मुसलमानों की नीति कौन सी अधिक भिन्न थी ? वे भी तो समझते थे कि इस्लाम ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है और इसका प्रचार करना और विरोधियों का वध करना उनका धर्म है। धर्म-प्रचार के बहाने सम्पन्न देशों को बरबाद किया था, भव्य भवनों को धराशायी किया गया था और सुर-प्रतिमाओं को तोड़ा गया था। अनेक सतियों का सतीत्व नष्ट किया गया था, विराट पुस्तकालय भस्मीभूत किए गए थे और असंख्य लोगों का वध किया गया था। उस समय मुसलमानों की बारी थी, अब ईसाइयों की बारी है। काल-चक्र इसी प्रकार घूमता है। देशों के विजय में और साम्राज्यों की स्थापना में धर्म और नीति का कोई स्थान नहीं है। वहाँ केवल शक्ति का महत्व है। इतिहास इसी बात की निरन्तर शिक्षा दे रहा है। बलवान जातियाँ केवल तलवार से बात करती हैं। तुर्की और चीन ने अन्तर्राष्ट्रीय पञ्चायत के सामने स्वातन्त्र्य की भिक्षा नहीं माँगी। वे अपने बाहुबल से स्वाधीन बने हैं। भारत, ईराक आदि देश अपने विजेताओं से निर्बल हैं, इसलिए वहाँ केवल प्रस्ताव पास हुआ करते हैं, प्रचार की योजनाएँ होती हैं और देश का भाग्य-निर्णय करवाने के लिए विदेशियों का मुख ताकना पड़ता है। यदि बाहुबल होता तो या तो युद्ध से थोड़े समय में फ़ैसला हो जाता या विदेशी लोग स्वयं अपने आप को अरक्षित समझ कर देश छोड़ भागते। फिर भी पराजित निर्बल जातियों में जागृति इसी प्रकार आरम्भ होती है। विजेताओं की शिकायत करना और धर्म-नीति की दुहाई देना राष्ट्रीय जागृति का प्रथम चरण है।

जमालुद्दीन की भाँति अन्य प्रभावशाली नेता भी १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ऐसे ही विचारों का प्रचार किया करते थे। उनमें तुर्किस्तान का सरदार अली पाशा प्रसिद्ध है। क्रीमियन युद्ध की समाप्ति के बाद अली पाशा के महल में दूर-दूर के देशों से आए हुए अनेक मुसलमान नेताओं की एक सभा हुई थी, जिसमें एक फ्रान्सीसी लेखक भी मौजूद था। वह लिखता है कि, "इस सभा में प्रत्येक वक्ता यूरोपियन लोगों के प्रति रोष और घृणा से भरा हुआ था, और सबके भाषणों में समान बात यह थी कि गोरी जातियों के विरुद्ध उठो, उनको अपने देशों से बाहर करो और स्वतन्त्रता प्राप्त करो।"

## सुल्तान अब्दुल हमीद और उसका कार्य

इस इस्लामी सङ्गठन का नेता था सुल्तान अब्दुल हमीद। उसको अन्य मुसलमान नेताओं के बुद्धिबल से सहायता अवश्य मिली थी, परन्तु अपने प्रभाव, धन, सामर्थ्य और पद के कारण वह इस प्रगति का केन्द्र और सरदार माना जाता था। वर्तमान संसार में अब्दुल हमीद अत्यन्त आश्चर्यकारी पुरुष था। उसकी बुद्धि असाधारण थी। लेकिन साथ ही कभी-कभी वह ऐसे कार्य करता था, जिससे पता चलता था कि वह विक्षिप्त चित्त भी हो जाता है। वह अपनी अत्यन्त उच्च आकांक्षाओं की पूर्ति के निमित्त कूटनीति तो क्या, घृणित से घृणित उपायों का उपयोग करना भी बुरा नहीं समझता था। जमालुद्दीन आदि बुद्धिमान नेताओं से वह प्रायः परामर्श किया करता था, पर था वह वास्तव में एक निरङ्कुश शासक, इसलिए जो उसके दिल में आता था करता था, और उसके सलाहकार भी उसका मुख देख कर बात करते थे।

जब अब्दुल हमीद राज-सिंहासन पर बैठा तो तुर्की की स्थिति बहुत कठिन थी। एक तरफ़ तो रूस के साथ भारी नाशकारी संग्राम होने वाला था और दूसरी तरफ़ सरकार के सब कर्मचारी तुर्की की काया-पलट करके उसको यूरोपीय राष्ट्र के समान उन्नत, प्रबल और किसी अंश में प्रजातन्त्र बनाना चाहते थे। लेकिन अब्दुल हमीद ने इन सब कठिनाइयों का अपूर्व साहस और धैर्य के साथ सामना किया। रूस के साथ युद्ध छिड़ते ही सुधार-चर्चा तो आप से आप ही बन्द हो गई। परन्तु जब युद्ध समाप्त हुआ तो उसने इस आन्दोलन को पुनः जागृत नहीं होने दिया और स्वयं पूर्ण-रूपेण निरङ्कुश शासक बन गया। अपने स्थान को निष्कण्टक बना चुकने के बाद उसने इस्लामी सङ्गठन की ओर ध्यान दिया। उसने अपने ख़लीफ़ा पद का राजनैतिक ध्येय की प्राप्ति के लिए उपयोग करना आरम्भ किया। वैसे इस्लाम के आदि काल से ही ख़लीफ़ा मुसलमानों का राजनैतिक और धार्मिक नेता माना जाता था, लेकिन बग़दादी ख़लीफ़ों के पतन के पश्चात्

ख़लीफ़ा पद का महत्व वास्तव में लुप्त हो गया था और बाद में जो ख़लीफ़े हुए, वे सब नाम मात्र के ख़लीफ़े थे। बग़दादी ख़लीफ़ों के बाद वास्तविक ख़लीफ़ा बनने का यत्न सुलतान अब्दुल हमीद ने ही किया था, लेकिन उसका ध्येय केवल राजनैतिक था. न उसमें अबूबकर का सा स्वार्थ-त्याग था, न धर्म-प्रेम, इसलिए ख़लीफ़ों का युग अब वापस लौटने वाला नहीं था। इसके अतिरिक्त अब्दुल हमीद सम्पूर्ण मुसलमान-संसार द्वारा अपना नेतृत्व स्वीकार करवा के उनके बल से यूरोप के विरुद्ध अपने देश की रक्षा करना चाहता था। यूरोप की बढ़ती हुई विजय-तृष्णा का जितना भय इस समय तुर्की को था, अन्य मुस्लिम देशों को उतना न था। अब्दुल हमीद ने अपने गुप्त उपदेशों द्वारा इस्लामी सङ्गठन का सन्देश सब मुसलमान देशों में पहुँचाया और जमालुद्दीन की भाँति यूरोप से घृणा करने वाले अनेक आन्दोलन के लिए क़ुस्तुन्तुनिया एक मक्का बन गया। यहाँ से सुल्तान अब्दुल हमीद के ध्येय और विचारों से परिचित होकर तथा उसकी विपुल सहायता से उत्साहित होकर वे लोग दूर देशों को जाते थे और देश-काल को ध्यान में रखते हुए जैसा सम्भव होता था, अपने ख़लीफ़ा के सन्देश से लोगों को परिचित करते थे और इस्लामी सङ्गठन द्वारा काफ़ी लोगों को चङ्गुल से शीघ्र ही मुक्त होने की आशा दिलाते थे। यह प्रचार ३० वर्ष तक निरन्तर होता रहा। इसका परिणाम क्या हुआ, यह कहना कठिन है। ऐसे प्रचार का प्रभाव लोगों के हृदय और मस्तिष्क पर पड़ता है, इसलिए जब तक वह प्रत्यक्ष रूपेण प्रकट नहीं होता, उसका ठीक अनुमान नहीं लग सकता। महात्मा गाँधी के तप और त्याग का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा, यह जानना सन् १९३० की फ़रवरी तक असम्भव था। देश में कोई असाधारण जागृति नहीं दिखाई देती थी। मार्च में ज्योंही महात्मा जी ने सत्याग्रह की घोषणा की, त्योंही एक मास के अन्दर ही सारे भारत में नवजीवन दिखाई देने लगा, और तीन मास के अन्दर तो भारतवर्ष का एक-एक बच्चा स्वातन्त्र्य-संग्राम में सम्मिलित होने की लालसा करने लगा। इस्लामी सङ्गठन का जिस समय पूरा ज़ोर था, उस समय मुसलमानों का किसी यूरोपीय राष्ट्र से युद्ध होता तो वास्तव में पता चलता कि जमालुद्दीन, अब्दुल हमीद और अली पाशा के यत्नों से मुस्लिम-जगत कितना तैयार हो गया था। परन्तु अधिकांश मुस्लिम-शासक और सरदार अब्दुल हमीद को अपना ख़लीफ़ा मान चुके थे और मुस्लिम-जगत उसको सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगा था। दूर-दूर देशों के मुसलमान उसको वास्तव में धर्म-रक्षक और उसके राज्य को मुसलमानों का आश्रय-स्थान मानने लगे थे। साथ ही उत्तर अफ़्रीका के सेनूसिया नेताओं ने उसको ख़लीफ़ा नहीं माना था और प्रजातन्त्रवादी नवीन मुस्लिम सुधारकों को उसकी निरङ्कुश नीति भी पसन्द नहीं आती थी। इसलिए यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता था कि वह यूरोप के किसी राष्ट्र के विरुद्ध धर्म-युद्ध की घोषणा करता तो मुस्लिम जगत उसका कहाँ तक साथ देता। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अब्दुल हमीद ने मुस्लिम सङ्गठन का सन्देश जगत के कोने-कोने तक पहुँचाया था। यद्यपि वह सम्पूर्ण संसार का निर्विवाद ख़लीफ़ा नहीं बन सका, परन्तु यूरोप के विरुद्ध घृणा का प्रचार करने में तो उसको अवश्य सफलता प्राप्त हुई।

सन् १९०८ में स्थिति और की और हो गई। नवयुवक तुर्कों ने देश में क्रान्ति करके सुल्तान अब्दुल-हमीद को सिंहासनच्युत कर दिया। सम्पूर्ण मुस्लिम-जगत में खलबली मच गई। तुर्की क्रान्ति के बाद ही ईरान में भी ऐसी ही क्रान्ति हुई, और पूर्वी संसार के अन्य भागों में भी यह लहर पहुँचने लगी। इन घटनाओं के कारण अनेक नए विचार और नवीन शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। शासन-सुधार, राष्ट्रीयता, समाज की अशान्ति, महिला-स्वातन्त्र्य, आदि की सर्वत्र चर्चा होने लगी। इसके कारण इस्लामी सङ्गठन का कार्य रुका तो नहीं, लेकिन उसको सीधी बहने वाली धारा इधर-उधर मुड़ गई। यह हालत सन् १९१२ की रही। इसके बाद फिर मुस्लिम सङ्गठन बल पकड़ने लगा।

( क्रमशः )

# अनाथ पत्नी

[ ले० पण्डित भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी ]

[ भूमिका-लेखक—श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक ]

इस उपन्यास में बिछुड़े हुए दो हृदयों—पति-पत्नी—के अन्तर्द्वन्द्व का ऐसा सजीव चित्रण है कि पाठक एक बार इसके कुछ ही पन्ने पढ़ कर करुणा, कुतूहल और विस्मय के भावों में ऐसे ओत-प्रोत हो जायँगे कि फिर क्या मजाल कि इसका अन्तिम पृष्ठ तक पढ़े बिना कहीं किसी पत्ते की खड़खड़ाहट तक सुन सकें !

अशिक्षित पिता की अदूरदर्शिता, पुत्र की मौन-व्यथा, प्रथम पत्नी की समाज-सेवा, उसकी निराश रातें, पति का प्रथम पत्नी के लिए तड़पना और द्वितीय पत्नी को आघात न पहुँचाते हुए उसे सन्तुष्ट रखने को सचेष्ट रहना, अन्त में घटनाओं के जाल में तीनों का एकत्रित होना और द्वितीय पत्नी के द्वारा, उसके अन्तकाल के समय, प्रथम पत्नी का प्रकट होना—ये सब दृश्य ऐसे मनोमोहक हैं, मानो लेखक ने जादू की क़लम से लिखे हों !!

लेखक कहानी और उपन्यास लिखने में वैसे भी लब्ध-प्रतिष्ठ हैं, पर इस उपन्यास के लिखने में तो उन्होंने सच-मुच कमाल किया है। शरत बाबू के उपन्यासों में जो मोहक आकर्षण है और मेरी करेली के उपन्यासों में जो तड़पन, वह सब आपको इसकी पृष्ठ-प्यालियों में सर्वत्र ही छलकता हुआ मिलेगा !!!

कागज़ बढ़िया, छपाई लाजवाब, मूल्य केवल २)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद

सहोदरा

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

छप रही है !

छप रही है !!

# वल्लरी

[ डॉ० धनीराम 'प्रेम' ]

लन्दन-प्रवासी जिन डॉक्टर धनीराम 'प्रेम' की कहानियों को पढ़ने के लिए 'चाँद' और 'भविष्य' के पाठक उत्सुक रहते हैं, जिनकी पहली ही कहानी 'डोरा' ने कहानी-संसार में हलचल मचा दी थी, वल्लरी उन्हीं की ग्यारह सरस सुन्दर कहानियों का संग्रह है। इसकी 'डोरा' कहानी में जहाँ आप करुणा की आहत सिसकियों से तड़प उठेंगे, 'कहानी-लेखक' में हास्य और कौतूहल का सामञ्जस्य देख कर अवाक् रह जायँगे, वहाँ 'बेरया का हृदय' और 'वह मुसकान' में अन्तर के घात-प्रतिघातों का चित्र देख कर आपको स्तम्भित रह जाना पड़ेगा। इन कहानियों के प्रत्येक शब्द में ज़ोर है, भाषा में प्रवाह है, और है आदि से अन्त तक एक भावुक हृदय की कलित कल्पना का मनोहर चित्र। 'चाँद' और 'भविष्य' में छपी हुई कई कहानियों के अतिरिक्त इसमें 'वह मुसकान', 'गीत', और 'डोरा का रूमाल' आदि कई नई कहानियाँ भी हैं। जिन्होंने डोरा नाम की कहानी पढ़ी है, वे यह जानने के लिए उत्सुक होंगे कि 'डोरा के रूमाल' का क्या हुआ। यह बात पाठकों को 'डोरा का रूमाल' कहानी पढ़ने पर ही मालूम होगी और यह कहानी इसी पुस्तक में पढ़ने को मिल सकेगी।

छप गया !

प्रकाशित हो गया !!

# नीच

[ एक क्रान्तिकारी सामाजिक नाटक ]

यह नाटक भारतीय समाज में जीवन-संग्राम का जीता-जागता करुण चित्र है। पाप के प्राङ्गण में सत्य का क्रन्दन मालती के हृदय से निकल कर जान पड़ता है इस नाटक रूप में आया है। हिन्दू संस्कृति के स्तम्भ, वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करने वाले सन्यासी के अधरों से एक प्रेम का मधुर गान निकल कर इस नाटक के वायु-मण्डल में एक विचित्र प्रकार की सस्ती, सुषमा, श्री, देवत्व का प्रभाव डाले हुए है। यह नाटक प्रकृति, अन्ध तथा मानव-हृदय के विकारों के युद्ध की छाया है। यौवन के उन्माद से उन्मत्त समाज-सेवक अन्त में परिपाटी के चक्र में पड़ कर अपना सत्यानाश करके समाज के सामने उन अशिक्षित युवकों का चरित्र दिखाता है, जो सेवा करना चाहते हैं, किन्तु नहीं कर सकते और एक मानसिक मृत्यु के शिकार होते हैं। प्रचार की दृष्टि से पुस्तक का मूल्य १॥) से घटा कर केवल १) मात्र कर दिया गया है। स्थायी ग्राहकों से ॥)

व्यवस्थापक—'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

# सत्यं धर्म सनातनः

[ श्री० राधामोहन गोकुल जी ]

[ गत अगस्त मास के 'चाँद' में जो 'ईश्वरवाद' शीर्षक लेख छपा है, उसी सम्बन्ध में हम यह लेख प्रकाशित कर रहे हैं। इस विषय पर दोनों प्रकार के विचारपूर्ण लेखों को सहर्ष स्थान दिया जायगा।

—स० चाँद ]

यह सत्य है कि सत्य ही सनातन धर्म है? वृक्षों से समुन्नत होकर मनुष्य बनने तक तो हमें इतना समय लगा होगा, जिसका हिसाब लगाना किसी भी विकासवादी के लिए अभी सम्भव नहीं प्रतीत होता। दादा डार्विन की ही बात पर विचार करें तो वानर से नर और वानरी से नारी बनने में पूँछ घिस कर लूम-स्थल सपाट होने में ही कोट्यानुकोटि वर्ष लग गए होंगे। इस बीच में इन बापुरे प्राणियों को अपनी आवश्यकता-पूर्ति में, अपनी वासनाओं की संतृप्ति में, अपनी भूख-प्यास विदूरित करने की फ़िक्र में जिस मस्तिष्क की ज़रूरत पड़ी होगी, उसकी उन्नति और अभिवृद्धि में न जाने कितना कष्ट उठाना पड़ा होगा। कौन कह सकता है कि वानर योनि में आने के बाद कितने दिनों में बेचारे ने अपने हाथों को चलने के काम से छुट्टी देकर पैरों के बल खड़े-खड़े चलना सीखा होगा, फिर उसके कितने दिन बाद उसके नन्हें से दिमाग़ में इतनी जगह हुई होगी, कि जिसमें तर्क और ज्ञान के प्रकाश का समावेश हो, जिससे वह बेचारा सत्यासत्य का निर्णय कर सके। भूल, भय, मूर्खता, अज्ञान, आलस्य, अविद्या सम्बन्धी अनेक बाधाएँ भी थीं, जिन्होंने सज्ञान होने पर भी प्राणियों को सत्य की खोज में उतने ज़ोर से अग्रसर न होने दिया, जितने ज़ोर से कि वह होना चाहता था।

और आगे चल कर देखते हैं, तो इतिहास साक्षी देता है, कि अनेकानेक ठोकरें खाने पर जब हम प्रकाश के समीप आ गए, और सत्य घटनाओं के आधार को सीधी पक्की सड़क जान कर उस पर चलने लगे, तो हम में ही अगणित वञ्चक उत्पन्न हो उठे। आ-आकर अवतारों, नबियों, ज्योतिषियों, पण्डितों, पुरोहितों, मौलाना-मुल्लाओं ने हमें धोखा दिया। अवनति की ओर पैर पकड़ कर घसीटा; राजाओं, सरदारों, हाकिमों, ज़मींदारों और साहूकारों ने अपनी अवधूती चाल चल कर जनता को वश पड़ते ख़ूब मिट्टी में मिलाया! आजकल इन अवरोधक मैशीनों में एक छलपूर्ण लीडरशाही और बढ़ गई है, फिर भी हम देखते हैं कि हम बन्दरों के बेदुम बच्चों में सचाई की तलाश घटती नहीं, वरन् बढ़ती ही जा रही है। इसी से मैं समझता हूँ कि सत्य की खोज मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है। यह बिलकुल ठीक है कि 'सत्यम् धर्म सनातनः।'

प्रियवाचक वृन्द, पहले पुरोहित कुलोद्भव पण्डित-राजों ने, जिनमें बुद्धि और तर्क व दर्शन ज्ञान से दबे हुए कितने ही एम० ए०, बी० ए० भी शामिल हैं, मेरे एक लेख पर हज़ारों ही बेतुकी गढ़-गढ़ कर सुनाई हैं। लेकिन एक ने भी प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण न दिया कि जिसमें ईश्वर संसार के भावी समझदारों के लिए कोई वास्तविक पदार्थ सिद्ध हो जाता। इसी प्रकार मुझे आशा है कि सैकड़ों दावे बेदलील मेरी 'सत्य की व्याख्या' पर होंगे। इन पाण्डित्याभिमानियों को यह पता नहीं लगता कि संसार बदल रहा है। आज ऐसा कोई भी समझदार नहीं, जो हज़ारों वर्षों की पुरानी पुस्तकों की जङ्गली कहानियों और निर्मूल गपोड़ों में सन्तोष प्राप्त कर सके। कोरे महात्माओं को चाहे क़ुरान में शान्ति मिलती हो, चाहे बाइबिल में, चाहे पौराणिक गाथाओं में, लेकिन सांसारिक जीवों को तो विज्ञान की कसौटी पर कसे हुए, तर्क की आँच पर तपाए हुए, सत्य में ही शान्ति की झलक

दिखाई देती है। बुद्धदेव ने ठीक कहा है कि सत्य ही सब कुछ है। सत्य की ही खोज में फिरना मानव-जीवन का एक सर्वोत्कृष्ट ध्येय होना चाहिए। एक अङ्गरेज़ विद्वान 'एडीसन' भी इसी का समर्थन करता है—"There is nothing so laudable as to hanker after truth.'

क्या इस भ्रममय और घोर तमाच्छादित जीवन में आलोकप्रद सत्य के समान और महत्व वाली लाभदायक बड़ी बात हो सकती है? मैं तो यही कहूँगा—नहीं। सत्य जगत का ज्ञान-धन है, उसे डूबने से बचाने वाली नाव है, उसे अन्धकार से निकालने वाला प्रकाश है। सत्य की खोज में व्यस्त रहने के बराबर दूसरा कोई व्यापार या व्यवसाय हो नहीं सकता।

सत्य उन्नति की जड़, काण्ड, शाखा और पत्ती सब कुछ है। आनन्द की जननी और जनक सचाई ही है। यह मन को शुद्ध करता है, विचार को पवित्र करता है, आकांक्षाओं और आदर्शों को उच्च बनाता है, सत्य का नाम सभ्यता, मनुष्य-भक्ति और दयालुता है। सत्य के जानने की महत्वाकांक्षा के बराबर क्या कोई दूसरी आकांक्षा हो सकती है? सत्य से हमें शक्ति मिलती है, सत्य ढाल और तलवार दोनों का एक साथ काम देता है, सत्य गुरु, मित्र, पुत्र और सहायक सब कुछ है। यह तो जीवन-ज्योति है।

जो एक सत्य बात खोज निकालता है, वही ऋषि है, उसकी खोज का वृत्तान्त वेद है, उसके जलाए हुए प्रदीप के प्रकाश से संसार को उजाला मिलता है। लेकिन सत्य मिलता कैसे है? खोज, अनुभव और शुद्ध तर्क से, निष्पक्ष अन्वेषण, स्वतन्त्र विचार वाले दिमाग़ की लगन से। प्रत्येक नर-नारी को स्वतन्त्र खोज का पूरा अधिकार है, चाहे जितनी खोज करे, बने जितनी करे, उसके इस नैसर्गिक अधिकार में जो बाधा डालता है, वह पापी है, दुष्ट है, अत्याचारी है, मानव-संसार का चिर-शत्रु है। सांसारिक साहित्य पर मुहर लगा कर रखना नीचता है। भू-मण्डल का साहित्य-द्वार हर एक के लिए खुला होना चाहिए। इसे बन्द करना अच्छा नहीं। मनुष्य के ही लिए सारे पवित्र विचार हैं। किसी विषय को छिपा कर रखना उस विषय की पवित्रता और महिमा को बढ़ाना नहीं, वरन् नष्ट कर डालना है।

जो अन्वेषक को, इस लोक या परलोक के दण्ड का भय देता है, वह मनुष्य जाति का शत्रु है। वह दग़ाबाज़ है, जो परलोक या आक़बत में आनन्द भोग का प्रलोभन देकर, सत्य पर परदा डालता है, क्या उत्कोच द्वारा सत्य का प्रकाश न होने देना पाप नहीं है? बिना विचार स्वातन्त्र्य-खोज असम्भव है। राजा और धर्म का भय बाधक है। खोज बुद्धि और तर्क के आधार पर होती है। अन्ध-परम्परा के भरोसे सत्य की खोज करना सर्वथा असम्भव है। सत्य के जिज्ञासुओं को चाहिए, कि भय को छोड़ दें, अपने भीतरी प्रकाश से काम लें। धर्म-पुरोहित और राजा, सबका भय छोड़ कर अपने श्रम से प्राप्त फलों को जैसा का तैसा संसार के सामने रख दे। यही स्वातन्त्र्य है, यही पुण्य है, यही कर्तव्य है, यही मानसिक पवित्रता है।

जब वह जमाले दिल फ़रोज़, सूरते मेहर नीम रोज़।
आप ही हो नज़ारा सोज़, पर्दे में मुँह छिपाएँ क्यों?

हाँ, हमारी खोज में लगाव-झुकाव न हो; आत्मान्वेषित शुद्ध सत्य की खोज की रक्षा करने की हिम्मत हाथ से न जावे; प्रेम, भक्ति, ईर्ष्या, द्वेष, भय, दोस्ती, दुश्मनी आदि हमारे विचार में ख़लल न डालने पावें। हमें तो सचाई की तलाश है और कुछ नहीं।

सत्य सत्य ही है, चाहे बात नई हो या पुरानी, नर की हो या नारी की, बूढ़े की हो या बालक की, पण्डित की हो या मूर्ख की। हम पुराने आदमियों अथवा पुराने ग्रन्थों की झूठी, बेहूदी बातों को इसलिए सत्य नहीं मान सकते कि इन्हें अमुक महालेखक ने लिखा है या अमुक प्राचीन ग्रन्थ में लिखी हैं। न हम किसी नवयुवक की और न नवीन ग्रन्थ की सत्य बात को इसलिए ठुकरा सकते हैं कि उसे एक नवयुवक ने कहा है कि वह किसी आधुनिक ग्रन्थ में लिखी है। प्राकृतिक सौन्दर्य को किसी तरह गहने, कपड़े आदि सजावट की ज़रूरत नहीं होती। जैसे 'लाल' गुदड़ी में भी चमकता रहता है, उसी तरह सत्य को बनाव, चुनाव, साज, शृङ्गार की आवश्यकता नहीं। झूठ, छल या पाप को ही ख्याति, उच्च-स्थान, उत्तम वेश-भूषा की ज़रूरत हुआ करती है। हम तो सत्यग्राही हैं। हमें इस बात की परवा नहीं, कि हमारे दादाओं का क्या मत था, हम किस सम्प्रदाय या समुदाय के हैं। किसका क्या कथन है, क्या सिद्धान्त है।

जो कुछ भी हो, सत्य है तो शिरोधार्य, असत्य है तो बहिष्कार। बहुमत सदा मूर्खों का ही बना होता है। यह सत्य के ग्रहण करने और असत्य के परित्याग को सदा तैयार बैठा रहता है, यदि सावधान किया जाय। इतिहासों के पढ़ने से क्या लाभ? यही तो, कि विगत इतिहास को पढ़ कर उन भूलों से बचें, जिनमें पड़ कर अन्य जातियों ने हानि उठाई।

ज्योतिष, आयुर्वेद, भूगोल इत्यादि जितनी भी विद्याएँ या विज्ञान हैं, सब किसी सच्ची बात की खोज करते हैं। यहाँ तक कि गप्प-प्रधान कविता भी अपनी तह में किसी सचाई की तरफ़ इशारा करने का दावा करती है। लेकिन सत्य के अन्वेषी को इस गप्प कविता की ज़रूरत नहीं, वह न्यारियों की तरह कुपदार्थों को अलग फेंक देता है। रासायनिक अपनी प्रयोगशाला में बैठा-बैठा प्रकृति के गुप्त भाण्डार की खोज करके, सच्चे रत्नों के निकालने में व्यस्त रहता है। जहाँ देखिए, सत्य की ही खोज है। हाँ, पैसा ठगने अथवा मूर्खों का गोल बढ़ाने के लिए गप्प गढ़ने वालों की संख्या भी बहुत है। इन्हीं से बचाने के लिए हमें सत्य की व्याख्या की ज़रूरत पड़ी है।

२

सत्य का ही पर्याय विज्ञान है। प्रत्येक विज्ञान का विद्यार्थी हमेशा सत्य की ही खोज में लगा रहता है। जो राज्य के नियन्ता और धर्म के सञ्चालक अपने विचारों के प्रकट करने के अधिकार का दावा करते हैं और दूसरों के उसी अधिकार को अस्वीकार करते हैं, वे अन्यायी और असत्य के समर्थक हैं। कोई विचार कैसा भी पवित्र, शुद्ध और निर्दोष क्यों न हो, दूसरों को अधिकार है कि उसकी जाँच करें, आलोचना-प्रत्यालोचना करें। कौन जानता है कि कौन सा विचार पवित्र है। स्वतन्त्र विचार प्रकट करना एक मुद्दत से राजा या ईश्वर की अवज्ञा समझा जाता था। क़ुरान के किसी भी विचार के विरुद्ध मुँह खोला कि मुरतिद, मुनहरिफ़ और काफ़िर हो गया। बाइबिल की आलोचना की, कि हियरटिक ( Heretic ) बनाया गया, वेद-शास्त्रों की किसी बात में शङ्का उत्पन्न हुई तो 'नास्तिको वेद निन्दकः' कह कर उसका तिरस्कार किया गया। सॉक्रेटीज़ और गलेलियो का दण्डित होना, क़ादियानियों का काबुल में पथराया जाना, स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या करना, बौद्ध-भिक्षुकों का देश से बहिष्कृत किया जाना, धार्मिक अत्याचारों के जीते-जागते प्रमाण हैं। लोकमान्य तिलक को कई बार क़ैद की सज़ा क्यों हुई? महात्मा गाँधी को जेल क्यों भेजा गया? आज अनेक नवयुवक जेल में क्यों सड़ रहे हैं? स्वतन्त्र विचारों के प्रकट करने के कारण।

हम सत्य की सेवा क्यों करें? खोज, ईमानदारी, भद्रता की क्यों ज़रूरत है? प्राणिमात्र के सुख के लिए। यह न माने तो कम से कम मनुष्य-मात्र के सुख के लिए। यह स्वतन्त्र विचार वाले प्रत्यक्षवादी का उत्तर है। अन्धविश्वास सत्कर्म नहीं है। बिना तर्क और बुद्धि के सहयोग किए कोई बात निर्णीत नहीं हो सकती।

यह सत्य और विचार-स्वाधीनता का ही फल है कि संसार ने इतनी वैज्ञानिक उन्नति की। यदि इसके मार्ग में धर्म-छल और राज्य की रोकें न होतीं तो आज जगत कई शताब्दी आगे आने वाले समय को कभी का प्राप्त कर चुका होता। उन्नति के पथ हम देखते हैं, मनुष्यों में भूख-प्यास का कष्ट बढ़ता जा रहा है, रोगों की वृद्धि हो रही है, नाना प्रकार की यातनाएँ सामने खड़ी हैं, यह सब कैसा नाटक है? अन्न, वस्त्र, घर, ईंधन, भैषज आदि विहीन क़ानून से शान्ति कैसे स्थिर रहेगी? संसार सुखी कैसे रहेगा? इस लोक में यों ही पैर घसीटते रहो। परलोक में बड़ी-बड़ी हवेली, दूध, मधु, मक्खन, मद्य वग़ैरह के समुद्र, सुन्दर-सुन्दर ज़रतारी रेशमी वस्त्र और जवाहिरात, जटिल सोने के गहने मिलेंगे, इसलिए हम सुख और शान्ति से घर में खाने-पहिरने की झञ्झटों को छोड़ कर मरणोन्मुख हो, चैन की वंशी बजाते रहें और आनन्द से डण्ड पेलें। अगर इसमें ज़रा भी ग़लती हुई तो पुलिस का लट्ठ, जज का फ़तवा और जेलर का सोंटा सिर पर धरा है। अगर ये बातें ठीक इसीलिए हैं तो हुज़ूर का सत्य बड़ा विचित्र है। इतनी टेढ़ी खीर है कि उसको निगलते ही हलक़ फट जायगा!

देखो, अब परलोक के राजराजेश्वर, सातवें आसमान पर, अद्वितीय चौकी पर, विराजमान बादशाह पदच्युत किया जायगा। नरक की यातनाओं का नामोनिशान मिटाया जायगा। हवालातों, जेलख़ानों की

ज़रूरतें मिटा दी जाएँगी। समय समीप है, जब सत्य देव की पूजा का विस्तार होगा। हम देखेंगे कि प्रकृति ही हमारा धर्म-ग्रन्थ है, इसी के पाठ से सत्य की जय होगी, असत्य मिटेगा और संसार सुखी होगा।

मनुष्यो, अपने ऊपर विश्वास करो, अपने पैरों खड़े हो! भाग्य के भरोसे जीने वालो, अब अदृश्य, अज्ञात परमेश्वर से भिक्षा माँग कर, तुम पेट नहीं भर सकते! इसलिए संसार में मनुष्य की तरह जी भी नहीं सकते। आपने शेख़चिल्ली की कहानियाँ सुनी हैं! आपके पास बे-सिर-पैर की कथाओं का भण्डार भरा पड़ा है। उनसे आपका क्या बना? हिन्दुओ, तुमको सहस्रों वर्षों से सुख की नींद सोना, निश्चिन्त बैठ कर पेट भरना, नसीब नहीं हुआ। अगर इन परलोक की कहानियों से पेट भरता होता तो तुम कभी इतने भूखे-नङ्गे नहीं हो सकते थे। प्रकृति से बड़ा कोई नहीं है। मनुष्य ही अपना भाग्य-विधाता, दूसरे मनुष्य का भी विधाता है। मनुष्य-समाज एक बन कर, मिल कर प्रकृति का स्वामी बन सकता है। वृक्ष, धरती, सड़क, कङ्कड़ियाँ, नदी, वन, उपवन, पहाड़—सभी मिल कर हमें एक नया वृत्तान्त बतला रहे हैं। आकाश के तारे, चन्द्र, सूर्य प्रकृति के अङ्ग हैं, इनके व्याख्यान सुनो और मनन करो।

सिजदे से गर बहिश्त मिले दूर कीजिए।
दोज़ख़ सहो, पर सिर का झुकाना नहीं अच्छा॥

'आमदम बरसरे मतलब' 'सत्यं धर्म सनातनः' क्या यह सत्य नहीं है कि नारियों के कष्ट नरों से कहीं अधिक हैं? इन्हें एक हज़रत ने पति का ग़ुलाम, दूसरे ने भोग का सर्वोत्तम पदार्थ बतला कर और विचार ही दिल से निकाल दिया; तीसरे ने यह लोक ही नहीं, परलोक-सी मिथ्या वस्तु की आशा के अधिकार से भी वञ्चित कर दिया और कह मारा कि नारियों की मुक्ति ही नहीं होती। और तो और, विद्या के बोझ से दबे हुए अनेक दार्शनिकों ने भी इन्हें दबोच रखने का पूरा प्रयत्न किया। जर्मनी के बड़े भारी दार्शनिक पण्डित शोपेनहार साहब फ़रमाते हैं—

"Woman is not called to great things. She pays her debts in life by the throes of birth, care of the children, subjection to her husband. The most intense utterances of life are denied her. Her life is destined to be less eventful and more trivial than that of man. It is her vocation to nurse and educate children, because she is herself childish and remains an over-grown child. All her life is a kind of intermediate being between the child and the man, who is the only proper human-being."

अर्थात्—"महत्व के कामों के लिए नारियाँ नहीं होतीं। वह प्रसव-वेदना, बच्चे की सेवा और पति की दासता से अपने जीवन का ऋण चुकाती हैं। उन्हें अपने जीवन की गहरी बातों के कहने का भी अधिकार नहीं। उनका जीवन नरों के जीवन से अधिक तुच्छ और कम घटनापूर्ण होना उनके भाग्य में है। उसका यही काम है कि बच्चों को पाले-पोषे, खिलाए-पिलाए; क्योंकि वह स्वतः बच्चों की तरह होती है और यावज्जीवन, किशोर-वयस्क बालक बनी रहती है। बच्चों और मनुष्यों के बीच का एक जीवन नारी है, यथार्थ मनुष्य तो पुरुष ही है।"

स्त्रियाँ मूर्खा, नादान, बेसमझ, केवल घर की टहल-चाकरी के योग्य होती हैं; यही तुलसीदास भी कहते हैं—"ढोल गँवार शूद्र पशु नारी; ये सब ताड़न के अधिकारी!" वाह रे समाज के नाशक, गुरुडम फैलाने वाले तुलसी!

यदि यह बात डॉक्टर बेसेण्ट सदृश विदुषी महिला ने पढ़ी या सुनी होगी तो उन्हें आश्चर्यान्वित होकर शोपेनहार की आत्मा को बुला कर पूछना पड़ा होगा कि यह क्या बात है? क्योंकि श्रीमती बेसेण्ट सनातन-धर्म का रहस्य समझती हैं। अमेरिका, यूरोप और रूस में विद्वान महिलाओं की कमी नहीं है, वह क्यों फिर लौट कर अविद्यान्धकार में जाना ठीक समझेंगी?

हमें आशा है, हमारे देश के नर-नारी यह सिद्ध कर देंगे कि उनका ज्ञानी, विद्वान, बलवान और स्वतन्त्र बनना उनके हाथ में है, क्योंकि यही रीति सत्य और सनातन है।

३

ऊपर जो कुछ भी कहा गया है, वह सब प्रत्यक्ष, प्राकृत एवम् स्वयमसिद्ध सत्य है। मुझसे कोई पूछे कि कौन कहता है 'दासता स्वतन्त्रता से अच्छी है ?' तो मैं साफ़-साफ़ कह दूँगा कि सारे पण्डित, पुरोहित, मौलवी, मुल्ले, पोप और बिशप कहते हैं कि ईश्वर की सच्ची आज्ञा, अपौरुषेय ज्ञान, हमारे पास है। इसे आँख बन्द करके मान लो, इसीके अनुसार चलो, अक्ल को दख़ल न दो। जो कोई इस पुस्तक में लिखी हुई बातों को न मानेगा, वह अनन्त या असीम समय के लिए यातना भोगेगा या "चौरासी" में फिरता फिरेगा। चाहे तुमको धर्म-पुस्तक की बात कितनी ही ख़ुराफ़ात भरी नज़र आवें, पर उसे ज़रूर ही मान लो, नहीं तो तुम नास्तिक हो। यह मानसिक स्वतन्त्रता है या ग़ुलामी की कठिन बेड़ी ?

हमारे गले में धर्म-पुस्तकें आशा और भय के डोरे से बाँधी जाती हैं। एक ओर शैतान हमारी गर्दन दबोचने को तैयार है और दूसरी ओर परमेश्वर महाराज या अल्लाह मियाँ अपना डण्डा लिए लाल-लाल आँखें दिखा रहे हैं। इस धर्म-रूपी चक्की के दोनों पाटों के अन्दर मनुष्य आँख बन्द करके पिसे जा रहे हैं। इस पर भी कहा यह जाता है कि सत्यासत्य का विवेचन करने वाली बुद्धि तुम्हें मिली है, तुम स्वतन्त्रतापूर्वक सत्यासत्य के निर्णय के अधिकारी हो। परमात्मा दयालु है, वह तुम्हें स्वतन्त्रता देता है कि तुम अपनी पसन्द से काम करो। बेचारे बेपढ़े दीन-हीनों से पुरोहित जी कहते हैं, तुम वेद-शास्त्र पढ़ कर नहीं समझ सकते, क़ुरान का समझना आसान नहीं, बाइबिल का जान लेना टेढ़ी खीर है। हमारे हाथ में स्वर्ग की कुञ्जी है, चले आओ, हम तुम्हें अभी ठीक ठिकाने पर पहुँचाए देते हैं।

ईश्वर के दलाल कहते हैं कि धर्म-पुस्तक मनुष्य के तर्क की पहुँच से कहीं परे हैं। मनुष्य-बुद्धि उसके रहस्य को नहीं जान सकती। मैं भी कहता हूँ, "बात सत्य है, मनुष्य-बुद्धि से ख़ारिज, पागलख़ाने के निवासियों के लिए ही आपकी धर्म-पुस्तकें बहुत उपयुक्त हैं।"

लेकिन स्वाभाविक सत्य-सनातन-धर्म कहता है कि बुद्धिमान, समझदार, विचारशील व्यक्तियों की प्रतिष्ठा और निष्ठा उसी बात पर हो सकती है, जिसकी जड़ में सर्वमान्य घटनाएँ हों, जिसका आधार विशुद्ध सत्य बातों पर हो। बात तो वही मानने लायक़ होती है, जिसमें धमकी, घुड़की से काम न लिया गया हो, वासनाओं को न भड़काया गया हो, आशा और भय का सहारा न लिया गया हो।

विश्वास किसी पुरस्कार या रिश्वत से पैदा नहीं होता, विश्वास की उत्पत्ति निर्दोष प्रमाणों से होती है। हमसे स्वर्ग के सुखों का वादा इसलिए किया जाता है कि हम धर्म-पुस्तकों की मिथ्या कल्पनाओं को सत्य कहने लगें। मनुष्यो, सावधान ! इस रिश्वत के वादे से बचो, नहीं तो तुम भी मारे ही जाओगे, तुम्हारी आगे आने वाली सन्तानों का भी सत्यानाश होता रहेगा।

अगर मैं यह कह दूँ कि धरती के केन्द्र में एक ऐसा हीरा है, जिसकी परिधि ५०० मील है, और मेरी इस बात पर जो विश्वास करेगा, उसे एक करोड़ रुपया इनाम मिलेगा, तो क्या आप इस बात को प्रमाण मान लेंगे ? क्या यह प्रमाण है इस बात का कि ५०० मील परिधि वाला हीरा भूगर्भ में मौजूद है ? बुद्धिमान लोग तो तर्कशास्त्र की कसौटी पर इस कथन को परखना चाहेंगे, युक्तियुक्त प्रमाण माँगेंगे। चमत्कारों, अनहोनी बातों को प्रघटित घटना बना कर लोगों की आँखों में धूल झोंकना धर्म-नेताओं का ही काम है। इससे मनुष्य की मानसिक स्वतन्त्रता पर पत्थर डाला जाता है। जहाँ आत्मोद्धार के लिए विश्वास को प्रधानता दी गई है, वहाँ बुद्धि का गला घोंटा गया है। इस प्रकार की बेहूदी बातों ने स्वत्व और दायित्व, भले और बुरे के पहिचान की कसौटी पर पर्दा डाल दिया है।

मज़ा यह है कि इन सारी अनुचित चेष्टाओं के होते हुए भी, जन साधारण पर सनातन अर्थात् नैसर्गिक धर्म का प्रभाव बना ही रहा। समय-समय पर झूठ का पर्दा खोलने, असत्य का गढ़ ढालने को अविश्वासी, नास्तिक, निर्भीक लेखक और वक्ता होते रहे और सत्य की क्रमशः जय होती रही। आज हमें संसार का रङ्ग पहिले से बहुत बदला नज़र आ रहा है। चाहे अल्लाह मियाँ आस्तीन चढ़ाए मेरी गर्दन नापने को तैयार क्यों न खड़े हों, चाहे धर्म-नेता रात-दिन ईश्वर महाराज की तलवार की धार और उनके जेलख़ाने की मुसीबतों की कथा

सुनाया करें, पर अक़्ल तो इस बाजीगरी को शिकस्त देकर ही चैन लेगी। इन धर्म के ठेकेदारों ने कितने विरोधियों के प्राण नहीं लिए? एक साल के भीतर क़ुरान के संरक्षकों ने सात आर्यसमाजियों का रक्तपात किया। बहुत पिछले ऐतिहासिक दास्तानों को दुहराने की ज़रूरत नहीं। इस तरह पर बहिश्त व वैकुण्ठ की ख़रीद-फ़रोख़्त का बाज़ार आजकल भी ख़ूब गर्म है। जगह-जगह कथा, मौलूद, बाइबिल के लेक्चर होते हैं, तीर्थों में जा-जाकर लोग अपनी सारी उम्र की कमाई लुटाते हैं। क्या ही अच्छा होता, यदि सारे मौलवी-मुल्ले, पण्डित-पुरोहित, रबी-पादरी एक बार मिल कर लड़ लेते और मर-खप जाते, क्योंकि इनके कारण करोड़ों मनुष्य अकारण एक दूसरे का ख़ून करते हैं।

यह लोग कहते हैं कि ईश्वर एक है, पर यह नहीं सोचते कि जो ईश्वर बकरा या और पशु खाकर एक के लिए प्रसन्न होता है, वही दूसरे के हाथ से बकरा कटने पर नाराज़ क्यों हो जाता है। इन बेचारों को पता ही नहीं कि सनातन सत्य तो इसे बड़ी घृणा से देखता है और चाहता है मोम को मोम कहा जाय और पत्थर को पत्थर, अनर्थ अच्छा नहीं। मूर्खों को लूट कर उनके धन से जेब भरने वाले पुरोहित, पण्डित, मौलवी आज भी मालामाल हो रहे हैं। यदि जनता कथा-कहानियों और गपोड़ों पर विश्वास करना छोड़ दे, तो हरामख़ोरों का एक बहुत बड़ा समुदाय अपनी मौत आप ही मर जाय और जल्दी मर जाय।

एक घोर पापी, राक्षस, दुर्बुद्धि को आकाश पर संसार का स्वामी बना कर बैठाल देना और फिर उसके नाम से संसार के लोगों को दोनों हाथों से लूटने का नाम धर्म, मज़हब या रिलीजन है। जो इस नादानी का विरोध करने खड़ा हो, उसे बड़े-बड़े उपाध्याय और मौलाना कोसने के लिए उठ खड़े हों और बस पड़े तो बिना मारे न छोड़ें। इन ग़ुलाम हृदयों को स्वतन्त्र विचार वाला मनुष्य पसन्द ही नहीं आता।

सिवा धर्म के और सारे ही विज्ञान वास्तविकता की खोज में मस्त हैं। जब कभी किसी व्यक्ति ने कोई सच्ची बात खोज कर निकाली कि उसका यथेष्ट सम्मान किया गया। लेकिन धार्मिक विद्यालय में अगर किसी ने किसी साम्प्रदायिक विश्वास के विरुद्ध कोई बात कही, कि वहीं उसका मुँह बन्द किया गया। श्रीमती एनी बेसेण्ट सदृश पण्डित को उनके पति ने इसलिए अपने प्रेम से वञ्चित किया था कि इनका मन उनके धर्म के सिद्धान्तों के प्रतिकूल पड़ा।

धर्म-पुस्तकों और उनकी बातों की पड़ताल करने से प्रकट होता है कि सारे धर्म एक अनृत कल्पना की शाखाएँ हैं। क्योंकि उनकी गप्प-कथाएँ एक दूसरे से ख़ूब जोड़ खाती और समता रखती हैं। पर इस बात को स्वीकार करने के लिए कोई तैयार नहीं।

कौन से धर्म ने विज्ञान की वृद्धि की है? जितनी खोजें, जितने आविष्कार आज हमारे सामने हैं, उनमें से एक का भी पता धर्म-पुस्तकों में होता, तो हम इन्हें खोज या आविष्कार क्यों कहते? हम तो इन्हें धर्म-ग्रन्थ-कर्ताओं की ही बहादुरी समझ कर सन्तुष्ट हो जाते हैं। धर्म-ग्रन्थों के अर्थों को प्रत्याह बदला जाता है, या उनके नए-नए अर्थ किए जाते हैं। पर उन गप्पों से परिपूर्ण गल्पों को सदा के लिए तह करके क्यों नहीं रक्खा जाता? इसीलिए कि उनके बिना पुरोहित-मण्डल और राज-वर्ग की लूट क़ायम नहीं रह सकती। धर्मयाजकों की कथा में जब श्रोता कम आते हैं, तो वह नई शिक्षा और विज्ञान के प्रकाश को ख़ूब जी भर कर कोसते हैं। कभी-कभी वह निर्धनों की प्रशंसा में धरती और आकाश की सन्धि मिलाते हैं। धन, दौलत, भोग-विलास की मन-मानी ख़बर लेते हैं। ग़रीबों और त्यागियों को स्वर्ग पर पहुँचा देते हैं। परन्तु हज़रत की नज़र चढ़ावे पर ही रहती है। चढ़ावा कमती आया कि श्रद्धा-भक्ति कम हुई।

आओ बान्धव, हम सत्य से प्यार करें। आत्मा की स्वतन्त्रता पर कुठाराघात न करें। हम बच्चों को शिक्षा पालने से ही, माँ की गोद में, प्रारम्भ कर दें। यही प्रारम्भिक शिक्षा का पवित्र मन्दिर है। इस शिक्षा में हम लड़की-लड़के का भेद-भाव भूल जायँ। सभी ज्ञानार्जन करने के लिए एक समान अधिकारी हैं। माता की गोद झूठ का विस्तार करने के लिए नहीं। यह पवित्र स्थल झूठ का भाण्डार न होना चाहिए। माता-पिता निस्सङ्कोच होकर बच्चों से सदा सत्य बोलें। जो बात वे न जानते हों, कह दें कि "नहीं जानते।" झूठ गढ़ कर बच्चों के दिल-दिमाग़ में झूठ के पौधे का समारोपण बड़ा दोष है। हर बच्चे को अधिकार होना चाहिए कि वह जो

चाहे पूछे, शङ्का करे, सन्देह करे, किसी बात के लिए ठीक हेतु माँगे। जिस बात को हम सिद्ध करके नहीं बतला सकते, उसे व्यर्थ सत्य कह कर बच्चों के शिर में ठूँसते रहना मानव जाति का घोर अकल्याण करना है।

हममें से प्रत्येक का कर्तव्य है कि झूठ से बचें, किसी की भी बात को बिना जाँचे-पड़ताले, बिना छान-बीन के सत्य न मान बैठें। शिक्षा का अभिप्राय है मनुष्य-बुद्धि को विकसित करना, उसके मस्तिष्क को इतना बलवान और अन्वेषक बनाना कि वह अपनी खोज से संसार को लाभ पहुँचा सके। प्राकृत सत्य का प्रकाश ही मनुष्य का ध्येय है, यही सनातन सत्य है। हम सब इस सत्य की खोज में लगें।

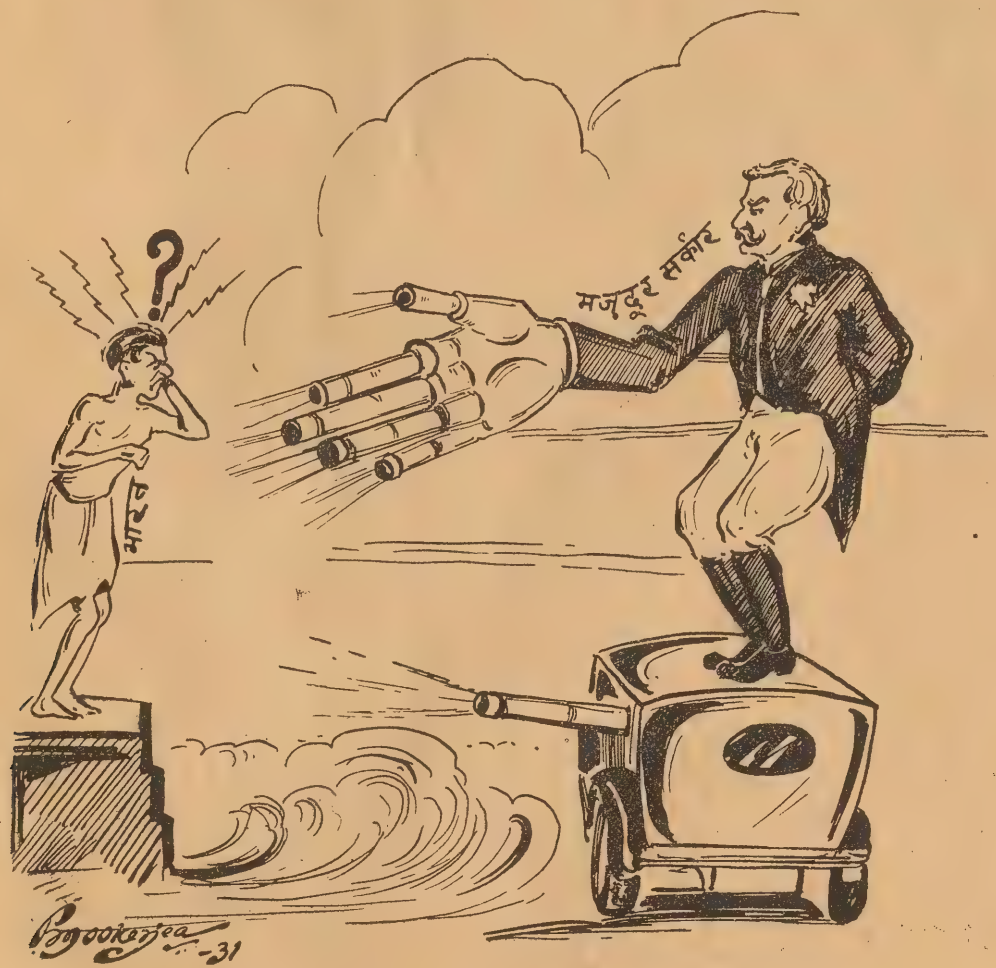


'मज़दूर सरकार' का फ़ौलादी पञ्जा !

# वीरा फ़िगनर

[ श्री० सुरेन्द्र शर्मा ]

( शेषांश )

## जेल-जीवन की झलक

वीरा फ़िगनर के जेल-जीवन की राम-कहानी बड़ी दर्द-भरी है। उसे पढ़-सुन कर कोई भी सहृदय व्यक्ति आँसू बहाए बिना नहीं रह सकता। ज़ारशाही के जेलख़ानों से जीवित लौट कर बाहर आ जाना, सचमुच मौत के मुँह में से बच कर निकल आने के समान था। वीरा ने अपनी आत्म-कथा में रूस की जेलों को 'क़ब्रस्तान' के नाम से पुकारा है। उन्हीं क़ब्रस्तानों में रूसी देशभक्त सदा के लिए 'दफ़न' कर दिए जाते थे। वीरा को अपने जीवन का एक बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण भाग उन्हीं क़ब्रस्तानों में बिताना पड़ा।

आजन्म क़ैद की सज़ा का हुक्म सुनाए जाने के बाद वीरा फ़िगनर एक कोठरी में बन्द कर दी गई। उस कोठरी का निरीक्षक एक ऐसा आदमी था, जिसे जेल के ज़ोर-ज़ुल्म देखते हुए, एक ज़माना बीत चुका था। वीरा जब ४३ नम्बर की कोठरी के सामने होकर लाई गई, तब निरीक्षक ने कहा "यहाँ गाने की मुमानियत है।" उस क़ब्रस्तानी वातावरण में भला गाना किसे सूझ सकता था?

यह वह जगह थी जहाँ का इतिहास अनेक पीढ़ियों से कष्ट और नारकीय यन्त्रणाओं की जीती-जागती कहानियों से रँगा पड़ा था। इस दशा में यहाँ गाने का विचार तक करना, उन अमर-योद्धाओं का अपमान करना था, जो अपने प्यारे देश के लिए क्रूरता और नृशंसता की वेदी पर हँसते-हँसते बलि चढ़ चुके थे।

१२ अक्टूबर सन् १८८४ को कोठरी का निरीक्षक कुछ कपड़े फेंक कर वीरा से कह गया कि ख़ूब गर्म कपड़े पहन कर जल्दी तैयार हो जाओ। थोड़ी देर बाद वीरा के हाथों में हथकड़ियाँ डाल दी गईं। इस पर उसने बड़ा रोष प्रकट किया। उसने बड़े तपाक से सुपरिण्टेण्डेण्ट से कहा—"माँ से कह देना कि मेरे ऊपर कितना ही ज़ुल्म क्यों न हो, मैं वही बनी रहूँगी। वह मेरे लिए रञ्ज न करें, मुझे कुशल-समाचार ज़रूर देती रहें। यदि मुझे पढ़ने को पुस्तकें मिलती रहीं, तो मेरा समय अच्छी तरह कट जायगा।"

इसके बाद वीरा सिपाहियों के कड़े पहरे में जहाज़ पर श्लूसैलबर्ग ले जाई गई। यहाँ के क़िले में भी बहुत से रूसी क़ैदी बन्द रक्खे जाते थे। क़िले के फाटक के ऊपर चीज़ की शक्ल में रूस का राष्ट्रीय चिन्ह बना हुआ था। उस पर लिखा हुआ "इम्पोरियल" शब्द वीरा को बहुत खटका, इसलिए कि, इसमें व्यक्तिगत बदले की भावना भरी हुई थी; क्योंकि जिस ज़ारशाही के यह दोनों चिह्न और विशेषण थे उसीका नाश करना उसके जीवन का उद्देश था।

क़िले के दफ़्तर में पहुँचते ही सुपरिण्टेण्डेण्ट ने वीरा के हाथों से हथकड़ी खोल दी। थोड़ी देर में उसके पास एक जवान फ़ौजी डॉक्टर और एक औरत के सिवा और कोई न रहा। डॉक्टर, वीरा की ओर पीठ करके एक कुर्सी पर बैठ गया। औरत ने सब कपड़े उतरवा कर वीरा को बिलकुल नङ्गी कर दी। डॉक्टर उठा और उसने उसके चारों ओर घूम कर उसे बड़े ग़ौर से देखा और कुछ लिख लिया। यह सब कार्रवाई इसलिए की गई कि यदि वीरा के बदन पर कोई ख़ास चिह्न हो, तो पहचान के लिए देख लिया जावे। इस स्थल पर डॉक्टर की बेहूदी हरकत की चर्चा करते हुए, वीरा ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है—"मुझे खो होने के कारण उस वक़्त शर्म आई या नहीं? और मैं इस घटना से दुखित हुई या नहीं? नहीं! मेरा भरोसा ईश्वर पर था और मेरे धर्म थे स्वाधीनता, समता और बन्धुत्व। अपने इस

धर्म के गौरव के लिए मुझे सब कुछ सहन करना ही चाहिए था !"

क़िले के भीतर एक मकान लाल ईंट का बना था। उसमें ४० कोठरियाँ थीं। वीरा २६ नम्बर की कोठरी में रख दी गई। यहीं से वीरा की जीवन-कथा के नए अध्याय का श्रीगणेश होता है। इस नए अध्याय के सम्बन्ध में वीरा ने लिखा है—"इस जीवन और मृत्यु में कोई अन्तर न था। मृत्यु से भी आदमी सदा के लिए शान्त हो जाता है और यहाँ भी हम लोग सदा के लिए शान्त थे! इस जीवन की यह ख़ूबी थी कि एक स्वप्न तो जीवन मालूम पड़ता था और जीवन बिलकुल स्वप्नवत् था। रात में जब कभी निरीक्षक की लालटेन का प्रकाश किवाड़ों के छेद में होकर कोठरी में पहुँच जाता था, तब प्रकाश का क्षणभङ्गुर अस्तित्व जीवन की वास्तविकता में परिणत होकर मेरी नस-नस में बिजली दौड़ा देता था। रात को स्वप्न देखती थी कि लोगों को गिरफ़्तार किया जा रहा है, वे फाँसी के लिए ले जाए जा रहे हैं, तथा भाप और बिजली से उन्हें अनेक प्रकार की शारीरिक यन्त्रणाएँ दी जा रही हैं, परन्तु यह सब होते हुए भी, मेरा हृदय यह कहता था कि मैं इन सब बातों को, अपनी घोर विपत्तियों को, जनता के दुख को, और अपने साथियों के नाश को भूल जाऊँ।"

शलूसैलबर्ग की कोठरी में पहुँच कर वीरा क्रिगनर अपने देश, परिवार, साथी, मित्र आदि सभी से वञ्चित हो गई। किसी जीवित वस्तु से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। दिन, महीने और वर्ष एक-एक करके आए और चले गए, तथा बादल होने के समय लिए हुए चित्र की तरह बीस और उसके साथी अन्य राजनैतिक क़ैदियों के हृदय पर एक धुँधला सा प्रतिबिम्ब छोड़ गए।

वीरा की कोठरी का फ़र्श काला, ऊपर से दीवारें भूरी तथा नीचे से ४-५ फ़ुट तक जस्ती रँग दी गई। वहाँ जलने वाले लैम्पों के प्रकाश में इन क़ैदियों की कोठरियाँ ऐसी दिखाई पड़ती थीं, मानो ४० अर्थियों के बक्स लम्बे खड़े कर दिए गए हैं! असल बात यह है कि शलूसैलबर्ग के इस क़िले का वातावरण बिलकुल क़ब्रस्तानी था!

वीरा और उसके साथी किसी से मिल नहीं सकते थे और न अपने परिवार के लोगों से पत्र-व्यवहार ही कर सकते थे। किसी आदमी को यह जानने तक की इजाज़त नहीं थी कि वे कहाँ और कैसे रहते हैं! वीरा की माँ के पूछने पर असिस्टेण्ट होम-मेम्बर ने जवाब दिया था कि जब तुम्हारी लड़की क़ब्र में पहुँच जायगी, तब तुम्हारे पास ख़बर भेजेंगे! उन राजनैतिक क़ैदियों के नाम तक बिसरा दिए गए थे और वे नम्बरों से इस प्रकार पहचाने जाते थे जैसे कि स्टेट की कोई निजी सम्पत्ति हों! क़िले के इधर-उधर का उन क़ैदियों को कुछ पता नहीं था। वे सब एक दूसरे से परिचित भी न थे। सब लोग मुर्दों की तरह क़ब्रों में अलग-अलग पड़े हुए थे।

शलूसैलबर्ग में पहुँचे हुए क़ैदियों के बहुत दिनों तक जीने की आशा नहीं की जाती थी। पहले ५ वर्षों में १५ क़ैदी मर गए! मिनाकौव और मिरिकन दोनों

## लेखकगण कृपया ध्यान दें !

१—लेख जितने ही छोटे और साफ़ लिखे हुए होंगे, उतनी ही अधिक सम्भावना उनके प्रकाशित किए जाने की है।

२—अधूरे लेखों पर ध्यान न दिया जायगा।

३—जो लेखक स्वीकृति या अस्वीकृति की सूचना चाहते हैं, उन्हें लेख के साथ ही टिकट भेजना चाहिए। अस्वीकृत लेख, बिना पूरा डाक-व्यय आए, नहीं लौटाए जाएँगे।

४—हमारे पास इतने लेख आते हैं कि सबको पढ़ना भी कठिन हो जाता है। अतः लेखक महोदय एक साथ एक से अधिक लेख न भेजें। क्योंकि इससे हमारा कार्य और भी कठिन हो जाता है।

सम्पादक—'चाँद'

ही वीर, प्रतिरोध करने के अपराध में, गोली से मार दिए गए! एक आदमी ने गले में फाँसी लगा कर आत्म-हत्या कर डाली! ग्राचैव्स्की ने अपना शरीर आग में भस्म कर, आत्म-हत्या कर डाली! कुछ लोग जेल की यन्त्रणाएँ सहते-सहते पागल हो गए! एक औरत अपना गला काट कर मर गई! उसे यहाँ की मनहूस जगह में एक महीना काटना भी मुश्किल हो गया था। यहाँ से छूटने पर भी, लोग अधिक समय तक जीवित न रहते थे, इसलिए कि उनकी जीवनोपयोगी शक्तियों का इस क़ब्रस्तानी वातावरण में पहले ही अन्त कर दिया जाता था।

श्लूसैलबर्ग की चर्चा करते हुए वीरा ने लिखा है—"मेरी भी जीवित रहने की इच्छा कुचली जा चुकी थी। हमारी पार्टी के जो लोग यहाँ लाए गए थे, उन्हें सहारा किस बात का था? क्रान्तिकारी आन्दोलन असफल हो चुका था। उसका सङ्गठन विनष्ट कर दिया गया था। कार्यकारिणी कमिटी निर्मूल कर दी गई थी। जनता और समाज ने हमारा साथ नहीं दिया। सरकार ने हम लोगों के गले में फाँसी का फन्दा और भी कड़ा कर दिया था। हमने अपनी जगह पर काम करने के लिए रूस के रङ्गमञ्च पर कोई वारिस नहीं छोड़े। मुझे एक विशेष दुख यह था कि मित्र, परिवार, देश, काम और सारे संसार से नाता तो टूटा ही, किन्तु साथ ही, मेरी माँ से मेरा एकमात्र सम्बन्ध भी टूट गया! माँ ही दुनिया में मेरी सब से प्यारी चीज़ थी, वह भी मुझसे सदा के लिए छुड़वा दी गई। अपने कार्य क्षेत्र से अलग हो जाने के बाद मैं व्यक्तिगत रूप से रूस की नहीं, किन्तु केवल अपनी माँ की पुत्री ही रह गई थी।"

श्लूसैलबर्ग के जीवन में अनेक आपदाओं का सामना करते हुए भी वीरा ने कभी अपने सिद्धान्तों और कार्यों पर पश्चात्ताप नहीं किया। वीरा को जो कठिनाइयाँ सहनी पड़ीं, तथा सार्वजनिक और व्यक्तिगत रूप में जो उसे नुक़सान उठाना पड़ा, उसने उसके अन्दर बहुत कटुता पैदा कर दी। उन नुक़सानों का ख़्याल करके वह भीतर ही भीतर घुली जा रही थी। मृत्यु का तो उसे ज़रा भी डर न था, किन्तु यह डर ज़रूर था कि कहीं वह पागल न हो जाय।

जेल में अपने मित्रों के साथ वीरा ने दरवाज़ों पर उँगलियों से खट-खट करके, अपने मनोभाव को व्यक्त कर, एक-दूसरे के पास पहुँचाने का एक ऐसा तरीक़ा अख़्तियार किया, जिससे वहाँ के नीरस जीवन में कुछ सरसता आ गई।

## वीरा की मनोवृत्ति

जेल की यातनाएँ सहते-सहते वीरा का दिल पक गया था। अपनी इस समय की मनोवृत्ति के सम्बन्ध में वीरा ने लिखा है :—

"मेरी यह मनोवृत्ति कि मैं एक क्रान्तिकारी और सार्वजनिक कार्यकर्त्ता की अपेक्षा अपनी माँ की लड़की और केवल एक प्राणी हूँ, अनुचित और ग़लत थी, इसलिए कि क्रान्तिकारी की हैसियत से हम लोगों ने रूस के इतिहास पर अपनी एक गहरी छाप लगा दी थी। जैसे कि फ्रान्स के देशभक्तों ने बैस्टील में क़ैद रह कर, अपने आपको गौरवान्वित बना लिया, वही हाल हमारे रूसी बैस्टील श्लूसैलबर्ग में था। मैंने अपनी क़ैद के पाँचवें वर्ष में एक बार अनशन किया। मैं मृतप्राय हो चुकी थी। उस दशा में मैंने अपने एक साथी को दूसरे साथी से यह कहते हुए सुना कि वीरा अब केवल अपने मित्रों ही की नहीं, बल्कि समस्त रूस की सम्पत्ति है—इन शब्दों ने मेरे हृदय में यह भावना दृढ़ कर दी कि मेरा व्यक्तिगत जीवन अब भी रूस ही की सेवा के लिए रहेगा और इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए मुझे पागलपन और साक्षात् मृत्यु तक पर विजय प्राप्त करनी है!"

## वीरोचित बलिदान

वीरा फ़िगनर के अनेक देशभक्त साथी भी श्लूसैलबर्ग के क़िले में बन्द थे। उनके साथ वर्षों तक कन्धे से कन्धा मिला कर वीरा ने रूस के आत्मोद्धार के लिए जो सुनहले उद्योग किए, वे उस देश के इतिहास की अमर चीज़ों में गिने जाते हैं; वीरा के साथियों में बहादुर मीनाकौव बहुत प्रसिद्ध था। वर्षों तक क्रान्तिकारी कार्य करने के बाद, उसे साइबेरिया, पीटर और पॉल के दुर्ग की हवा खानी पड़ी। बाद में वह श्लूसैलबर्ग भेज दिया गया। जेल में घुल-घुल कर मर जाने की अपेक्षा वह कोई साहस का काम करके अपने जीवन से एकदम छुटकारा पाने की कोशिश में था। उसने बहुत सी

सुविधाओं की माँग पेश कर दी। एक दिन रोष में भर कर मीनाकौव ने डॉक्टर के मुँह पर थप्पड़ मार दिया। इसी जुर्म में वह गोली से मार दिया गया। उसने अपनी रिहाई के लिए माफ़ी माँगने तक से इन्कार कर दिया था।

## मिश्किन

सन् १८८४ के 'बड़े दिन' पर जब वीरा तथा अन्य क़ैदियों की कोठरियों में खाना लाया गया, तब एक कोठरी से तश्तरियों के गिरने और किसी की हाथापाई की आवाज़ आई। रुँधे हुए गले से मिश्किन पुकार रहा था—"मुझे पीटो मत, जान से मार दो!"

रूस के प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों में मिश्किन उन लोगों में था, जिन्होंने अपने जीवन में देश के लिए, सबसे अधिक कष्ट सहे थे। वह मास्को का निवासी था। वहाँ वह ग़ैर-क़ानूनी पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए प्रेस चलाता था। पता चलने पर प्रेस के सब आदमी पकड़ लिए गए और मिश्किन को चेतावनी दी गई। इसके बाद वह देश छोड़ कर बाहर चला गया। साइबेरिया के विलिस्क शहर में एक देशभक्त चैर्नी शैव्स्की क़ैद था। वहाँ मिश्किन पुलिस-अफ़सर की पोशाक पहन कर, चैर्नी शैव्स्की को छुड़ाने के लिए जेल-अधिकारी के पास गया, और उसे एक जाली हुक्म दिखा कर कहा कि चैर्नी शैव्स्की को सेण्टपीटर्सबर्ग ले जाने के लिए मेरे हवाले कर दो। अधिकारी को सन्देह हो गया। उसने मिश्किन से कहा कि याकुटस्क में गवर्नर से भी पूछ लो। रक्षा के बहाने, उसने मिश्किन के साथ दो सिपाही और कर दिए। मिश्किन भी पूरा गुरु था। वह फ़ौरन ताड़ गया कि काम होना तो दूर रहा, अपनी जान ख़तरे में पड़ गई। इसलिए याकुटस्क के पास उसने एक सिपाही को गोली से मार डाला और दूसरा सिपाही अपनी जान बचा कर भाग गया। आगे चल कर मिश्किन पकड़ा गया और १९३ अभियुक्तों वाले मामले में उसे १० वर्ष की सज़ा मिली। जेलों में कई बार उसने अधिकारियों के दुर्व्यवहार के प्रतिरोध में विद्रोह खड़ा कर देने का उद्योग किया, किन्तु सफलता नहीं मिली। १० वर्ष से वह बराबर एक के बाद दूसरी जेल की कठोर यातनाएँ सहता चला आ रहा था। परन्तु रूसी जेलों में अपनी भीषणता के लिए प्रसिद्ध श्लूसैलबर्ग ने उसकी सारी नसें ढीली कर दीं। उसने यहाँ एकदम अपने प्राण देने का निश्चय कर लिया। मिश्किन ने एक दिन जेल के इन्स्पेक्टर का अपमान किया। इसके फल-स्वरूप २५ दिसम्बर सन् १८८४ को वह गोली से मार दिया गया।

## ग्राचैव्स्की

अपनी युवावस्था के प्रारम्भ ही से ग्राचैव्स्की देश-सेवा के काम में लगा था। देश-सेवा के पुरस्कार में उसे दो बार जेल की सज़ा मिली। अन्त में वह आर्केञ्जल प्रान्त में निर्वासित कर दिया गया। वहाँ से वह भाग खड़ा हुआ और सेण्टपीटर्सबर्ग में आकर वीरा फ़िगनर की पार्टी में मिल गया। सन् १८८२ में विस्फोटक पदार्थों की प्रयोगशाला के सञ्चालन के जुर्म में उसे फाँसी का हुक्म सुनाया गया। बाद में फाँसी की सज़ा आजन्म कालेपानी की सज़ा के रूप में बदल गई। पहले वह रैव्लिन में और फिर श्लूसैलबर्ग में भेज दिया गया।

श्लूसैलबर्ग में जेल के अत्याचारी शासन के विरुद्ध ग्राचैव्स्की ने बड़ा ज़बर्दस्त आन्दोलन खड़ा कर दिया। सन् १८८६ में उसने १८ दिन तक अनशन भी किया। वह बड़ा वीर था। उसने श्लूसैलबर्ग के अमानुषिक शासन का भण्डाफोड़ करने और मिश्किन की तरह प्राण देने का निश्चय किया। इसी अभिप्राय से उसने एक दिन जेल के डॉक्टर को पीटा। अधिकारियों ने उसे शोर-ग़ुल मचाने का मौक़ा न देने की ग़रज़ से उस पर कोई मुक़दमा नहीं चलाया। जब ग्राचैव्स्की अपने इस उद्योग में सफल नहीं हुआ, तब वह यहाँ के कष्टों और अत्याचारों के विरुद्ध देश में लोकमत जाग्रत करने के लिए, २४ अक्टूबर सन् १८८७ को अपने शरीर पर मिट्टी का तेल डाल, उसमें आग लगा कर जल मरा!

इस दुर्घटना के तीन दिन बाद जनरल पैट्रौव श्लूसैलबर्ग आया। उसने इन्स्पेक्टर सौकौलौव को बर्ख़ास्त कर दिया। जेल में हुए इन वीरोचित बलिदानों की चर्चा करते हुए वीरा फ़िगनर ने लिखा है—"इससे हमारे बलिदानी वीर ज़िन्दा तो नहीं हो गए, किन्तु हमारी मुसीबतें कुछ कम ज़रूर हो गईं, और हमें अब पहले की अपेक्षा अधिक आज़ादी से साँस लेने का अवसर मिल गया।"

## वीराङ्गना

जनवरी, सन् १८८६ में वीरा ने इन्स्पेक्टर से कहा कि मुझे एक साथी के साथ टहलने की इजाज़त क्यों नहीं दे देते? उसने उत्तर दिया—"यह सुविधा हम तुम्हें दे सकते हैं, परन्तु तुम्हारा कोठरी की दीवारों में खट-खट करना मुझे पसन्द नहीं है।" वीरा को एलेक्ज़ाण्ड्रौन्ना वौल्कैन्स्टाइन के साथ टहलने की इजाज़त मिल गई।

१४ जनवरी को वीरा फ़िगनर अपनी कोठरी से बाहर निकाली गई। बाहर जाने पर उसे वौल्कैन्स्टाइन मिली। वे दोनों हीं एक-दूसरे से गले मिलीं। क़ैदी की पोशाक में एक दूसरी को पहचानना बड़ा कठिन था, इसी कारण वीरा को उसे पहचानने में दिक़्त हुई। पहले से वे दोनों ही एक दूसरी के नामों से परिचित थीं। वौल्कैन्स्टाइन की सादगी, सचाई और सहृदयता ने वीरा को बड़ी जल्दी मुग्ध कर लिया। यह बिल्कुल स्वाभाविक था, इसलिए कि उस जेल की दुनिया में एक के लिए दूसरी के सिवा और कोई था ही नहीं। इस दशा में दोनों ही को एक-दूसरी से मिल कर अपार हर्ष हुआ।

वीरा की अपेक्षा वौल्कैन्स्टाइन पर श्लूसैलबर्ग के जीवन का बहुत कम प्रभाव पड़ा। जब वीरा भूत और वर्तमान की दशा का विचार करके व्यथित हो उठती थी, तब वौल्कैन्स्टाइन अपनी मृदुल मुस्कान, सहृदयता और मीठी-मीठी बातों से ढाढ़स बँधा कर उसे प्रफुल्लित कर देती थी। वे दोनों एक-दूसरी से, एक दिन बीच में छोड़ कर, मिला करती थीं, इससे मिलने की और भी उत्सुकता बनी रहती थी।

बसन्त आने पर वीरा और वौल्कैन्स्टाइन को तरकारी के बग़ीचे में ज़मीन के दो टुकड़े मिल गए। हर एक टुकड़ा नौ फ़ीट लम्बा और ढाई फ़ीट चौड़ा था। इस ज़मीन की मिट्टी देख कर वीरा को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपनी सहेली की सहायता से इस टुकड़े की मिट्टी ढोकर इधर-उधर डाल दी और इसमें कुछ बीज बो दिया। इसी प्रकार वीरा इस ज़मीन को सदा जोता और बोया करती थी।

## कष्ट-सहन

श्लूसैलबर्ग में वीरा फ़िगनर को बड़े कष्ट सहने पड़े, परन्तु वह कभी अपने आदर्श से विचलित नहीं हुई। कष्ट-सहन की चर्चा करते हुए उसने लिखा है :—

"ईसा शूली पर चढ़ा था। उसने बड़े कष्ट सहन किए थे। उसने किसी कष्ट से मुँह न मोड़ा था। मैंने बचपन ही से धार्मिक पुस्तकें पढ़ी थीं, अब कष्टों से मुँह मोड़ कर भी, क्या मैं ईसाई बनी रह सकती थी? उस दशा में क्या मैं अपने आपको ईसा की अनुगामिनी कह सकती थी?"

पहले कहा जा चुका है कि वीरा और उसके साथियों ने ऐसा ढङ्ग निकाल लिया था कि खट-खट करके कोठरियों में एक दूसरे से बातचीत कर लिया करते थे। वीरा की कोठरी के नीचे पौपौव की कोठरी थी। पौपौव ने खट-खट किया। ऐसा करते समय वह पकड़ा गया और पुराने क़िले की कोठरी में बन्द कर दिया गया।

इन्स्पेक्टर ने पौपौव से कहा कि मैं तुम्हें ऐसी जगह ले जाऊँगा, जहाँ कोई जीवित आदमी तुम्हारी आवाज़ नहीं सुन सकता! कुछ दिन पहले पौपौव वहाँ एक बार हो आया था और वहाँ उसे बड़ी क्रूरता से पीटा भी गया था। वीरा ने सोचा कि फिर उसके साथ वही दुर्व्यवहार किया जायगा और बहुत से सिपाही उस पर एक साथ टूट पड़ेंगे। पौपौव की सान्त्वना के लिए उसने इन्स्पेक्टर से कहा कि जब हम दोनों ही व्यक्ति बातें कर रहे थे, तब उनमें से केवल एक को सज़ा देना अन्याय है, इसलिए मुझे भी वहीं पहुँचा दो। इस पर इन्स्पेक्टर वीरा को भी पुराने क़िले की कोठरी में बन्द करने के लिए ले चला। पुराने क़िले के रास्ते में, पाँच वर्ष बाद उसे आसमान और तारे देखने को नसीब हुए! क़िले में ले जाकर वीरा एक छोटी और गन्दी कोठरी में बन्द कर दी गई। उसमें ठण्ड बहुत थी। वहाँ एक छोटी मेज़, कुर्सी और एक बेञ्च पड़ी हुई थी। बिस्तर या बेञ्च पर बिछाने को कोई चटाई न थी, वीरा सूती कपड़े पहने हुई थी। वह सर्दी के मारे थर-थर काँपने लगी। उसने अपने जूते उतार कर उनका तकिया बना लिया और पड़ रही। खाने को बहुत बासी और कड़ी रोटी दी गई।

यहाँ पौपौव और वीरा ने किवाड़ खटखटा कर बेहद शोर-गुल मचाया। दरवाज़ा खोल कर लोग पौपौव को पीटने ही वाले थे कि वीरा ने इन्स्पेक्टर को पुकार कर कहा—पौपौव को मत मारो, तुम एक बार उसे पीट चुके हो। याद रक्खो, किसी दिन तुम्हें इन कामों के लिए जवाब देना पड़ेगा! इन्स्पेक्टर ने कहा कि, 'हमने उसे पीटा नहीं, हम तो केवल उसे बाँध रहे थे, और वह हाथापाई कर रहा था।' वीरा ने बिगड़ कर कहा—'नहीं, तुमने उसे ज़रूर पीटा है और इस बात के गवाह मौजूद हैं! अब खट-खट नहीं करेगा, मैं उससे कह दूँगी।' इन्स्पेक्टर ने कहा—'बहुत अच्छा।' बाद में वीरा ने पौपौव को बुला कर कह दिया कि अब खट-खट मत करो।

दूसरे दिन सवेरे क़िले के नौकर-चाकर वीरा के लिए पलङ्ग और चाय ले आए, किन्तु पौपौव के लिए नहीं। वीरा ने चाय इन्स्पेक्टर के पैरों की तरफ़ फेंक दी और और पलङ्ग लेने से इन्कार कर दिया। उसने रोटी का एक टुकड़ा इन्स्पेक्टर को दिखा कर और रोष में भर कर कहा—'याद रक्खो कि तुम हमें ऐसी रोटी और पानी पर रख रहे हो!' इन्स्पेक्टर घबड़ा गया और उसने सिपाहियों को अच्छी रोटी लाने का हुक्म दिया। थोड़ी ही देर में एक सिपाही ने वीरा को ताज़ी और मुलायम रोटी लाकर दे दी।

वीरा को यहाँ की अँधेरी और गन्दी कोठरी में रहते हुए पाँच ही दिन हुए थे, जब इन्स्पेक्टर ने आकर ख़बर दी, कि नम्बर ५ (पौपौव) को पलङ्ग आदि ज़रूरी चीज़ें दे दी गई हैं। वीरा बहुत कमज़ोर हो गई थी। वह चुपचाप पड़ रही। सातवें दिन इन्स्पेक्टर ने उससे कहा कि तुम्हारी यहाँ की सज़ा पूरी हो गई, अब तुम पहले वाली जगह को चलो। पौपौव के बिना वीरा ने अकेले जाने से इन्कार कर दिया। परन्तु पौपौव वहाँ से पहले ही हटाया जा चुका था, इसलिए वीरा अपनी पहली कोठरी में वापस चली आई।

एक चमकीली स्लेट पर पानी लगा कर वीरा ने उसमें अपना मुँह देखा। इससे उसे मालूम हुआ कि केवल सात ही दिन में उसका चेहरा बिल्कुल सूख गया और मुँह पर ऐसी झुर्रियाँ पड़ गईं, जैसी कि १० वर्ष में पड़तीं! वे झुर्रियाँ तो बहुत जल्दी मिट गईं, किन्तु उन सात दिनों की याद वीरा को कभी भुलाए नहीं भूली।

## कविता

श्लूसैलबर्ग में तीन बरस रह चुकने के बाद वीरा और उसके साथियों को एक-एक कॉपी मिल गई। वे सब स्वेच्छानुसार उन कॉपियों का उपयोग कर सकते थे। परन्तु उसमें एक अड़चन यह डाल दी गई कि कॉपी भर जाने के बाद प्रत्येक आदमी उसे इन्स्पेक्टर को वापस कर दे और दूसरी कॉपी ले ले। वीरा और उसके १५ साथियों ने कॉपियाँ ले लीं। वे सब उनमें कविताएँ लिखने लगे। इससे उन सबको बड़ा लाभ हुआ। लोग कविताएँ लिख कर अपने दिलों के ग़ुबार निकालने लगे। कुछ लोग सामाजिक कविताएँ भी लिखा करते थे। किसी के जन्म-दिवस पर, बधाई के रूप में, उसके सम्मान में लोग कविता लिख दिया करते थे। जेल के भीतर वीरा कविता नहीं लिखती थी, पर यहाँ वह भी लिखने लगी। वीरा की एक कविता का भाव यह था :—

"हमें इस बात का सौभाग्य है कि हम अपनी शक्तियों को इसलिए दे रहे हैं कि आज़ादी ज़िन्दा रहे। हम भले ही मर जावें, कितने ही कष्ट सहें, पर मुँह नहीं मोड़ेंगे। सरकार के शिकार बनने के लिए हम सहर्ष आगे बढ़ते हैं, पर उसकी शिकायत नहीं करते। सब कुछ सहन करते हुए, शान्ति से स्वतन्त्रता और न्याय के नाम पर युद्ध-क्षेत्र में कूद पड़ने के लिए, हम अपने युवक-बन्धुओं का आह्वान करते हैं।"

## अनशन

वर्ष में दो बार उच्च अधिकारी वीरा की जेल का निरीक्षण करते थे। यह ढङ्ग सब क़ैदियों को इसलिए अखरता था कि उनके दैनिक कामों में विघ्न पड़ता था और इससे पता चलता था कि वे क़ैदी हैं। इन्स्पेक्टर को यह ढङ्ग इसलिए बुरा लगता था कि उसे प्रबन्ध के लिए बहुत दौड़-धूप करनी पड़ती थी। सन् १८८९ के अन्त में जेल के इन्स्पेक्टर फ़ैडैरौव को ख़बर मिली कि निरीक्षण के लिए कोई अफ़सर आ रहा है। उसने वीरा और उसके साथी अन्य क़ैदियों को चेतावनी दे दी कि पुस्तकों को छिपा कर रख दो, या लाइब्रेरी में पहुँचा दो। जेल की लाइब्रेरी में क़ैदियों की अपने साथ लाई हुई बहुत सी पुस्तकें ऊँचे अफ़सरों के बिना जाने रहती

थीं। इवानौव के सिवा और सबने इन्स्पेक्टर की बात मान ली।

डूनौवौ, जो सन् १९०५-६ में होम मेम्बर था और आगे चल कर जो क्रान्तिकारियों के हाथ से मारा गया, जेल का निरीक्षण करने आया। इकनौव की कोठरी में उसने मिगनेट-रचित फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति का इतिहास देख लिया। फलतः क़ैदियों की सारी पुस्तकें हटा दी गईं। इसके विरोध में वीरा तथा अन्य कई क़ैदियों ने अनशन प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिन बाद औरों ने तो अनशन त्याग दिया, परन्तु वीरा तथा उसका एक साथी, यह दो डटे रहे। वीरा को अपने साथियों की कमज़ोरी पर बड़ा दुःख हुआ।

वीरा और उसके एक साथी को अनशन करते हुए औरों की अपेक्षा दो ही दिन अधिक हुए थे कि दो और साथियों ने उससे यह कहा कि यदि अनशन से वह मर गई तो वे लोग भी आत्म-हत्या कर लेंगे। वीरा को इस पर बड़ा क्रोध आया, किन्तु वह अपने सर पर अपने साथियों की हत्या का कलङ्क नहीं लेना चाहती थी, इसलिए उसने अनशन तोड़ दिया। परन्तु साथ ही, उसने यह निश्चय ज़रूर कर लिया कि मैं अब कभी ऐसे दुर्बल साथियों के साथ जेल में किसी प्रतिरोध में शामिल नहीं हूँगी। क़ैद के समय वीरा और उसके साथियों का जो रुपया जमा था, वह अनशन के कारण ज़ब्त कर लिया गया।

## मनोरञ्जन

एक दिन एक अफ़सर क़िले में आया। उसके हाथ में एक अख़बार था। वहाँ से जाते समय वह अख़बार पड़ा छोड़ गया, जो क़ैदियों के हाथ में पड़ गया। उसमें जर्मनी की साम्यवादी पार्टी आदि के समाचार थे। इतने वर्षों में यह पहला ही अवसर था, जब कि वीरा और उसके साथियों को जेल के बाहर की दुनिया की झलक देखने को नसीब हुई।

## वैज्ञानिक अध्ययन

वीरा की उम्र ४० वर्ष के क़रीब पहुँच चुकी थी। जेल में उसकी इच्छा बचपन में पढ़े हुए विषयों को दुहराने की हुई। यहाँ उसने वनस्पतिशास्त्र पढ़ना आरम्भ किया। वनस्पतिशास्त्र और जीवशास्त्र के अध्ययन में वीरा को अपने वैज्ञानिक साथी, लुकाशेविच से बड़ी सहायता मिली।

भूगर्भ-विद्या के अध्ययन के लिए लुकाशेविच ने वीरा को रङ्गीन चार्ट तैयार करके दिए। खनिज पदार्थों और चट्टानों के विभाजन का काम उसने ख़ुर्दबीन की सहायता से किया। रसायन-शास्त्र के गहन अध्ययन के लिए भी इन लोगों ने एक प्रयोग-शाला बना ली थी। यह काम शिक्षा और संस्कृति की दृष्टि से सचमुच बड़े बहुमूल्य थे। इन कामों में लग कर वीरा और उसके प्रायः सभी साथियों को बहुत आनन्द और सन्तोष मिला।

वीरा और उसके साथियों ने सेण्टपीटर्सबर्ग के अजायबघर में वनस्पति सम्बन्धी जो वैज्ञानिक चीज़ें बना कर भेजीं, वे सब पैरिस की प्रदर्शिनी में भेज दी गईं। उन चीज़ों ने वहाँ बड़ा नाम पाया। परन्तु अजायबघर के अधिकारियों ने यह बात छिपा ली कि वे सब चीज़ें रूसी क़ैदख़ाने से बन कर आई हैं।

## पत्र-व्यवहार

वीरा अपने परिवार के लोगों को केवल वर्ष में दो बार पत्र भेज सकती थी। आने-जाने वाले पत्रों पर बड़ी कड़ी देख-रेख थी, पत्र-व्यवहार में अनेकों ऐसी रुकावटें थीं, जिनसे एक दूसरे को मन का भाव आज़ादी से व्यक्त नहीं कर पाते थे। एक बार वीरा की बहिन औल्गा ने १६ पृष्ठ का एक लम्बा पत्र भेजा। इस पत्र में सन् १८९६ की औद्योगिक प्रदर्शिनी और रूस की राजनैतिक स्थिति पर काफ़ी प्रकाश डाला गया था।

एक बार वीरा के एक साथी लोपाट्किन ने अपने भाई को उन्निद्र रोग की शिकायत करते हुए एक पत्र लिखा और उसमें पुश्किन की कविता की एक लाइन उद्धृत कर दी। उसका आशय था—"सन्तरी की सङ्गीन में आधी रात का चन्द्रमा चमक रहा है!" इस पत्र का मतलब तो यह था कि क़िले की दीवार के सहारे सिपाही टहल रहा है, और सारे क़िले पर तथा दुनिया में चन्द्रमा चमक रहा है! परन्तु सेन्सर ने पुश्किन की कविता का अर्थ यह लगाया कि इसमें क़ैदियों की कोठरियों का नक़शा बताया गया है!

यहाँ के क़ैदी लोग अपने परिवारों से सदा के लिए अलग कर दिए गए थे। इसलिए उनमें अपने घर के

लोगों के लिए कोई विशेष ममता नहीं रह गई थी। वीरा को अपने प्यारे चचा की मृत्यु का समाचार सुन कर विशेष दुःख नहीं हुआ। किन्तु एक दिन उसकी कोठरी में रहने वाली चिड़िया मर गई, उसके लिए वीरा १४ दिन तक रोती रही।

## वर्क-शॉप और बाग़

सन् १८९३-९४ में श्लूसैलबर्ग के क़िले में बहुत सी शिल्पशालाएँ खुल गईं। उनमें काम करना वीरा और उसके साथियों के जीवन का एक मुख्य अङ्ग बन गया। इन क़ैदियों की बनाई हुई बहुत ही सुन्दर चीज़ें, जैसे कुर्सियाँ, मेज़ें लकड़ी की तश्तरियाँ आदि, बरामदे में सजा कर रक्खी जाती थीं, ताकि उन्हें सब देख सकें। एण्टीनौव ने ६ महीने में एक बहुत ही सुन्दर बेल-बूटे-दार अलमारी बनाई। उसकी उजरत में उसे २५ रूबल मिले। यह रक़म उसने वीरा तथा अन्य साथियों में बाँट दी। कुछ वर्ष बाद लौह की चीज़ें बनाने के लिए एक भट्टी भी बना दी गई।

बाग़वानी के काम में भी वीरा ने ख़ूब ही उन्नति की। अपने साथियों की सहायता से उसने साढ़े चार सौ तरह के फूल लगाए। उसकी पैदा की हुई तरकारियों में से कुछ अच्छी तरकारियाँ प्रदर्शिनी तक में भेजी गई थीं। इस प्रकार इन क़ैदियों ने अपने श्रम से श्लूसैलबर्ग क़िले की बीहड़ और चट्टानी ज़मीन में एक हरा-भरा और सुहावना उपवन बना दिया था। उस उपवन में बड़े-बड़े ६ बाग़ थे। वीरा के दो साथियों ने अपने और उसके बाग़ में टीन के नल द्वारा ५ फ़ीट ऊँचे दो सुन्दर फ़ौव्वारे बना दिए थे। अब यह क़ैद-ख़ाना सचमुच एक स्वर्ग बन गया था।

वीरा और उसके मित्रों ने कोशिश करके जेल की लाइब्रेरी अप-टू-डेट बना ली। इससे लोगों को लिखने-पढ़ने का बहुत सुभीता हो गया। एक आदमी ने 'पदार्थ की बनावट' ( The Structure of matter ) नाम की बड़ी उपयोगी पुस्तक लिखी। रसायन, प्रकृति, ज्योतिष तथा आर्थिक समस्याओं पर अनेक लेख और ग्रन्थ लिखे गए। वीरा के एक लुकाशेविच नाम के साथी ने जब भूमि-सम्बन्धी नक़शे तैयार किए, तब उनमें काला रङ्ग देने के लिए, लैम्प से काला, कोठरी की दीवार से प्लास्तर खुरच कर नीला, और अपना रक्त निकाल कर लाल रङ्ग भरने का काम लिया।

जेल में वीरा अपने साथियों के कष्टों का बड़ा ख़याल रखती थी। एक दिन उसका ईवानौव नाम का साथी, एक साधारण सी बात पर बहुत सताया गया। ३ मार्च १९०२ को वीरा ने अपनी माँ को पत्र लिख दिया कि वे होम-मिनिस्टर या पुलीस के डाइरेक्टर को लिख कर इस जेल की जाँच करा दें। इन्स्पेक्टर ने वीरा का वह पत्र बाहर जाने देने में आना-कानी की। बातों ही बातों में दोनों में तनातनी बढ़ गई। उस तनातनी का नतीजा यह निकला कि वीरा ने इन्स्पेक्टर की अच्छी तरह मरम्मत कर दी। वह पिट कर साफ़ भाग गया। वीरा के इस काम का फल यह हुआ कि होम मिनिस्ट्री का एक प्रतिनिधि श्लूसैलबर्ग में जाँच करने आया। उसकी रिपोर्ट पर क़िलेदार और इन्स्पेक्टर दोनों ही वहाँ से हटा दिए गए!

## सेण्टपीटर्सबर्ग में

२८ सितम्बर, १९०४ को वीरा को सज़ा पाए हुए २० वर्ष हो चुके थे। २९ सितम्बर को वह सेण्टपीटर्सबर्ग भेजने के लिए जहाज़ पर सवार कराई जाने को थी। अपने साथियों से अन्तिम विदाई लेकर वह क़िलेदार के दफ़्तर में जहाज़ की प्रतीक्षा करने लगी।

क़िलेदार ने कहा—"वीरा निकोलायैवना, थोड़ी चाय पियोगी?" इस पर वीरा ने लिखा है—"मैं, जोकि अभी १० मिनट तक नम्बर ११ थी, एक साथ २० वर्ष बाद वीरा निकोलायैवना हो गई। मैं उनकी कृपा का लाभ उठाना नहीं चाहती थी, इसलिए चाय पीने से इन्कार कर दिया।"

जहाज़ पर चढ़ाकर वीरा सेण्टपीटर्सबर्ग में पीटर और पौल के दुर्ग में पहुँचा दी गई। तीन दिन तक उससे कोई मिल नहीं सका। चौथे दिन उसके भाई-बहिन मिलने के लिए आए। इन्स्पेक्टर ने उनसे कह दिया कि वे वीरा से ऐसी बातें करें, जिससे बीती हुई बातें ध्यान में न आवें। इसका स्पष्ट अर्थ यही था कि जेल के अधिकारी चाहते थे कि वीरा और उसके घरवाले अपने हृदयों की उस आग को दबा दें जो विगत २० वर्षों के इतिहास से प्रज्वलित हो रही थी। २० वर्ष के बाद

वीरा अपने भाई-बहिन के सामने लाई गई। यह उसके जेल-जीवन के करुण-नाटक का अन्तिम दृश्य था। इस दृश्य के सम्बन्ध में उसने लिखा है :—

"मैं वहाँ (भाई-बहिनों के सामने) डिकेन्स के उपन्यास की उस महिला की तरह बैठी हुई थी, जिसने कि पति के उपस्थित न होने पर, घड़ी की सुई बारह पर ठहरा दी थी, और जिसकी शादी की पोशाक चिथड़ों के रूप में परिणत हो गई। मेरा जीवन २० वर्ष पहले बीत चुका था। मैं भी उस पागल औरत की तरह यही समझ रही थी कि जीवन की घड़ी में अब भी बारह बजे हैं!"

वीरा अपने भाई-बहिनों से मिली। भाई ने उसके हाथ अपने हाथों में ले लिए। वह धीरे-धीरे अपने भाई को पहचानने लगी। बातें बहुत मामूली और ऊपरी ही हो पाई थीं कि इन्स्पेक्टर ने आकर कह दिया कि भेंट का समय समाप्त हो गया।

वीरा फ़िगनर के शलूसैलबर्ग के साथियों में से अधिकतर मर गए। सन् १९०४ में वह २० वर्ष की कैद के बाद वहाँ से छोड़ तो दी गई, परन्तु फिर साइबेरिया में निर्वासित कर दी गई। आगे चल कर वहाँ से वह अपने देश में वापस आ गई। उसके जीवन का अधिक भाग—और बड़ा महत्वपूर्ण भाग—जेलों में बीता। वीरा का अपूर्व आत्म-त्याग और कष्ट-सहन रूस के आत्मोद्धार के लिए किए गए उज्ज्वल तप के तुल्य था। उसके स्वदेशानुराग की उज्ज्वल और क्रान्तिमयी भावना संसार के पराधीन देशों के गिरे हुए लोगों का पथ-प्रदर्शन करने के लिए सदा प्रकाश-स्तम्भ का काम देगी।

❀ ❀ ❀

# दानी 'चाँद'

—:o:—

[ श्री० मातादीन जी गुप्त 'मत्त' ]

( १ )

शिवि-दधीचि से भी बढ़ कर हो—
सखे सुधाकर, तुम दानी!
बात जगत् में सभी बनाते,
पर तुम हो असली ज्ञानी!!

( २ )

जितनी अधिक लुटाओगे तुम—
चाँदी अपने ही घर की,
है सिद्धान्त, बढ़ो उतने ही,
टहल करो जितनी पर की!!

( ३ )

भले कलङ्की कहे जगत्, यदि
मन न कभी दहलाओगे;
प्रति-दिन होगी वृद्धि तुम्हारी,
सखे, पूर्ण कहलाओगे!!

( ४ )

अमा-निशा में कठिन परीक्षा
एक तुम्हारी होएगी!
बढ़े चलो यदि इच्छित पथ पर,
विजय-वधू पग धोएगी!!

( ५ )

पुनः वही अतीत का गौरव
धीर 'चाँद' तुम पाओगे!
द्वितिया का तुम फिर वैसे ही
सुधा-धार बरसाओगे!!

संसार के सब से छोटे ( ३५ वर्षीय ) पादड़ी—राईट रेवरेण्ड डब्लू० बाऊटर, जो हाल ही में भारत-भ्रमण करके सान फ्रान्सिस्को ( अमेरिका ) पहुँचे हैं। भारतीय जात-पाँत के सम्बन्ध में पूछने पर आपने कहा कि "जात-पाँत का वहाँ उतना ही भेद-भाव है, जितना कि यूनाइटेड स्टेट्स में।"

बाली द्वीप की वे अभागिनी देवदासियाँ, जिनका एक-मात्र धर्म मठाधीश अथवा पुजारियों के चरणों पर अपना सर्वस्व निछावर करना बतलाया जाता है और ४ वर्ष की आयु से ही इस शिक्षा ( ! ) का श्रीगणेश होता है। यही देवदासियाँ नर्तकी का कार्य भी करती हैं। इस चित्र में पाठक इन्हें नाचने की पोशाक में देखेंगे !!

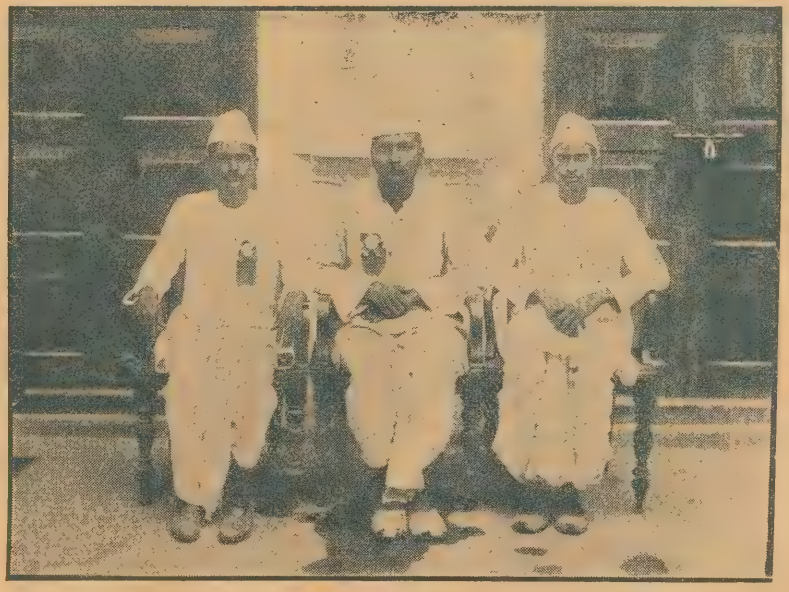

मैनपुरी ज़िले के प्रमुख कार्यकर्ता, ( बाँईं ओर से ) १—श्री० रतन गुप्त, २—ठाकुर भरतसिंह, और ३—ठाकुर गयाप्रसाद सिंह—तीनों सज्जन निर्दिष्ट काल तक नोकरशाही के मेहमान भी रह चुके हैं।

मिसेज़ बख़्शी (लखनऊ)—यह चित्र उस समय का है, जबकि गत २१ जून को, सिर्सागञ्ज (मैनपुरी) के तृतीय ज़िला कॉन्फ्रेन्स के अवसर पर आपने राष्ट्रीय झण्डे का अभिवादन-समारोह सम्पन्न किया था।

काशी विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर चन्द्रभाल जौहरी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती विशालाक्षी एम० ए०। यह अन्तर्जातीय संयोग अभी हाल में ही हुआ है; क्योंकि प्रोफ़ेसर जौहरी संयुक्त-प्रान्त के निवासी और उनकी पत्नी मद्रासी हैं पाठकों को स्मरण होगा, जौहरी जी पर काकोरी-षड्यन्त्र के सम्बन्ध में मामला भी चल चुका है।

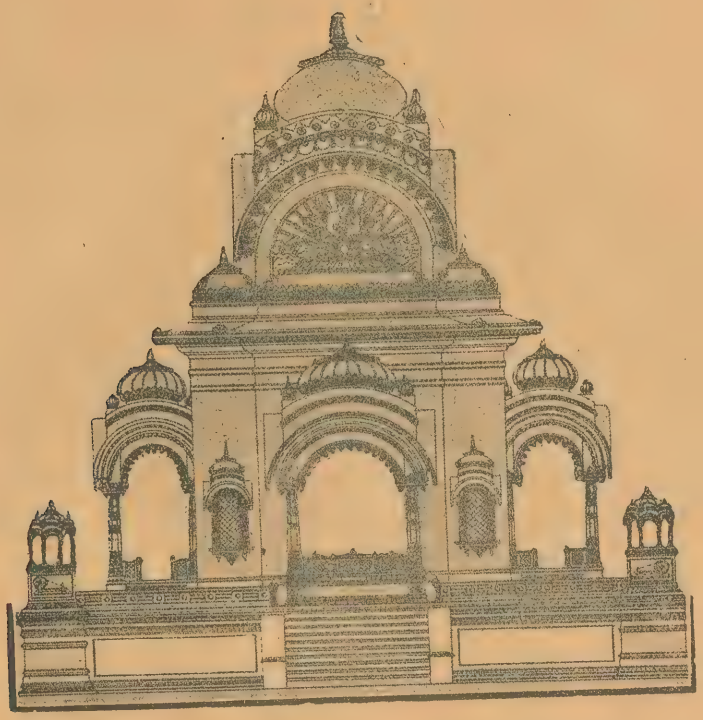

स्वर्गीय पं० मोतीलाल जी नेहरू के स्मारक का डिज़ाइन—जिसे लखनऊ कला-विद्यालय ( Govt. School of Arts and Crafts ) के कलाविद् श्री० सरीशचन्द्र चैटर्जी ने बनाया है।

जबलपुर केण्टोन्मेण्ट के चार वीर बालक, जो विगत सत्याग्रह संग्राम में जेल गए और छावनी से निकाल दिए गए थे।

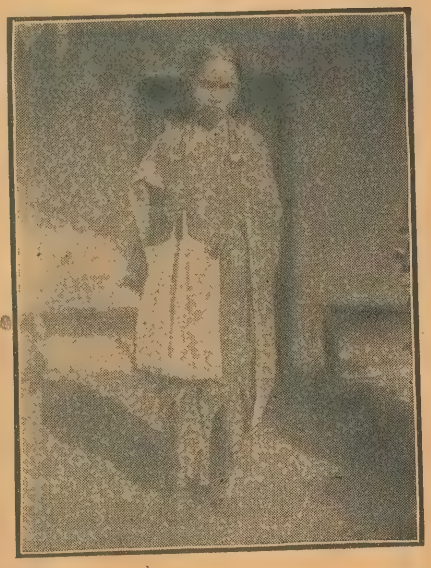

श्रीमती यमुनाबाई—आप जबलपुर के "महाकोशल प्रान्तीय महिला सेवा-सङ्घ" की अध्यक्षा हैं।

श्री० रियोलिट ( Mr. Rhyolite ) नामक एक अमेरिकन इञ्जीनियर की कारीगरी का विचित्र नमूना—जिसने शराब और ताड़ी की बोतलों से ही अपना मकान तैयार किया है। छत और बराण्डों को छोड़ कर, सारा मकान बोतलों का ही बना है। कहा जाता है, इसमें कुल १३,००० बोतलें लगी हैं और सारे संसार में अपने ढङ्ग का यह अनोखा मकान है।

संसार में सब से धनी, अमेरिका-निवासी मि० रॉकफ़ेलर। कहा जाता है, आपका ऐश्वर्य मि० हेनरी फ़ोर्ड की अपेक्षा कहीं अधिक है।

शेर-बकरी के एक घाट पर पानी पीने की लोकोक्ति तो पाठक प्रायः सुनते ही होंगे; किन्तु इस चित्र में पाठक देखेंगे, अमेरिका के एक सज्जन, जिन्हें गिलहरियाँ पालने का शौक़ है—उन्हें कुतिया का दूध पिलवाते हैं। इस चित्र में यही दृश्य अङ्कित है। अमेरिकन सज्जन की कुतिया बड़े प्रेम से गिलहरियों को दूध पिला रही है।

महन्त सीताराम जी शास्त्री, नासिक—आप पहले सनातनी महन्त हैं, जिन्होंने अछूतोद्धार कार्य में प्रमुख भाग लिया है। आपके विचार राष्ट्रीय और उदार हैं। अन्य 'महन्त' नामधारी देश के कलङ्कों को आपसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

श्री० मदनगोपाल सन्धाल। आप मेरठ की बाल-सभा के प्रमुख कार्यकर्ता और अन्यतम प्रवर्तक भी हैं।

श्री० महात्मा गजाधर—आप कराची के बेकार मज़दूरों के लीडर हैं और उन्हें इन विपत्ति के दिनों में यथेष्ट सहायता पहुँचाई है।

ग़ाज़ीपुर की कुछ बाल-स्वयंसेविकाएँ—जिन्होंने मेरठ के बाल-परिषद् के अवसर पर लाठी और छुरी के खेल दिखा कर लोगों को चकित किया था।

श्री० बालकृष्ण माहेश्वरी—प्रधान मन्त्री श्री० गाँधी सेवा-समिति, कानपुर। साइनबोर्ड के सम्बन्ध में आपने बड़ी मुस्तैदी से हिन्दू-अधिकारों की रक्षा की थी।

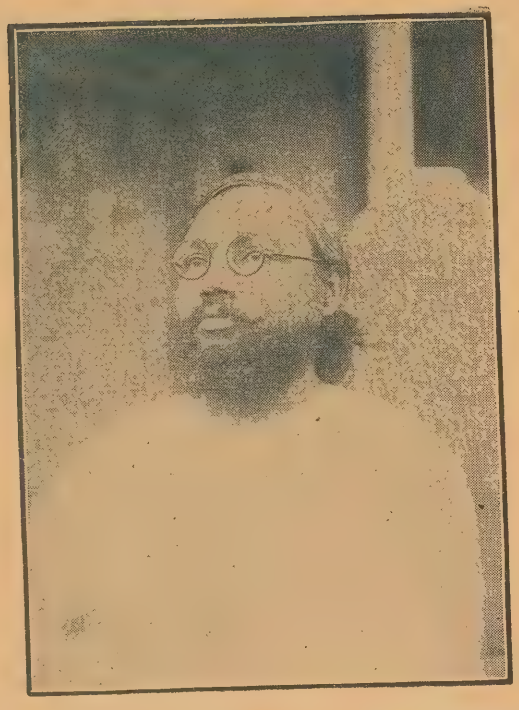

श्री० पण्डित रङ्गेश शर्मा—आप सारन ( बिहार ) के प्रमुख कार्यकर्ता हैं। साढ़े नौ मास जेल में रह कर छूटे हैं। गत सन् १९२१ के आन्दोलन में भी आपको एक साल की सज़ा दी गई थी और जुर्माने में पुलीस आपके घर का छप्पर तक उजड़वा ले गई थी!

संसार का सब से वृद्ध व्यक्ति—श्री० हदशी अहमद ( टर्की ), जिसकी उम्र १३६ वर्ष की बतलाई जाती है। यह ज़ईफ़ अपने को जगत-प्रसिद्ध ज़ारा का प्रतिद्वन्दी बतलाता है।

बर्लिन ( जर्मनी ) में अपने एक मित्र के यहाँ भारतीय धारा-सभा के भूतपूर्व प्रधान—श्री० विट्ठलभाई पटेल

जो विचित्र चश्मा पाठक इस चित्र में देखेंगे, हाल ही में अमेरिका में इसका आविष्कार हुआ है। बग़ल में एक शीशा इस प्रकार लगाया गया है, जिससे पीछे की सारी चीज़ें स्पष्ट दिखाई देती हैं—पीछे घूम कर देखने की झंझट भी जाती रही!

लन्दन की सुप्रसिद्ध समाज-सेविका—कुमारी म्युरियल लेस्टर—जो पिछले ३० वर्षों से मनुष्य-मात्र की सेवा कर रही हैं। महात्मा गाँधी विलायत में आप ही के मेहमान होंगे।

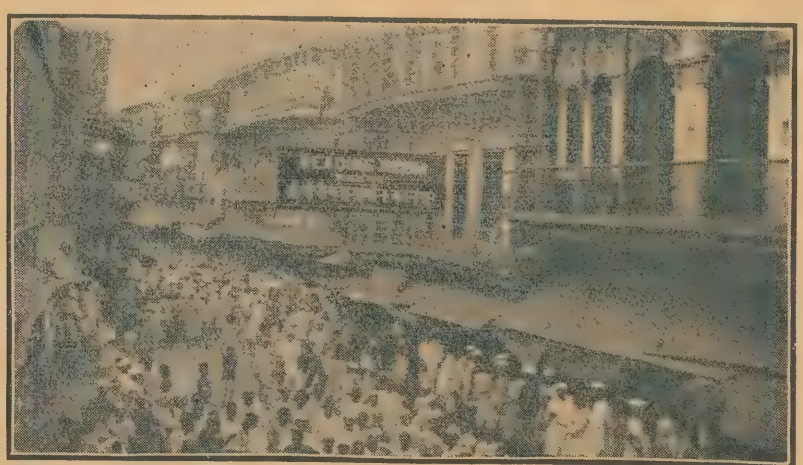

कानपुर की प्रसिद्ध गाँधी सेवा-समिति का साइनबोर्ड। इसमें नीचे के तार साफ़ दीख रहे हैं। इसी साइनबोर्ड को हटाने की ज़िद में मुसलमानों ने ताज़िए नहीं दफ़नाए।

# कान्यकुब्ज-ब्राह्मण परिचय

[ मेजर एम० एल० भार्गव, आई० एम० एस० ]

## आलोचना की प्रत्यालोचना

जून, १९३१ के 'चाँद' में श्री० रजनीकान्त जी शास्त्री बी० ए०, बी० एल्० का उत्तर पढ़ा। शोक है कि विद्वान् लेखक ने मेरी आलोचना निष्पक्ष भाव, शान्त चित्त तथा ध्यानपूर्वक नहीं पढ़ी और इस कारण स्वयं भूल में पड़ कर दूसरों को भी भ्रान्ति में डालने का प्रयत्न करने के दोषी हुए।

### १—राम और विश्वामित्र

मेरे लेख का आशय यह था कि आदि-ऋषि विश्वामित्र ऋग्वैदिक काल में हुए थे। उस काल में आर्य-हिन्दू पाञ्चाल तथा कौशल देशों में नहीं पहुँचे थे। अतः विश्वामित्र के दादा कुशनाभ का महोदय में राज्य करना, उनके काल में उस नगर का नाम कान्यकुब्ज पड़ना और विश्वामित्र की अयोध्या के राजकुमार राम से भेंट होना असम्भव है। दूसरे यह कि महाराज राम का जन्म ऋग्वैदिक काल से बहुत पीछे हुआ था, अतः वह और गाधि-सुत विश्वामित्र समकालीन नहीं हो सकते। सुतराम् रामायण के वह सर्ग, जिनमें गाधि-सुत विश्वामित्र का राम-दशरथ से सम्वाद तथा राजा कुशनाभ के समय में महोदय के कान्यकुब्ज कहलाने की कथा है, सत्य न होकर क्षेपक हैं।

योग्य लेखक ने मेरी पहली युक्ति पर तो ध्यान ही नहीं दिया। दूसरी के उत्तर में केवल यही कहा है कि या तो आदि-विश्वामित्र ऋग्वैदिक काल से महाराज राम के समय तक, जिनमें सहस्रों नहीं तो कम से कम सैकड़ों वर्षों का अन्तर अवश्य था, जीवित रहे या राम की विश्वामित्र के किसी वंशज से भेंट हुई थी। उनकी पहली धारणा को तो कोई ऐतिहासिक या वैज्ञानिक सत्य नहीं मान सकता। दूसरी के सत्य मानने से रामायण की वह कथा आप ही क्षेपक प्रमाणित हो जाती है, कारण, कि उसमें स्पष्ट राम से सम्वाद करने वाले विश्वामित्र को कुशनाभ का पौत्र और गाधि का पुत्र बताया गया है।

श्री० रजनीकान्त भूलते हैं कि वर्तमान राम-सम्बन्धी ग्रन्थों में कोई भी "आर्ष" या "प्राचीन" ग्रन्थ शुद्ध रूप में नहीं पाया जाता। रामायण तथा महाभारत पर टीका-टिप्पणी करने वाले लगभग सभी विद्वानों का मत है कि इन दोनों ग्रन्थों में बौद्ध-मत के प्रबल होने के पश्चात् बहुत-कुछ परिवर्तन ( घटाई-बढ़ाई ) हुआ है। अतः आज उनको शुद्ध "आर्ष" या "प्राचीन" ग्रन्थ और उनके प्रत्येक श्लोक को स्वतः प्रमाण मानना भूल है। "अनार्ष" और "अर्वाचीन" ग्रन्थ कुछ तो उन परिवर्तित "आर्ष" ग्रन्थों, कुछ जन-श्रुतियों और दन्त-कथाओं तथा शेष भागों में नवीन कवियों की स्वतन्त्र कल्पनाओं के आधार पर लिखे गए थे। यदि योग्य लेखक महाभारत के रामोपाख्यान, वर्तमान वाल्मीकीय रामायण, दशरथ-जातक, रघुवंश, भट्टि-काव्य, महावीर-चरित, उत्तर रामचरित, राघव पाण्डवीय, हनुमन्नाटक, बाल-रामायण और रामचरित-मानस तथा अन्य हिन्दी और उर्दू की नवीन रामायणों की तुलना करें तो उनमें बहुत कुछ विभिन्नता पाएँगे। अतः वह भी स्वतः प्रमाण नहीं माने जा सकते। वर्तमान रामायण तथा महाभारत के क्षेपकों का वाल्मीकि और व्यास को ज़िम्मेवार ठहराना अति भयङ्कर भूल है। शेष ग्रन्थकार बहुत पश्चात् काल के हैं। बिना अन्य दृढ़ प्रमाण मिले, उनके लेखों का कोई मूल्य नहीं है।

भारत जनपद के राजा सुदासतृत्सू ( कल्माषपाद इक्ष्वाकु का पिता नहीं ) का ऋग्वेद में कई बार वर्णन है। मैं नहीं जानता कि श्री० रजनीकान्त के पास राजा हरिश्चन्द्र को उससे कई पीढ़ियों पूर्व मानने के क्या प्रमाण हैं! ऋग्वेद में उसका नाम नहीं पाया जाता।

ऐतरेय ब्राह्मण में दी हुई 'शुनःशेफ आजिगर्ति' की कथा से तो यही जान पड़ता है कि वह भी आदि विश्वामित्र और इस कारण राजा सुदासतृत्सू का भी समकालीन या लगभग समकालीन ही होगा, यद्यपि इससे उसके अयोध्या नगर के राजा होने में सन्देह उत्पन्न होता है। यह हो सकता है कि ऐतरेय ब्राह्मण या बृहद्देवता दोनों में से एक की कथा असत्य और लेखक की निराधार कल्पना हो। परन्तु एक में शुनःशेफ के विश्वामित्र को राजपुत्र और भरतर्षभ कह कर सम्बोधन करने और उसके देवरात नाम से विश्वामित्र का पुत्र बन कर मधुच्छन्दसू आदि का बड़ा भाई बन जाने का वर्णन होने और दूसरी में विश्वामित्र के गाधि-सुत कहे जाने और शक्ति वासिष्ठ से झगड़ा होने की कथा से तो दोनों का एक ही व्यक्ति तथा आदि विश्वामित्र होना ही सिद्ध होता है। यदि वह कथाएँ सत्य हैं और कपोल-कल्पित नहीं हैं तो सुदासतृत्सू तथा हरिश्चन्द्र भी लगभग समकालीन ही होंगे। याद रखना चाहिए कि दोनों कथाएँ ऋग्वैदिक मन्त्रों के सम्बन्ध में हैं।

जहाँ तक मुझे ज्ञान है 'चण्डकौशिक' और 'सत्य हरिश्चन्द्र' की कहानियों का किसी वैदिक ग्रन्थ में वर्णन नहीं है। पर ऐतरेय ब्राह्मण में हरिश्चन्द्र के नरमेध-यज्ञ में विश्वामित्र को होता और वशिष्ठ को ब्रह्मा अवश्य बताया गया है। परन्तु यह नहीं कहा गया कि वह वशिष्ठ वही थे, जो दशरथ के पुरोहित थे। वशिष्ठ ऋषि को इक्ष्वाकु से लगा कर राम तक सभी का पुरोहित कहा जाता है। परन्तु कोई भी ऐतिहासिक यह नहीं मान सकता कि यजमान-वंश में तो इतनी पीढ़ियाँ बीत जावें और पुरोहित एक ही व्यक्ति रहे। स्वयं वर्तमान रामायण ही इस अन्धविश्वास को असत्य प्रमाणित कर देती है। उसमें स्वयं वशिष्ठ के ही मुख से कहलाया गया है—"द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ बभूवतुरितिश्रुतिः।" ( बा० रामायण, बाल० स० ७०, श्लो० ३० एवं बा० रामायण अयो० स० ११०, श्लो० १८ ) अर्थ—"राजा असित की दो स्त्रियाँ गर्भवती थीं, ऐसा सुना जाता है या ऐसी श्रुति या कहावत है।" "कल्माषपाद पुत्रोऽभूच्छं खण स्त्विति नः श्रुतम्" ( बा० रामायण, अयो० स० ११०, श्लो० ३० ) अर्थ—"राजा कल्माषपाद का पुत्र शङ्खण हुआ, यह हमने सुना है।" अब श्री० रजनीकान्त ही बतलावें कि क्या इक्ष्वाकु से लगा कर राम तक सबका समकालीन व्यक्ति ऐसे वचन कह सकता है? उसकी तो सब घटनाएँ आँखों देखी होनी चाहिए थीं।

अतः ऐतरेय ब्राह्मण की कथा में वशिष्ठ का अर्थ वासिष्ठ-गोत्री ही हो सकता है और इससे यह किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होता कि हरिश्चन्द्र के समकालीन विश्वामित्र और वशिष्ठ राम के भी समकालीन थे।

परशुराम ( राम जामदग्न्य ) को भी ऋग्वेद के मन्त्रकर्ताओं में माना गया है। वह भी राम दाशरथि के बहुत पूर्व हुए थे। अतः राम दाशरथि को परशुराम के "विकट दर्शन" होना भी असम्भव है। यह कथा किसी क्षत्रियों के ख़ुशामदी और सम्भवतः ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले पश्चात्काल के कवि की निराधार कल्पना है। भीष्म कौरव तो राम के भी बहुत पीछे हुए थे। परन्तु इसी प्रकार के किसी कवि ने महाभारत में क्षेपक जोड़ कर परशुराम जी को उनसे भिड़वा दिया। यह कैसे माना जा सकता है कि सहस्रार्जुन कार्तवीर्य से लगा कर भीष्म तक क्षत्रियों में तो बहुत सी पीढ़ियाँ समाप्त हो जावें और एक ब्राह्मण योधा आदि से अन्त तक जीवित रहे। इसी प्रकार का महाभारत का वह क्षेपक है, जिसमें भीम, पाण्डव और हनुमान जी को भिड़वाया गया है। इन कथाओं को सत्य प्रमाणित करने के हेतु यह माना गया है कि परशुराम और हनुमान अमर हैं। परन्तु प्रश्न यह होता है कि जब वह महाभारत के समय तक लोगों को दर्शन देते रहे तो तत्पश्चात् क्यों हम लोगों को दुख-सागर में छोड़ कर अदृश्य हो गए? परन्तु सत्य तो यह है कि यह सब पश्चात्काल के कवियों की कपोल-कल्पित कल्पनाएँ हैं और ऐतिहासिक खोज में उनको प्रमाण मानना अति भयङ्कर भूल है।

श्री० रजनीकान्त जैसे "आस्तिक" हिन्दू जो जी चाहे मान कर अपना चित्त प्रसन्न कर लें, परन्तु ऐतिहासिक खोज में, आस्तिक हो या नास्तिक, हिन्दू हो या अहिन्दू, सभी को असाधारण घटनाओं को सत्य मानने के लिए दृढ़ प्रमाण चाहिए। आश्चर्य तो यह है कि सर हर्बर्ट रिज़ले, मि० विन्सेन्ट स्मिथ तथा Oxford Students' History of India के वचनों को वेद-वाक्य मानने वाले सज्जन भी अपने को इस प्रकार के "आस्तिक"

हिन्दुओं में सम्मिलित करते हैं। स्वयं ऋग्वेद के मन्त्रों में मनुष्य की पूर्ण आयु १०० वर्ष मानी गई है "शतं जीवेम शरदः"। यदि ब्राह्मण ऋषि सहस्रों वर्ष तक जीवित रहते तो अपने इष्ट-देवों से केवल सौ शरद (वर्ष) तक जीवित रहने की प्रार्थना न करते।

यह मैं मानने को तैयार हूँ कि विश्वामित्र और वशिष्ठ आदि नाम उनके वंशजों के उपनाम के तौर पर बर्ते जाते थे और व्यक्तिगत न होकर वंशगत थे। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि गाधि-सुत विश्वामित्र राम के समकालीन थे और पाञ्चाल देश का कान्यकुब्ज नाम राम के समय से पहिले पड़ चुका था।

## २—परस्पर विरोधी वचन

शोक है कि रजनीकान्त जी ने "वर्तमान रामायण...अपने वर्तमान रूप में आया" के आगे छपे "परन्तु गत २०० वर्ष से पूर्व तक इसमें परिवर्तन और घटाई-बढ़ाई होती रही" इन शब्दों की ओर ध्यान नहीं दिया, वरन् उनको मेरे वचनों में कोई परस्पर विरोध दिखाई नहीं देता।

## ३—द्राविड़ ब्राह्मणों की जाति

योग्य लेखक ने मेरी धारणा को न मानने योग्य, महा अपमानकारी तथा असत्य बताया है। मेरी समझ में नहीं आता कि मिश्रित नस्ल का होने में अपमान की कौन सी बात है। नृशंस-विद्या (Anthropology) के विशारदों के मतानुसार इस पृथ्वी की सभ्य जातियों में बहुत सी मिश्रित नस्ल की हैं। यूरोप की विरली ही कोई जाति ऐसी है, जिसमें दो या इससे अधिक नस्लों का समावेश न माना जाता हो। प्राचीन आर्य नस्ल के लोग जहाँ कहीं भी जाकर बसे, सब जगह वहाँ के निवासियों का मूलोच्छेदन न करके, उनसे मिश्रित हो गए। स्वयं रजनीकान्त जी के आधार सर हर्बर्ट रिज़्ले ने ही भारत के अधिक भाग के निवासियों को मिश्रित नस्लों का बताया है। उन्होंने पश्चिम भारत के निवासियों में कुछ को "शक-वंशी" और कुछ को "द्राविड़-वंशी" नहीं बताया है, उनको शक और द्राविड़ों का मिश्रण (Scythio-Dravidian) बताया है। इसी प्रकार उन्होंने सीमाप्रान्त तथा बलूचिस्तान के निवासियों को तुर्कों और ईरानियों, मध्यदेश के निवासियों को आर्यों और द्राविड़ों, बङ्गाल और उड़ीसा के निवासियों को मङ्गोलों और द्राविड़ों का मिश्रण बताया है। महाराष्ट्र-ब्राह्मण रावबहादुर सी० वी० वैद्य ने पश्चिम भारत के निवासियों को और बङ्गाल के श्री० आर० चन्द ने पश्चिम भारत, आन्ध्र, उड़ीसा और बङ्गाल के निवासियों को आर्य और द्राविड़ों का मिश्रण सिद्ध किया है। (मेरी समझ में बङ्गालियों और उड़ियों में मङ्गोलियों से मिलते (Mongoloid) कोलों का मिश्रण अवश्य है।) परन्तु किसी ने भी उनके वचनों को अपमानकारी नहीं बताया। स्वयं अपने को द्विज-श्रेष्ठ मानने वाले कान्यकुब्जों ने भी सर हर्बर्ट के मध्य देश के निवासियों को आर्य और द्राविड़ नस्लों का मिश्रण बतलाने पर मान-हानि की पुकार नहीं मचाई। कृपया उक्त विद्वानों के लेखों को ध्यान से पढ़िए।

आपने द्राविड़ों की खोपड़ी चौड़ी और आर्यों की लम्बी बताई है। यह सत्य नहीं है। मिस्टर थर्स्टन ने अपनी "Castes and Tribes of Southern India Vol. I" में प्रमाणित कर दिया है कि शुद्ध द्राविड़ लम्बी खोपड़ी के (Dolichocephalic) थे। आज भी तामिल-नाडु और मलाबार (द्राविड़ देश-विशेष) के निवासी लम्बी या ज़रा कम लम्बी खोपड़ी के (Dolichocephalic या Sub-dolichocephalic) हैं। मद्रास प्रान्त के उत्तर भाग (आन्ध्र-देश) के जन ज़रा कम गोल या कम चौड़ी और मध्यम खोपड़ी के (Sub-brachycephalic और Mesaticephalic) अवश्य हैं, परन्तु इसका कारण वहाँ के लम्बी खोपड़ी वाले द्राविड़ों का दक्षिण भाग की अपेक्षा गोल खोपड़ी वाले (Brachycephalic) आर्यों से अधिक मात्रा में समाविष्ट हैं। आर्य-नस्ल के दो भाग थे। एक की खोपड़ी लम्बी, दूसरे की गोल थी। इनके मिश्रण से मध्यम खोपड़ी के आर्य उत्पन्न हुए। काश्मीर, पञ्जाब, राजपूताना तथा मध्य देश में लम्बी खोपड़ी वाले आर्यों की अधिकता रही थी। पश्चिम भारत, दक्षिण भारत तथा पूर्व भारत में जो आर्य गए, वह अधिकांश में गोल खोपड़ी वाले थे। कोलों की खोपड़ी अवश्य गोल थी। इन्हीं कारणों से आज काश्मीर, पञ्जाब, राजपूताना तथा मध्य देश में, जहाँ अधिक अंश में लम्बी खोपड़ी वाले आर्यों का लम्बी खोपड़ी वाले

द्राविड़ों से समावेश हुआ, लम्बी खोपड़ी वालों की संख्या अधिक है। यहाँ मैं सर हर्बर्ट और चन्द जी के लेखों के आधार पर एक कोष्टक देता हूँ :—

| प्रान्त | जाति | प्रति सैकड़ा | | |
|---|---|---|---|---|
| | | लम्बी खोपड़ी वाले | मध्यम खोपड़ी वाले | गोल खोपड़ी वाले |
| पञ्जाब | खत्री | ६४ | ३३ | ३ |
| ” | चूहड़े | ७१ | २८ | १ |
| युक्तप्रान्त | ब्राह्मण | ७४ | २४ | २ |
| ” | भूमिहार | ७३ | २७ | ० |
| ” | कायस्थ | ७८ | २१ | १ |
| ” | ग्वाले(अहीर) | ८० | १६ | १ |
| ” | कुर्मी | ६८ | ३१ | १ |
| ” | चमार | ७८ | २० | २ |
| राजपूताना | राजपूत | ७६ | २० | १ |
| बिहार | मैथिल ब्राह्मण | ७० | २६ | ४ |
| ” | भूमिहार | ३० | ५३ | १७ |
| ” | कुर्मी | ३७ | ४८ | १५ |
| ” | चमार | ४४ | ३५ | २१ |

इसके विपरीत शेष प्रान्तों में जहाँ पहिले लम्बी और गोल खोपड़ी वाले आर्यों, लम्बी खोपड़ी वाले द्राविड़ों और गोल खोपड़ी वाले कोलों का मिश्रण हुआ, अधिकांश में मध्यम और गोल खोपड़ी वाले पाए जाते हैं :—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| बम्बई | नागर ब्राह्मण | १५ | ३६ | ४६ |
| ” | बनिए | १२ | ४६ | ३६ |
| ” | मरहठा | ३७ | ४२ | २१ |
| ” | प्रभू | ११ | ३७ | ५२ |
| ” | चितपावन(ब्राह्मण) | ३१ | ४० | २६ |
| ” | कुन्बी | २६ | ४७ | १४ |
| बङ्गाल | पाश्चात्य वैदिक ब्राह्मण | ६ | ४८ | ४६ |
| ” | अन्य ब्राह्मण | १३ | ५२ | ३२ |
| ” | उत्तरण्डी कायस्थ | ३२ | ५४ | १४ |
| ” | अन्य कायस्थ | ११ | ५० | ३६ |
| ” | नाम शूद्र | २१ | ५१ | २८ |

जैसा कि पहिले लिख चुका हूँ, द्राविड़ देश में जहाँ आर्य-रक्त की मात्रा सब से कम पहुँची, वहाँ अधिकांश लोग लम्बी खोपड़ी के हैं। मुझे शोक है कि इस समय अन्य प्रान्तों की कुछ जातियों के भी नाप नहीं दे सकता। परन्तु श्री० रजनीकान्त का मत खण्डन करने को यही काफ़ी हैं। वह यह विचारें कि पञ्जाब के चूहड़ों में खत्रियों से अधिक, युक्त-प्रान्त के ग्वालों, कायस्थों तथा चमारों में ब्राह्मणों और भूमिहारों से अधिक और बिहार के चमारों में भूमिहारों तथा कुर्मियों से अधिक लम्बी खोपड़ी वाले कहाँ से आए? साथ ही वह युक्त-प्रान्त तथा बिहार के भूमिहारों, कुर्मियों तथा चमारों की खोपड़ियों के नापों पर विचार करें कि इतना भेद क्यों है? वह यह भी सोचें कि बिहार के कुर्मियों में भूमिहारों से अधिक और बङ्गाल के पाश्चात्य वैदिकों में अन्य ब्राह्मणों से कम लम्बी खोपड़ी वाले क्यों हैं?

अब रहे अन्य चिन्ह। यह सत्य है कि आर्य गौर रङ्ग, लम्बे आकार तथा लम्बी, खड़ी व पतली नाक वाले थे। द्राविड़ श्याम रङ्ग, मध्यमाकार और बड़ी तथा चौड़ी नाक वाले और कोल श्याम रङ्ग, छोटे आकार तथा छोटी और चपटी नाक वाले थे।

सर हर्बर्ट ने जो कुछ कहा था, वह अधिक संख्या के वास्ते कहा था। पश्चिम भारत के सम्बन्ध में, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, वैद्य तथा चन्द ने उसका सतर्क खण्डन करके सिद्ध कर दिया है कि वहाँ के निवासी आर्य-द्राविड़ हैं। शक लोग वहाँ ईसा के जन्म के बाद पहुँचे थे। उस समय वह देश पूर्णतया आर्य-द्राविड़ों से आबाद था। महाभारत तथा पुराणों में आनर्तों, आनुपों, यादवों, ( हयहयों, वैदर्भों, वार्ष्णेयों, सतवतों, भोजों, चेद्यों तथा अन्धकों ) इत्यादि आर्य क्षत्रियों के बहुत पहिले वहाँ जाकर बसने के अनेक प्रमाण पाए जाते हैं। शक लोगों ने पश्चिमोत्तर भारत को उससे पहिले विजय किया था। और यह स्पष्ट है कि वहाँ से अपने प्राचीन स्थान की अधिक निकटता के कारण वह वहाँ पश्चिम भारत की अपेक्षा अधिक संख्या में आए होंगे। परन्तु सर हर्बर्ट के मतानुसार पश्चिमोत्तर भारत के निवासियों पर उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा और वह वहाँ के आर्यों में मिल कर लोप हो गए। इस दशा में तो यही अधिक सम्भव है कि पश्चिम भारत में भी वह बिना अपनी नस्ल

का प्रभाव डाले वहाँ के आर्य-द्राविड़ निवासियों में मिल कर लोप हो गए हों। परन्तु सर हर्बर्ट ने यह नहीं कहा कि दक्षिण भारत के ब्राह्मण द्राविड़ और पश्चिम भारत के ब्राह्मण शक-द्राविड़ नस्लों के हैं। इसके विपरीत बहुत से लेखक भारत के समस्त ब्राह्मणों को सजातीय, पिता की ओर से एक नस्ल का और आर्य मानते हैं। कृपया पादरी शैरिङ्ग की "Hindu Tribes and Castes Vol. I" देखिए।

आर्यों में दोनों प्रकार की खोपड़ियाँ पाए जाने से इसका विचार तो छोड़िए और विचारिए कि क्या समस्त पञ्च-गौड़ गौर वर्ण, लम्बे आकार तथा लम्बी-पतली और खड़ी नाक के हैं? क्या उनमें और विशेषकर सारस्वतों से अन्यत्र शेष चार गौड़ों में श्याम वर्ण, मध्यम या छोटे आकार, बड़ी और चौड़ी तथा छोटी और चपटी नाक वाले काफ़ी संख्या में नहीं पाए जाते? तनिक सारस्वतों और बङ्गाली गौड़ों, कान्यकुब्जों तथा उत्कलों का मुक़ाबला कीजिए। फिर मध्य देश के गौड़ों और कान्यकुब्जों का बङ्गाली गौड़ों और कान्यकुब्जों से भी मिलान कीजिए, और बताइए कि इनमें इतना भेद क्यों है? उधर पञ्च-द्राविड़ों को भी देखिए। उनमें सब के सब ही श्याम रङ्ग, मध्यमाकार तथा बड़ी और मोटी नाक के नहीं हैं। उन लोगों में भी गौर वर्ण, लम्बा आकार और लम्बी-पतली और खड़ी नाक वाले काफ़ी संख्या में पाए जाते हैं। सत्य तो यह है कि गुर्जरों, चित्तपावन महाराष्ट्रों और नम्बूद्री द्राविड़ों में आर्य-नस्ल के चिह्न गौड़ों, कान्यकुब्जों, मैथिलों और उत्कलों से कम नहीं, अधिक ही पाए जाते हैं। शक लोग मङ्गोल नस्ल के थे। आपने नैपाली, सिक्कमी, भूटिए, आसामी, ब्राह्मी, तिब्बती, चीनी, जापानी आदि में से किसी न किसी को अवश्य देखा होगा। क्या आपका कभी किसी गुर्जर, महाराष्ट्र या करनाटकी ब्राह्मण को देख कर उसके मङ्गोलियन होने का विचार हुआ है? सत्य तो यह है कि भारत के ब्राह्मणों में आर्य-नस्ल का रक्त सब से अधिक सारस्वतों में है। कारण कि यह लोग भारत में आर्यों के सब से प्राचीन निवास-स्थान में रहते चले आ रहे हैं। फिर ज्यों-ज्यों आप आगे चलते हैं, त्यों-त्यों पूर्व की ओर द्राविड़ों और कोलों के रक्त की और दक्षिण की ओर द्राविड़ों के रक्त की मात्रा अधिक बढ़ती जाती है। यहाँ तक कि अन्त में अनार्य-रक्त की मात्रा बहुत बढ़ गई है। और आज सारस्वतों, बङ्गालियों तथा उत्कलों को और सारस्वतों और द्राविड़ों को एक ही नस्ल का पहचानना कठिन हो गया है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि आदि में सबके पूर्वज एक ही आर्य-नस्ल के थे।

फिर यहाँ भी प्रश्न उठता है कि यदि आर्य-ब्राह्मणों की सन्तान वहाँ नहीं गई तो पश्चिम तथा दक्षिण भारत में आर्य-ब्राह्मण धर्म कैसे पहुँचा? वर्तमान महाभारत, रामायण तथा पुराणों में जो दक्षिण में आर्य नामधारी ब्राह्मण ऋषियों के आश्रमों के वर्णन हैं, वह कहाँ से आए? महर्षि अगस्त्य के विन्ध्या पार जाकर उत्तर भारत में वापस न लौटने की गाथा तथा दक्षिण भारत में उनके कई आश्रम बताए जाने का क्या अर्थ हो सकता है? वर्तमान गुजरात में नर्बदा-तट पर जो भृगुक्षेत्र या भृगुकच्छ है, वह कहाँ से आया? दक्षिण भारत में जो परशुराम और मार्कण्डेय, भार्गव आदि ऋषियों के स्थान हैं, वह कैसे उत्पन्न हुए?

आप आर्य-अनार्य रक्त-विनिमय इतनी प्रचुर मात्रा में नहीं मानते कि जिससे मूल नस्लों का वास्तविक रूप बिगड़ा हो। कृपया ज़रा आँखें खोल कर गौड़ों, कान्यकुब्जों, मैथिलों और उत्कलों को देखिए और उनका सारस्वतों और विशेष कर काश्मीरी ब्राह्मणों से मुक़ाबला कीजिए और बतलाइए कि क्या उनके स्वरूपों में इतना भेद नहीं है कि साधारणतया उनका एक ही आर्य-जाति का पहिचानना कठिन है? क्या गौड़ों-कान्यकुब्जों, मैथिलों, बङ्गाली गौड़ों और कान्यकुब्जों तथा उत्कलों में श्याम रङ्ग, मध्यम और छोटा आकार, बड़ी, मोटी, छोटी और चपटी नाक आदि चिह्न काफ़ी तथा पूर्व की तथा अधिक बढ़ती हुई मात्रा में नहीं पाए जाते? बङ्गाली ब्राह्मण अपने को अधिकांश में कान्यकुब्ज और अल्प संख्या में गौड़ बताते हैं। विचारिए कि उनकी खोपड़ियों में इतना अन्तर क्यों है? बङ्गाल में जाकर कान्यकुब्ज और गौड़ों में मध्यम और गोल खोपड़ी वाले इतने अधिक कैसे हो गए? दूसरी ओर पञ्जाब, राजपूताना और मध्य देश के शूद्रों और अछूतों को देखिए और विचारिए कि उन लोगों में कुछ अंश में गौर वर्ण, लम्बा आकार और लम्बी, पतली तथा खड़ी नाक आदि चिह्न कहाँ से आए?

## ४—क्षत्रिम गोत्र और प्रवर

यह सत्य है कि शक और हूण जातियों के लोग भारत में आकर और यहाँ के धर्मों ( Religions ) में से किसी न किसी को ग्रहण करके हिन्दू-समाज में सम्मिलित हो गए ( गूजरों के विदेशी होने में बहुत कुछ सन्देह है ) और उनके राज्य-कुल क्षत्रिय मान लिए गए। इसी प्रकार यह भी सत्य है कि भारत की अनार्य जातियों के कुछ राज्य-वंश ( नाग, तक्षक इत्यादि ) ब्राह्मणिक धर्म को ग्रहण करने पर क्षत्रिय मान लिए गए थे। और दोनों आर्य क्षत्रियों से विवाह सम्बन्ध करके पूर्णतया उनमें मिल गए। परन्तु मि० विन्सेण्ट स्मिथ आदि का यह मत कि परिहार, चन्देल, राठौड़, सीसोदिया, कछवाहा इत्यादि भारत के लगभग सभी विख्यात राजपूत वंश अनार्य हैं, अभी तक सिद्ध नहीं हुआ है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध हिन्दू ऐतिहासिक रावबहादुर सी० वी० वैद्य ने अपनी पुस्तक "History of Medieval Hindu India Vol. II" में इसका सतर्क विरोध करके सिद्ध किया है कि भारत के प्रसिद्ध राजपूत-वंश बहुधा आर्य क्षत्रियों की सन्तान हैं। आश्चर्य है कि इस विषय पर तो श्री० रजनीकान्त ने स्मिथ-जैसे यूरोपियन लेखकों का मत बिना-विचारे ग्रहण कर लिया, परन्तु रामायण तथा महाभारत के सम्बन्ध में उनके मतों की अवहेलना करते प्रतीत होते हैं।

जान पड़ता है कि श्री० रजनीकान्त ने वैदिक साहित्य के "पुरोहित प्रवरोराज्ञाम्" और "मिताक्षरा" में विज्ञानेश्वर की इस व्याख्या को नहीं पढ़ा। नहीं तो उनको पता लग जाता कि राजन्यों और राजपूतों के ब्राह्मणिक गोत्र-प्रवर उनके आत्मीय न होकर, उनके किसी न किसी समय के पुरोहितों के हैं। दोनों के पुरोहित आर्य-ब्राह्मण-ऋषियों की सन्तान होने से गोत्र-प्रवरों की समानता आश्चर्यजनक नहीं है।

यह तो सत्य है कि कई एक राजपूत वंशों की वंशावलियाँ अशुद्ध प्रमाणित हुई हैं और कुछ एक की जाली भी। परन्तु इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि परिहार, चौहान, सीसोदिया, परमार, कछवाहा, राठौड़, चन्देल आदि वंश सब अनार्य हैं। उनकी आकृति, रूप, रङ्ग आदि उन्हीं के प्रान्तों के ब्राह्मणों से भिन्न नहीं हैं। उनमें भी अनार्य माताओं का प्रभाव अवश्य पाया जाता है। परन्तु लगभग उतनी ही मात्रा में, जितनी कि गौड़ कान्यकुब्ज आदि ब्राह्मणों में। यदि वह द्राविड़, कोल, शक, हूण आदि जातियों के होते तो उनमें द्राविड़ और मङ्गोल नस्लों के चिन्ह अधिक मात्रा में पाए जाते। देखिए आपके आधार पर सर हर्बर्ट रिज़ले ने राजपूतों के केन्द्र राजपूताने को लगभग शुद्ध आर्यों का निवास-स्थान बताया है और मध्य देश को आर्य-द्राविड़ों का। याद रखिए कि अङ्गरेज़ हिन्दुओं पर राज्य करने से हिन्दू नहीं बन जाते। इसी प्रकार गुर्जर जनपद पर राज्य करने से परिहार भी गुर्जर जाति के नहीं बन सकते। इसी प्रकार केवल शकों और हूणों के पतन के पश्चात् राजपूत नाम से विख्यात होने से ही प्राचीन क्षत्रियों की सन्तान शक और हूण नहीं बन सकती।

परन्तु यदि आपकी धारणा को ठीक भी मान लिया जावे, तो भी उससे केवल ब्राह्मणों के किसी भी आवान्तर भेद या उपभेद के गोत्र-प्रवरों के जाली होने की सम्भावना ही मानी जा सकती है। बिना प्रमाण मिले यह नहीं कहा जा सकता कि वह निश्चय ही जाली है। यदि केवल कुछ राज्य-वंशों की वंशावलियाँ जाली या अशुद्ध सिद्ध हो जाने के कारण पञ्च-द्राविड़ ब्राह्मणों के गोत्र-प्रवर जाली माने जा सकते हैं, तो उसी तर्क से पञ्च-गौड़ों तथा स्वयं कान्यकुब्जों के भी गोत्र-प्रवर और वंशावलियाँ जाली माननी चाहिए। परन्तु जिस प्रकार के प्रमाणों से वह वंशावलियाँ जाली या अशुद्ध हुई हैं, उसी प्रकार के पक्के सबूत मिले बिना कोई भी विद्वान औरों को वंशावलियों और गोत्र-प्रवरों को जाली नहीं मानेगा। कृपया प्रमाण देकर सिद्ध कीजिए कि वह जाली हैं!

दूसरी ओर निम्न-लिखित बातें विचारणीय हैं :—

( १ ) वह लोग उन गोत्र-प्रवरों को अपना मानते हैं।

( २ ) अब तक पाए हुए प्राचीन पुस्तकों, लेखों, शिला-लेखों और ताम्र-पत्रों इत्यादि में जहाँ कहीं भी किसी पञ्च-द्राविड़ ब्राह्मण के गोत्र-प्रवरों का वर्णन है, वह सब ज्ञात आर्य ऋषियों के नाम से हैं, अतः सिद्ध हो

जाता है कि जहाँ तक पता लगता है, उनके पूर्वज सदैव आर्य ऋषि ही माने जाते थे।

( ३ ) ब्राह्मणों में संस्कारों के समय गोत्रोच्चारण और यज्ञों में प्रवरों के वरण की प्रथा अति प्राचीन काल से चली आती है। अतः उनका याद रखना या रहना सहज था।

( ४ ) प्राचीन ग्रन्थों में आर्य ऋषियों की सन्तान के पहले सप्तसिन्धव और फिर आर्यावर्त से जाकर अनार्यों के देशों में निवास करने के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। समस्त भारतवर्ष में वैदिक और ब्राह्मणिक धर्म उन्हीं के द्वारा फैला था। अतः वहाँ के ब्राह्मणों को आर्य ऋषियों की सन्तान मानना भूल नहीं है।

( ५ ) गत १,२०० वर्षों में पञ्च-द्राविड़ों में जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य, नाथमुनि, यामुनाचार्य, मधुआचार्य, निम्बार्काचार्य, माधवाचार्य, सायणाचार्य आदि विख्यात ब्राह्मण हुए हैं। उनमें से कइयों के गोत्र-प्रवरों का पता चलता है। वह पञ्च-गौड़ों के से ही हैं। क्या यह माननीय है कि उन्होंने अपने गोत्र-प्रवर जाली बनाए थे?

आपस्तम्बीय सूत्र-चरण के स्थापक को, जिसके वर्ग-उपनाम से वह चरण विख्यात है, आन्ध्र देश का निवासी माना जाता है। अपस्तम्ब आर्य नाम है।

( ६ ) यदि उनके पूर्वज भृगु-अङ्गिरा से अन्य कोई अनार्य पुरुष थे, जिनको ब्राह्मणोचित कर्म करने के कारण ब्राह्मण मान लिया गया था, तो उन्होंने अपने गोत्र-प्रवरों के नाम उन्हीं अनार्य पूर्वजों के नाम पर क्यों नहीं रक्खे? वैश्वामित्रों, आष्टिषेण, वैन्य, वैतहव्य और वाद्र्यश्व भार्गवों तथा गार्ग्य, राथीतर, मौद्गल्य, वैष्णव वृद्ध, हारित ( कौत्स ) काण्व और सांकृत्य-आङ्गिरसों, जिनके पूर्वजों का पहिले राजन्य होना सर्वमान्य है, उन्होंने ब्राह्मण बन कर अपने राजर्षि पूर्वजों को नहीं भुलाया और वह उनको अपने प्रवरों में गिनते हैं। अतः कोई कारण नहीं कि यदि पञ्च-द्राविड़ों के पूर्वज अनार्य ऋषि होते तो वह उनको भुला कर जाली आर्य-गोत्र-प्रवर ग्रहण करते।

( ७ ) आश्वलायन, बौधायन, कात्यायन, लौगाक्षी और आपस्तम्ब श्रौतसूत्रों के परिशिष्ट भागों तथा मत्स्य-पुराण में समस्त भारत के ब्राह्मणों के गोत्र-प्रवरों का वर्णन माना जाता है। उनमें सब गोत्रों का वर्णन भृगु, अङ्गिरा आदि केवल ७ शीर्षकों में है। यदि इन सात आर्य-ऋषियों से भिन्न कोई और अनार्य पुरुष भी ब्राह्मणों के आदि पूर्वज होते तो उनकी सन्तान के गणों, पक्षों, प्रवरों और वर्गों आदि का वर्णन उनके ही नामों द्वारा अलग होता और समस्त ब्राह्मणों को भृगु, अङ्गिरा आदि केवल सात ऋषियों को सन्तान-हीन बताया जाता। "विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः" आदि श्लोक में जमदग्नि भृगु की और भरद्वाज और गौतम अङ्गिरा की सन्तान विख्यात हैं। यह कहा जा सकता है कि जैसे ऋष्टिषेण, वेन आदि राजन्यों की सन्तान भृगुमूल-गोत्र में, और गर्ग, रथीतर, मुद्गदल आदि की सन्तान अङ्गिरामूल-गोत्र में ब्राह्मण बन कर आश्रित हुई, उसी प्रकार अनार्य पूर्वजों की सन्तान भी ब्राह्मण बन कर सात प्राचीन आर्य गोत्रों में से किसी न किसी में आश्रित हो गई होगी। परन्तु इसके कोई प्रमाण नहीं मिलते। क्षत्रियों में से विश्वामित्र ने तो अलग मूल गोत्र स्थापित किया था। अन्य ने भार्गव और आङ्गिरस मूल गोत्रों में पृथक् गण और आष्टिषेणों ने जामदग्न्यगण में तथा गार्ग्यों ने भारद्वाजगण में पृथक् पक्ष स्थापित किए थे। परन्तु ब्राह्मणों के गणों और पक्षों में कोई भी अनार्य सिद्ध नहीं होता। वर्गों की बाबत निश्चय होना असम्भव है। परन्तु बहुत से एक ही नाम के वर्ग पञ्च-गौड़ों और पञ्च-द्राविड़ों में पाए जाते हैं, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि उन वर्गों के दोनों के जन आर्य-ऋषियों की सन्तान हैं। प्रवर ऋषि केवल मन्त्रार्षि ही हो सकते थे। चारों वेद आर्यों के दक्षिण भारत से परिचित होने के पूर्व अपने वर्तमान रूप में आ चुके थे। अतः प्रवर ऋषियों में से किसी का भी दक्षिण भारत का निवासी होना असम्भव है।

ऐसी दशा में जब तक आप प्रत्यक्ष प्रमाणों से पञ्चद्राविड़ों के गोत्र-प्रवरों को कृत्रिम वा जाली साबित न कर दें, आपकी धारणा को सत्य नहीं माना जा सकता।

( शेष फिर )

शीघ्रता कीजिए ! केवल थोड़ी सी प्रतियाँ शेष हैं !!

# बाल-रोग-विज्ञानम्

इस महत्वपूर्ण पुस्तक के लेखक पाठकों के सुपरिचित, 'विष-विज्ञान', 'उपयोगी चिकित्सा', 'स्त्री-रोग-विज्ञानम्' आदि-आदि अनेक पुस्तकों के रचयिता, स्वर्ण-पदक-प्राप्त प्रोफ़ेसर श्री० धर्मानन्द जी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य हैं, अतएव पुस्तक की उपयोगिता का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। आज भारतीय स्त्रियों में शिशु-पालन सम्बन्धी समुचित ज्ञान न होने के कारण सैकड़ों, हज़ारों और लाखों नहीं, किन्तु करोड़ों बच्चे प्रति वर्ष अकाल मृत्यु के कलेवर हो रहे हैं। इसमें बालक-बालिका सम्बन्धी प्रत्येक रोग, उनका उपचार तथा ऐसी सहज घरेलू दवाइयाँ बतलाई गई हैं, जो बहुत कम ख़र्च में प्राप्त हो सकती हैं। इसे एक बार पढ़ लेने से प्रत्येक माता को उसके समस्त कर्त्तव्य का ज्ञान सहज ही में हो सकता है और वे शिशु-सम्बन्धी प्रत्येक रोग को समझ कर उसका उपचार स्वयं कर सकती हैं। मूल्य केवल २॥) रु० !

# मालिका

यह वह मालिका नहीं, जिसके फूल मुरझा जायँगे ; इसके फूलों की एक-एक पङ्खुरी में सौन्दर्य है, सौरभ है, मधु है, मदिरा है। आपकी आँखें तृप्त हो जायँगी। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी करुण-रस की उमड़ती हुई धारा है।

इन कहानियों में आप देखेंगे मनुष्यता का महत्व, प्रेम की महिमा, करुणा का प्रभाव, त्याग का सौन्दर्य तथा वासना का नृत्य, मनुष्य के नाना प्रकार के पाप, उसकी घृणा, क्रोध, द्वेष आदि भावनाओं का सजीव चित्रण। आप देखेंगे कि प्रत्येक कहानी के अन्दर लेखक ने किस सुगमता और सचाई के साथ ऊँचे आदर्शों की प्रतिष्ठा की है। कहानियों की घटनाएँ इतनी स्वाभाविक हैं कि एक बार पढ़ते ही आप उसमें अपने परिचितों को ढूँढ़ने लगेंगे। पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल, मधुर तथा मुहावरेदार है।

सजिल्द, तिरङ्गे प्रोटेक्टिङ्ग कवर से सुशोभित ; मूल्य लागत-मात्र केवल ४) ;

# देवदास

यह बहुत ही सुन्दर और महत्वपूर्ण सामाजिक उपन्यास है। वर्तमान वैवाहिक कुरीतियों के कारण क्या-क्या अनर्थ होते हैं ; लड़के-लड़कियों का जीवन किस प्रकार नष्ट होता है ; विविध परिस्थितियों में पड़ने पर मनुष्य के हृदय में किस तरह नाना प्रकार के भाव उदय होते हैं और वह उद्भ्रान्त-सा हो जाता है—इसका जीता-जागता चित्र इस पुस्तक में खींचा गया है। छपाई-सफ़ाई अत्यन्त सुन्दर ; भाषा सरल एवं मुहावरेदार है। मूल्य केवल लागत-मात्र २) ; स्थायी ग्राहकों से १॥) नवीन संस्करण हाल ही में प्रकाशित हुआ है।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

लाहौर के यूनाईटेड प्लेयर्स कॉरपोरेशन की सुप्रसिद्ध सिनेमा-स्टार—कुमारी रुख़िया ख़ातून—आप भारतीय नृत्य-कला में बहुत प्रवीण हैं और बहुत अधिक भ्रमण भी कर चुकी हैं।

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

नूतन ! मौलिक !! नवीन !!!

# प्राणेश्वरी

## ( नाटक )

[ ले० डॉक्टर धनीराम जी 'प्रेम' ]

ख्यातनामा कहानी-लेखक डॉ० धनीराम जी 'प्रेम' का यह हास्यरस-पूर्ण नाटक सिर से पैर तक मौलिक है। लन्दन के सैकड़ों नाटकों के व्यक्तिगत अनुभव के बाद यह नाटक लिखा गया है। अङ्गरेज़ी के Musical Comedy ( सङ्गीतमय सुखान्त नाटक ) की तरह का अभी तक कोई नाटक हिन्दी में नहीं लिखा गया था। डॉक्टर साहब ने इसी दिशा में अपनी सफल लेखनी उठाई है। यह स्टेज पर खेलने लायक़ है। पचीसों सुन्दर-सुन्दर गाने हैं, जिन्हें पढ़ कर प्रत्येक सहृदय सङ्गीत-प्रेमी मुग्ध हो जायगा। बातचीत इतनी मनोहर, हास्यपूर्ण, मनोरञ्जक और मौलिक है कि पढ़ कर हँसते-हँसते पेट में बल न पड़ जाय तो नाम नहीं। भाव, भाषा, दृश्य, सबकी दृष्टि से एकदम अनूठी पुस्तक है। हिन्दी में अभी तक इस तरह की कोई पुस्तक नहीं निकली। अद्भुत है, अद्वितीय है, विचित्र है, सुचित्र है। शीघ्र ही मँगा लीजिए, नहीं तो दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा करनी होगी।

व्यवस्थापिका :
'चाँद' कार्यालय
चन्द्रलोक
इ-ला-हा-बा-द

# पर्दा

[ 'रतन' ]

माञ्चल के वक्षस्थल पर उसका घर था। चारों ओर शैल-राशि एक घाटी को घेरे हुई थी। उसी घाटी में एक ओर उसका मकान था। ग्राम बड़ा नहीं था, बहुत ही छोटा था। कुछ झोपड़ियाँ थीं, और कुछ पक्के मकान। उसका मकान पक्का था और दुमञ्ज़िला। ऊपर के भाग में उसका कमरा था। सड़क की ओर नहीं, पर्वत की ओर उसकी खिड़की थी। वह बहुधा उस खिड़की के निकट एक कुर्सी डाल कर बैठती और घण्टों पीछे के दृश्य को देखा करती थी। वह दृश्य कितना आकर्षक था, कितना मनोरम, कितना भावोत्पादक। सामने पर्वत वनस्पतियों का हरा शाल ओढ़े खड़ा था। इधर-उधर छोटे-छोटे वृक्षों के झुरमुट ऐसे प्रतीत होते थे, मानो वे शाल पर काढ़े हुए बेल-बूटे हों। उन्हीं झुरमुटों में कभी-कभी कोयल आकर अपना मस्त राग सुना जाती थी। एक ओर एक झरना झर-झर करता हुआ बहता था, बिना ठहरे, बिना विश्राम लिए। कभी-कभी वायु चलती तो उसकी सायँ-सायँ का नाद और झरने का शब्द, यह मिल कर उसके हृदय में ऐसा भाव उत्पन्न कर देते, मानो प्रकृति उसे सङ्गीत सुना रही हो। उस सङ्गीत में ताल-स्वर न थे, न था उसमें समय का वर्गीकरण। परन्तु जब भी वह उस शब्द को, उस नाद को सुनती, उसे वह अपना-सा, परिचित, सुना हुआ प्रतीत होता था। जब सन्ध्या होती और भगवान भास्कर राकेश के लिए अपना दफ़्तर छोड़ कर जाने लगते तो उस स्थल का दृश्य कुछ और ही रूप धारण कर लेता। पर्वत की चोटी के ऊपर सन्ध्या के लाल-लाल बादल ऐसे विदित होते थे, मानो एक लाल चद्दर उसके ऊपर तान दी गई हो। उन लाल-लाल बादलों की प्रतिच्छाया उस छोटे से झरने में गिरती तो ऐसा विदित होता कि झरना इठलाते हुए शैल की शोख़ी देख कर रक्त-वर्ण हो गया है। वह पर्वत और झरने की इस प्रतियोगिता को देखती और उसका हृदय नाच उठता। वह बड़ी भावुक थी।

२

सन्ध्या का वही मनोहर समय था। वह खिड़की से सन्ध्या के डूबते हुए सूर्य की ओर देख रही थी।

'कल्याणी !'—नीचे से किसी ने उसे पुकारा।

'कौन है ?'—उसने पूछा।

'माँ।'

'क्यों, माँ, क्या है ?'

'गाय अभी घर लौट कर नहीं आई, बेटी ! जा, तनिक देख तो आ।'

'अभी जाती हूँ, माँ !'

वह नीचे उतरी। धीरे-धीरे उसी ओर चली, जिधर झरना बह रहा था। कुछ देर तक वह उस दृश्य को देखती रही। फिर उसे गाय का ध्यान आया। उस दृश्य को छोड़ वह आगे बढ़ी, जिधर पेड़ों के छोटे-छोटे झुरमुट बने हुए थे।

'बसन्ती, बसन्ती !' कह कर वह चिल्लाने लगी। बसन्ती गाय का नाम था। वह झुरमुट की ओर मुख किए चिल्ला ही रही थी कि पीछे से किसी ने कहा—"मैं हाज़िर हूँ।" वह चौंक पड़ी। उसे वहाँ किसी के होने की आशा न थी। तेज़ी से उसने अपना मुख झरने की ओर फिराया। एक नवयुवक वहाँ खड़ा था।

'मैं हाज़िर हूँ।'—नवयुवक ने फिर कहा।

'इसका क्या अर्थ ?'—कल्याणी ने पूछा।

'आपने मुझे बुलाया था।'

'आपको ?'

'हाँ।'

'और मैंने बुलाया था ?'

'हाँ।'

कल्याणी हँसने लगी।

'आप हँस रही हैं?'

'हाँ।'

'क्यों?'

'आपकी बात पर।'

'मैंने क्या बात कह दी?'

'यही कि मैंने आपको बुलाया था।'

'यह सत्य है।'

'सत्य है?'

'हाँ। आप 'बसन्ती' कह कर पुकार रही थीं।'

'बसन्ती आपका नाम है?'

'हाँ।'

'और बसन्ती मेरी गाय का भी नाम है। मैं उसी को पुकार रही थी।'

दोनों ही इस ग़लती पर हँसे।

'क्षमा कीजिएगा, आपको मैंने व्यर्थ ही कष्ट दिया।'

'क्षमा तो मुझे माँगनी चाहिए। न मेरा नाम बसन्ती होता, न यह भूल होती। ख़ैर, मुझे हर्ष ही है कि मैं आपके दर्शन कर सका।'

'अब आज्ञा दीजिए। गाय को खोजना है!'

'मैं सहायता करूँ?'

'नहीं, आपको कष्ट करने की आवश्यकता न होगी। मैं जानती हूँ, वह कहाँ मिलेगी।'

कुछ मिनटों में ही कल्याणी गाय को एक झुरमुट में से निकाल कर लाई। उधर आते ही उसके कानों में सङ्गीत की ध्वनि पड़ी। कहीं से बेला पर गाए हुए राग की ध्वनि आ रही थी। कल्याणी को सङ्गीत से बड़ा प्रेम था। कहीं भी सङ्गीत की ध्वनि सुनाई देती, वहीं उसका हृदय खिंचा हुआ चला जाता। सङ्गीत और उसके हृदय में चुम्बक और सुई का सा सम्बन्ध था। उसने गाय को घर के मार्ग पर छोड़ दिया और धीरे-धीरे आप उस ओर चली, जिधर से सङ्गीत की ध्वनि आ रही थी। एक पेड़ के झुण्ड की आड़ में से उसने देखा कि बसन्ती उधर बैठा हुआ बेला बजा रहा है और एक गाना गा रहा है। उस गान का प्रथम चरण था—

आओ, आओ, हे कल्याणी!

इसी चरण को बसन्ती बार-बार गाकर गलेबाज़ी कर रहा था। उसका स्वर बड़ा मधुर था और गाने का ढङ्ग बड़ा हृदयग्राही। वह वहाँ से घर की ओर न जा सकी। बढ़ते-बढ़ते बेला के मधुर स्वरों में तल्लीन हुई वह बसन्ती के ठीक पीछे जा खड़ी हुई। गान समाप्त हुआ। बसन्ती ने बेला नीचे रक्खा।

'मैं हाज़िर हूँ!' कल्याणी ने धीरे से कहा। बसन्ती ने चौंक कर पीछे देखा।

'इसका क्या अर्थ?' उसने पूछा।

'आपने मुझे बुलाया था?'

'आपको?'

'हाँ।'

'मैंने बुलाया था?'

'हाँ।'

बसन्ती हँसने लगा।

'आप हँस रहे हैं।'—कल्याणी बोली।

'हाँ।'

'क्यों?'

'आपकी बात पर।'

'मैंने क्या बात कह दी?'

'यही, कि मैंने आपको बुलाया था।'

'सत्य है।'

'सत्य है?'

'हाँ, आप कह रहे थे, 'आओ, आओ, हे कल्याणी!'

'कल्याणी आपका नाम है?'

'हाँ।'

'परन्तु मैं तो यह गान गा रहा था।'

'गान?'

'हाँ।'

'तब तो मेरी यह भूल थी।'

'यह भूल भी आपने भूल कर कर दी। जान-बूझ कर ऐसी भूल करना तो आपके लिए, शायद, कठिन ही होगा।'

'कष्ट के लिए क्षमा कीजिए।'

'कष्ट तो मैंने आपको दिया।'

दोनों चुप हो गए। कल्याणी खड़ी रही, बसन्ती भी खड़ा हो गया। कभी वह उसकी ओर देखती, कभी वह उसकी ओर देखता, और कभी दोनों एक-दूसरे की ओर, साथ ही साथ, देख लेते—एक क्षण के लिए, फिर

तुरन्त ही उनकी दृष्टि नीचे को हो जाती। आँखें जब इस काम में लगी थीं, हाथ और पैर के नख भी ख़ाली न थे। पैरों के नख नीचे पड़ी हुई कङ्कड़ियों को कुरेद रहे थे। हाथों के नख अपने आप ही को या अपने पड़ोसियों को ही नोच रहे थे।

'बैठिएगा न ?'—बसन्ती ने कहा और यही बात ठीक उसी समय कल्याणी के मुख से निकली। दोनों हँसने लगे और हँसते हुए एक ओर घास पर बैठ गए।

३

'कल्याणी !'

'बसन्ती !'

पन्द्रह मिनटों के वार्तालाप के बाद ही दोनों एक-दूसरे का नाम लेकर पुकारने लगे थे। दोनों में इतनी आत्मीयता पैदा हो गई थी।

'आज का दिन मेरे लिए कितना सुखप्रद है।'—बसन्ती बोला।

'और मेरे लिए ?'

'मैं उत्तर दे सकता हूँ ?'

'क्यों नहीं ?'

'यह बहुत शीघ्र हो जायगा।'

'हृदय को पढ़ने के लिए बहुत समय चाहिए ?'

'बहुत।'

'तो कदाचित् आपके हृदय को मैं ठीक रूप से नहीं पढ़ सकी हूँ।'

'मेरे हृदय की दूसरी बात है।'

'सादा हिसाब है ?'

'बिल्कुल।'

'यही इधर भी है।'—कल्याणी बोली।

'कैसा विस्मय है ?'

'क्या ?'

'यही, कि हम आज ही मिले हैं और हममें इतनी समानता है।'

कल्याणी ने कुछ न कहा।

बसन्ती भी चुप रहा। उसने वहाँ जमी हुई घास में से एक तिनका तोड़ा और उसे कल्याणी के कान में धीरे से फिराने लगा। गुदगुदी लगने के कारण कल्याणी चौंक पड़ी। बसन्ती हँसने लगा। कल्याणी उठी।

'कहाँ ?'—बसन्ती ने पूछा।

'घर को।'

'इतना शीघ्र ?'

'माँ प्रतीक्षा कर रही होंगी।'

'कुछ देर और बैठो।'

'क्या करोगे ?'

'बातें।'

'अब तक बातें ही तो करते रहे हैं।'

'बातें ऐसी चीज़ हैं कि जितना ही उन्हें करो, उतनी ही इच्छा उनके और करने की होती है। बातों का भण्डार अनन्त प्रतीत होता है।'

'क्या बातें करोगे ?'

'कुछ तुम्हारे विषय में और कुछ अपने विषय में।'

'पहले अपने विषय में करो।'

'नहीं, तुम्हारे।'

'नहीं, तुम्हारे।'

'तुम्हारे।'

'तुम्हारे।'

'अच्छा, कुछ तुम्हारे विषय में, कुछ मेरे विषय में।'

'बताओ कुछ अपने विषय में तब।'

'नाम तो मेरा जानती ही हो।'

'उसे नहीं भूल सकती।'

'मुझे सङ्गीत से बड़ा प्रेम है।'

'वह भी नहीं भूल सकती।'

'मैं एक्टर हूँ।'

'एक्टर ?'

'हाँ, मैंने अब तक कई ड्रामों में पार्ट किया है।'

'सङ्गीत और एक्टिङ्ग ! कला का कितना सुन्दर सम्मिश्रण है।'

'पसन्द है ?'

'पसन्द होने ही से क्या होता है ?'—कल्याणी ने एक आह भर कर कहा।

'सङ्गीत तुम्हें भी प्यारा है ?'

'बहुत।'

'कभी अभ्यास किया है ?'

'अधिक नहीं।'

'एक्टिङ्ग का भी शौक़ है ?'

'है, परन्तु अवसर कहाँ मिलता है ?'

'जहाँ इच्छा है, वहाँ साधन हो ही जाता है।' वह सोचने लगी। उसे इच्छा थी। साधन मिल सकेगा उसे? वह इन बातों पर विचार कर रही थी और बसन्ती उसकी ओर देख रहा था। इतने ही में आवाज़ आई—कल्याणी!

'माँ पुकार रही हैं।'—कल्याणी ने बसन्ती की ओर देख कर कहा।

बसन्ती उदास हो गया—कुछ बोला नहीं।

'माँ पुकार रही हैं।'—कल्याणी ने फिर कहा।

'कान यह सुनना नहीं चाहते, कल्याणी!'

'क्यों इतने उदास होते हो?'

'तुम चली जाओगी।'

'केवल रात भर के लिए।'

'कल फिर मिलोगी?'

'हाँ।'

'चलो, घर तक पहुँचा दूँ।'

'घर तक क्या पहुँचाओगे, सामने ही तो घर है।'

'इससे क्या, दो-चार मिनटें तुम्हारे साथ और कट जायँगी।'

'नहीं, माँ तुम्हें मेरे साथ देखना पसन्द न करेंगी।'

'क्यों?'

'उनकी इच्छा है। इसे समझने की आवश्यकता नहीं।'

'अच्छा, फिर मैं कुछ देर यहीं बैठूँगा।'

'क्या करोगे?'

'गाऊँगा।'

'क्या?'

'आओ, आओ, हे कल्याणी!'

'नहीं, ऐसा न करना।'

'क्यों?'

'कहीं ऐसा न हो कि मैं घर से निकल कर इधर दौड़ी हुई आऊँ।'

'होगा ऐसा?'

'हाँ।'

'तो मैं गाऊँगा।'

'नहीं, ऐसा न करना।'

'अच्छा, मैं तुम्हें देखता हुआ अपना रूमाल हिलाता रहूँगा, जब तक कि तुम आँख से ओझल न हो जाओ।'

कल्याणी चल दी। बसन्ती ने रूमाल निकाल कर हिलाना प्रारम्भ कर दिया। कल्याणी ने कुछ दूर जाकर मुड़ कर पीछे देखा। बसन्ती ने भी उसे देखा।

'कल्याणी!'—उसने पुकारा।

'हाँ।'—कल्याणी ने खड़े होते हुए कहा।

'थोड़ा ठहरो।'—कह कर बसन्ती उसकी ओर चला। वह भी खड़ी हो गई। पास जाकर बसन्ती बोला—एक प्रश्न का उत्तर दोगी?

'पूछो।'

'आज की सब बातें याद हैं?'

'हाँ!'

'रात्रि इनमें कुछ अन्तर तो पैदा न कर देगी?'

'नहीं बसन्ती।'

'याद रखना।'

'अवश्य।'

कल्याणी घर के भीतर घुस गई, तब बसन्ती अपने होटल की ओर बढ़ा। उसकी इच्छा हो उठती थी कि 'आओ, आओ, हे कल्याणी' को वह ज़ोर से गाए। परन्तु कल्याणी की बात उसे याद थी। वह उस गान को धीरे-धीरे गुनगुनाता हुआ चला गया।

## ४

कल्याणी और बसन्ती का अधिकांश समय साथ-साथ कटने लगा। दोनों एक दूसरे को पसन्द करते थे। दोनों की प्रकृति मिलती थी। वह भी भावुक थी, वह भी भावुक था। वह भी सङ्गीत को प्रेम करती थी, वह भी सङ्गीत का भक्त था। दोनों में बाहर और भीतर से इतनी समानता थी कि वह समानता एकता का रूप धारण करती जाती थी। दोनों हृदय दिन प्रतिदिन एक दूसरे की ओर बढ़ते हुए चले आते थे। उनमें अब बहुत कम अन्तर रह गया था।

उस ओर कोई ऐसी घाटी, कोई ऐसा कुञ्ज, कोई शैल-शिखर, कोई ऐसा झरने का कूल न था कि जहाँ दोनों ने कुछ समय साथ-साथ न बिताया हो। कहीं वे एक दूसरे की बातें सुनते। कहीं एक कुछ कहता और दूसरा सुनता। कहीं वे गाते, कहीं बेला बजाते, कहीं आँख-

मिचौली खेलते और एक दूसरे के पीछे दौड़ते। कहीं कल्याणी नीरव, निश्चल बैठ जाती और बसन्ती उसका चित्र बनाता। जब और कुछ करने को न रहता, तो वे दोनों शान्त हुए प्रकृति के सौन्दर्य को निहारते। सबसे अधिक समय कल्याणी ने एक्टिङ्ग सीखने में लगाया था। कभी वह रानी का पार्ट करती, कभी भिखारिण का; कभी वृद्धा का, कभी युवती का। बसन्ती एक्टिङ्ग में उसका शिक्षक भी था, उसका श्रोता भी, उसका उपासक भी, उसका समालोचक भी।

सन्ध्या का समय था। बेला पर बसन्ती गा रहा था—

आओ, आओ, हे कल्याणी!
देवि, तुम्हारे दिव्य दर्शनों के प्यासे सब प्राणी!
आओ, आओ, हे कल्याणी!

इतने ही में उसके कानों में गाने का शब्द पड़ा। उसने अपना गाना बन्द कर दिया। ध्यान से सुना, वह कल्याणी का शब्द था। वह कुछ बजा नहीं रही थी। केवल गा रही थी—

देखो, हाज़िर है कल्याणी।
भक्ति, प्रेम, श्रद्धा जिनके
हृदयों में मैं लख पाती,
उन भक्तों को, हो प्रसन्न,
मैं अपना दर्श दिखाती।
मुझको पा न सकें सब प्राणी।

कल्याणी बहुत लीन होकर यह गान गा रही थी, परन्तु उसे यह विश्वास था कि बसन्ती उसका गान सुन कर उधर आएगा। बसन्ती धीरे-धीरे उधर आया और कल्याणी के पीछे खड़ा हो गया। कल्याणी को यह बात विदित होगई। परन्तु उसने गाना बन्द न किया। जब गा चुकी तो सामने मुख किए वह घास पर अधलेटी होगई।

'देवी!' बसन्ती ने पुकारा।

'कौन है?' कल्याणी ने पूछा, बिना पीछे को देखे, मानो उसे बसन्ती की कुछ चिन्ता नहीं थी।

'भक्त।'

'क्या इच्छा है?'

'दर्शनों की इच्छा।'

'हृदय में भक्ति है?'

'है।'

'प्रेम है?'

'है।'

'श्रद्धा है?'

'है।'

'सामने आओ। देवी दर्शन देंगी।'

'देवी प्रसन्न हैं?'

'तुम्हारी भक्ति से देवी प्रसन्न हैं।'

बसन्ती ने सामने आकर कल्याणी का हाथ पकड़ लिया। दोनों कुछ देर तक हँसते रहे।

'तुम इतनी हँसोड़ हो, कल्याणी, परन्तु आश्चर्य यह है कि तुम दुखान्त नाटकों के लिए इतना सुन्दर एक्टिङ्ग कैसे कर सकती हो? अपने एक्टिङ्ग में तुम यह करुण-रस कहाँ से ले आती हो?'

'पता नहीं क्यों, मेरे मुख पर इतनी हँसी और इतना उल्लास रहते हुए भी मेरा हृदय किसी अदृष्ट दारुण व्यथा से रोया करता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे जीवन में कोई बड़ी दुखद घटना होने वाली है। रह-रह कर मन में यह विचार उठता है कि मेरा जीवन एक दुखान्त नाटक होने जा रहा है। कभी-कभी मैं अपनी छत पर पड़ी आकाश की ओर देखा करती हूँ। चन्द्रमा के ऊपर मेरे विचार केन्द्रस्थ हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों चन्द्रमा घटता जाता है, मेरा दिल बैठता जाता है। जब अमावस्या आती है, तो मुझे एक बड़ा भारी आघात पहुँचता है। मेरे हृदय में व्याकुलता-मिश्रित पीड़ा होने लगती है। फिर द्वितिया का चाँद निकलता है और ज्यों-ज्यों वह बढ़ता जाता है, मेरी पीड़ा कम होती जाती है और मेरी आशा बढ़ती जाती है। परन्तु मुझे डर यह बना रहता है कि कहीं अमावस्या के दिन ही जीवन का अन्त न हो जाय।'

वह चुप हो गई। उसका मुख भी कुम्हला गया था। मानो उसके हृदय में वह पीड़ा जाग्रत हो गई हो और उसका प्रतिबिम्ब उसके मुख पर पड़ रहा हो।

'कल्याणी! इतनी चिन्ता न करो, यह सब तुम्हारा भ्रम है।' बसन्ती बोला।

'नहीं, बसन्ती, भ्रम नहीं है। मुझे विश्वास है कि

यह भ्रम नहीं है। यह क्या है, मैं कह नहीं सकती, परन्तु यह भ्रम नहीं है।'

'कुछ भी हो, तुम्हें इस विश्वास की जड़ पर कुठाराघात करना ही पड़ेगा। तुम चन्द्रमा को ही अपने विचारों का केन्द्र बनाती हो, रात्रि को ही तुम आकाश का निरीक्षण क्यों किया करती हो? प्रातःकाल के सूर्य की ओर देखो। कदाचित् तुम्हारे जीवन में भी कोई प्रातःकाल का सूर्य आ जाय।'

'क्या पता है, उसके ऊपर भी बादलों का पर्दा पड़ जाय।'

'ओफ़, कैसे विचार हैं तुम्हारे कल्याणी'—कह कर बसन्ती ने एक निःश्वास ली।

'तुम क्यों चिन्तित होते हो, बसन्ती?'

'तुम नहीं जानती हो, कल्याणी? अब तक भी नहीं समझ सकी हो?'

कल्याणी विषय बदल कर बोली—अच्छा इन दुखप्रद बातों को छोड़ो, बसन्ती। कोई सुन्दर ट्यून बेला पर निकालो।

बसन्ती ने बेला पर ट्यून निकाली। कल्याणी बड़े ध्यान से मस्त होकर सुनती रही। बाजा बन्द हुआ। कल्याणी उठ पड़ी।

'क्यों, पसन्द नहीं आई?'

'बहुत पसन्द आई है।'

'फिर?'

'जा रही हूँ।'

'क्यों?'

'इसलिए कि ट्यून बहुत पसन्द आई है।' कल्याणी ने हँस कर कहा।

'दया करो, कल्याणी, पहेली न बूझो।'

'ठीक ही है। तुम जैसे गवैए जादूगर होते हैं। और जादूगरों से बच कर रहना ही ठीक है।'

'तुम्हारे जादू के आगे और किसी का जादू नहीं चल सकता।'

'घर आज काम है, इसलिए शीघ्र जाना पड़ेगा।'

'ऐसा क्या काम है?'

'कुछ मेहमान आ रहे हैं।'

'तुम्हें इससे क्या? माँ देख-भाल लेंगी।'

'यही तो बात नहीं है। वे मेरे लिए ही आए हैं।'

'तुम्हारे लिए?'

'हाँ, मेरे लिए, मुझे देखने।'

'तुम्हें देखने?'

'हाँ।'

'मैं समझा नहीं। तुम्हारा क्या देखेंगे?'

'लड़कियों को देखने लोग किस लिए आते हैं?'

'विवाह के लिए।'

'बस।'

'क्या, तुम्हारे विवाह के लिए?'

'हाँ।'

'और तुम इस प्रकार विवाह करने के लिए अपनी सम्मति दे दोगी?'

'क्यों नहीं?' कल्याणी ने हँस कर कहा।

'तुम मज़ाक़ कर रही हो।'

'मज़ाक़ नहीं है। माँ की इच्छा यही है और उनकी इच्छा के मैं अधीन हूँ।'

'ऐसा तुम नहीं कर सकतीं, कल्याणी।'

'क्यों नहीं कर सकती? सभी हिन्दू लड़कियाँ ऐसा करती हैं।'

'परन्तु तुम नहीं। तुम शिक्षित हो, समझदार हो, अपने भाग्य का स्वयं निर्णय कर सकती हो।'

'इससे क्या होता है, बसन्ती। मैं जानती हूँ कि मैं इस बात से भागना चाहती हूँ, मैं जानती हूँ कि एक अनजान व्यक्ति से बँध जाना मैं कभी सहन नहीं कर सकती, परन्तु फिर भी मुझे ऐसा करना पड़ेगा! माँ मुझे बहुत प्यार करती हैं, मैं उनको बड़े आदर और बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखती हूँ। वह जो कहेंगी, उसका विरोध मैं कैसे करूँगी? उनकी आज्ञा का उल्लङ्घन अभी तक मैंने नहीं किया, न अब कर सकूँगी। उनके अन्दर कोई ऐसी शक्ति है कि जब वह कोई आज्ञा देती हैं, तो मुझे अनिच्छा रहते भी वह माननी पड़ती है।'

'और आज्ञाएँ मानो, कल्याणी, परन्तु यह आज्ञा—ओह, ईश्वर के लिए अपना भविष्य न बिगाड़ो। मान लो कि जिससे तुम्हारा विवाह होगा, उसे तुम प्रेम न कर सको, उसके भावों से तुम्हारे भाव न मिल सकें, वह तुम्हारे हृदय को न समझ सके, फिर क्या करोगी? क्या सारा जीवन रोते हुए, कलपते हुए काट दोगी? क्या अपनी भावुकताओं को, अपने भावों

को, अपने हृदय की आन्तरिक पुकार को दमन कर दोगी, ताकि उस पुरुष को, उसके घर वालों की और उनके अपावन विचारों की दासी होकर कालयापन करो? सोच लो, कल्याणी, सोच लो, अभी तो कुछ नहीं बिगड़ा है। अपनी माता पर अपना अभिप्राय प्रगट कर दो। उनसे कह दो कि तुम प्रेम-विहीन विवाह के लिए अपनी सम्मति कदापि न दोगी। कह कर देख लो, माँ तुम्हारे भावों को समझने की चेष्टा अवश्य करेंगी।'

'नहीं, बसन्ती, मैं इतनी भाग्यवती नहीं हूँ। माँ मेरी प्राचीन विचारों की हैं। कट्टर सनातनी हिन्दू हैं। उनका यह पक्का विचार है कि लड़के-लड़की का विवाह उनके माता-पिता का कार्य है और उसमें लड़के-लड़कियों को कोई हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। यदि पिता जी होते तो दूसरी बात थी। उन्होंने मुझे पढ़ाया-लिखाया था और मुझमें जो कुछ भी भावुकता और प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रेम है, उसके जन्म का श्रेय उन्हीं को है। उनकी मृत्यु के बाद माता का वही शासन, जो अन्य प्राचीन विचारों की माताओं का होता है। ऐसी परिस्थिति में तुम जो कुछ कह रहे हो, उसके करने के लिए बड़े साहस की आवश्यकता है, बड़े आत्म-बल की आवश्यकता है। मैंने अपने आपको टटोल कर देख लिया है, मुझमें न साहस है, न आत्म-बल।'

वह चुप हो गई। आगे कुछ कह ही न सकी, मानो किसी ने उसका गला बन्द कर दिया हो। उसके मुख पर के भाव यह स्पष्ट बतला रहे थे कि उसने जो कुछ कहा था, उसका विचार कर उसे एक बड़ी मानसिक वेदना हो रही थी। बसन्ती कुछ देर तक उसके मुख की ओर देखता रहा—कुछ दर्द से, कुछ सहानुभूति से, कुछ आश्चर्य से, कुछ श्लाघा से। वह बोला—

'कल्याणी!'

'हाँ!'

'चुप क्यों हो गईं?'

'कह चुकी, जो कुछ कहना था। अधिक कहने से तुम्हें दुःख होगा।'

'कुछ और कहने को था?'

'बहुत कुछ, परन्तु क्या लाभ!'

'क्यों नहीं, कल्याणी, बहुत-कुछ लाभ हो सकता है, यदि तुम चाहो तो। परन्तु मन की बात मन में रखने से तो काम न चलेगा।'

'मुझसे न कही जायगी, बसन्ती।'

'मैं अनुमान करूँ?'

'समझ सके हो?'

'बहुत कुछ।'

'करो अनुमान।'

'इन दिनों की स्मृतियों का विचार तुम कर रही हो!'

'मुझे जाने दो, बसन्ती! मैं अधिक न सुन सकूँगी। कलेजे में दर्द हो रहा है। उसे अधिक न छुओ—रो पड़ूँगी।'

'चली जाना, एक बात बताती जाओ।'

'कुछ न पूछो, इस समय।'

'आज तक मैंने कुछ नहीं पूछा। अब बिना पूछे काम न चलेगा। एक प्रश्न है, उत्तर दोगी?'

'पूछो।'

'क्या तुम अपनी आकांक्षा को भूल गईं?'

'एक्ट्रेस होने की?'

'हाँ।'

'भूली नहीं हूँ।'

'परन्तु माता की आज्ञा पालन करने के बाद तो उसे भूलना ही पड़ेगा।'

'भूलने का उद्योग करूँगी।'

'यदि न भूल सकीं; उस जीवन में यदि कभी इस आकांक्षा ने ज़ोर मारा, यदि कभी इन दिनों की स्मृतियाँ नेत्रों के सामने नाचीं। यदि कभी भावुकता की लहरें हृदय से आकर टकराईं; यदि कभी सङ्गीत की, सौन्दर्य की, सुषमा की उपासना के भाव मन में आए! क्या करोगी तब?'

'क्या उपाय है, बसन्ती?'

'उपाय पूछती हो! जहाँ इच्छा है, वहीं साधन है, याद नहीं रहा? यदि तुम चाहो तो इस उलझन में से निकालने वाला कोई तुम्हें मिल सकता है।'

'कोई?'

'हाँ, कोई!'

'तुम?'

'सम्भव है।'

'शायद ही ऐसा हो सके! अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए मैं तुम्हारे साथ किस प्रकार चल सकती हूँ ?'

'अपनी ही आकांक्षाओं को नहीं, मेरी भी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए।'

'तुम्हारी आकांक्षाएँ ?'

'हाँ कल्याणी! जिस दिन से तुम्हें देखा है, उसी दिन से मेरे हृदय में भी आकांक्षाएँ थिरक-थिरक कर नाच रही हैं। मैं चाहता हूँ कि तुम मेरी हो जाओ। फिर.....।'

वह उसकी ओर देखने लगा। शायद कुछ उत्तर पाने की आशा से; परन्तु वह चुप बैठी रही, नीचे पृथ्वी की ओर देखती हुई।

'तुम जानती हो कल्याणी, कि मेरे हृदय में तुम्हारे लिए कौन सा स्थान है।' वह बोला।

'जानती हूँ।' उसने भी इस बार उत्तर दिया।

'और तुम्हारे हृदय में भी.....?'

'हाँ।' कुछ सङ्कोच से वह बोली।

'बसन्ती की आकृति खिल उठी।

'तो फिर, चलोगी मेरे साथ ?'

'हाँ।'

'आज रात्रि को ?'

'हाँ।'

'यहाँ आ जाना, यहीं से इस स्थान को हम अन्तिम नमस्कार करेंगे।'

'अच्छा।'

❀ ❀ ❀

रात्रि के अन्धकार में टॉर्च हाथ में लिए बसन्ती उधर आया। वहाँ कल्याणी न थी। उसकी प्रतीक्षा में कुछ देर तक वह इधर-उधर टहलता रहा। परन्तु कल्याणी न दिखाई दी। क्या वह न आएगी? उसे वह प्रतीक्षा असह्य हो गई। जहाँ सन्ध्या को दोनों ने वार्तालाप किया था, वहीं आकर वह बैठ गया। उसका जी नहीं लगा। कल्याणी को हुआ क्या? क्या उसने अपना निश्चय बदल दिया? या उसकी माता पर यह सारा रहस्य उद्घाटन हो गया? इन प्रश्नों पर विचार करते-करते उसके सर में दर्द होने लगा। बेला उसके हाथ में था। वह 'आओ, आओ, हे कल्याणी!' की ध्वनि उस पर निकालने लगा। परन्तु कल्याणी न आई, उसने निराश होकर बेला बजाना बन्द कर दिया। बेला को ज्योंही वह पृथ्वी पर रखने वाला था, उसकी दृष्टि एक लिफ़ाफ़े पर पड़ी। नाम उस पर बसन्ती का ही था। लिखावट कल्याणी के हाथ की थी। काँपते हाथों से उसने वह लिफ़ाफ़ा फाड़ा और पत्र को पढ़ने लगा—

"प्यारे बसन्ती,

तुम उस स्थल पर, जहाँ हम दोनों ने एक होने का निश्चय किया था, जहाँ घण्टों हमने एकत्र हँसते, रोते, खेलते, झगड़ते बिताए हैं, जहाँ की मृत्तिका मेरे लिए इतनी पावन है, जितनी एक भक्त को उसके देवता की मूर्ति, आओगे और मुझे न पाओगे।

तुम बड़ी आशाएँ लेकर आओगे। तुम्हारे हृदय में उमङ्गें उठ रही होंगी। तुम्हारी मुखाकृति पर मुस्कान नृत्य कर रही होगी। तुम समझ रहे होगे कि तुम संसार में सबसे सुखी हो, सब से भाग्यशाली हो। तुम स्वप्न भी देख रहे होगे। कभी अपने, कभी मेरे, कभी अपने-मेरे। उन स्वप्नों में उल्लास की ही सृष्टि होगी। तुम देख रहे होगे एक जाज्वल्यमान जगत्, जहाँ सुख और समृद्धि, सम्पत्ति और सफलता, सौन्दर्य और सङ्गीत स्वयं दास-दासियों का कार्य कर रहे होंगे। उस विलक्षण जगत् में विचरण कर रहे होंगे, दो परम प्रसन्न प्राणी—तुम और मैं।

तुम इस प्रकार आओगे और मुझे न पाओगे। इससे तुम्हारे हृदय को बड़ी ठेस पहुँचेगी। शायद, इससे तुम्हारा हृदय टूक-टूक हो जाय। तुम जब इस पत्र को पढ़ोगे तो मुझ पर रुष्ट होओगे, बिगड़ोगे, विश्वासघातिनी कहोगे। परन्तु क्या करूँ, मुझे विवश होकर यह सब कुछ करना पड़ा है।

माँ ने सम्बन्ध पक्का कर दिया है। जो लोग आज आए थे, वे कल चले जाएँगे। माँ से मेरी बातें हुई थीं। न जाने क्यों, उन्हें मेरे मनोविचारों का पता चल गया था। उन्होंने मुझे बहुत समझाया। उस समझाने में मेरे भविष्य का, मेरे सुख का कोई स्थान न था। उसमें बड़े-बूढ़ों की नाक, कुटुम्ब का नाम, लोक-लज्जा, समाज का विचार, वचन देकर उसे भङ्ग न करना, कुमारी लड़कियों के कर्त्तव्य, माता-पिता के अधिकार आदि बातों का उल्लेख था। उन्होंने मेरे सामने स्पष्ट जता दिया

कि लड़की अपने लिए उत्पन्न नहीं होती, दूसरों के लिए। अतः सदा उसे अपना विचार न करके दूसरों का विचार करना चाहिए। दूसरों के लिए यदि उसका जीवन बिगड़ता हो तो कोई बात नहीं। माता-पिता का नाम, पति की इच्छा आदि इन सबके सामने उसका सुख कुछ भी नहीं।

उन्होंने साफ़ तो नहीं,हाँ दबे-दबे यह भी बता दिया कि घर से निकल भागने से उनकी क्या दशा होगी। वह कहीं मुख दिखाने योग्य भी न रह जायँगी और फिर उनके लिए आत्म-हत्या के अतिरिक्त और कोई चारा न रह जायगा। मेरा उन्होंने पालन-पोषण किया है, अतः मेरा कर्त्तव्य है कि समाज में उनका अपमान कभी न होने दूँ। न वह असवर्ण विवाह की पक्षपातिनी हैं। उन्होंने तो ऐसा घर ढूँढ़ा है, जो अपनी ही बिरादरी का है और कट्टर हिन्दू है।

मैंने अपनी सम्मति उन्हें दे दी। यह शायद मेरी कायरता थी, परन्तु मैं कह चुकी हूँ कि माँ की आज्ञा का मुझे पालन करना ही पड़ता है। जिसमें कुटुम्ब का नाम रहे, समाज में माँ अपना दर्जा बनाए रहें, मैंने अपने भविष्य को भाग्य के ऊपर छोड़ दिया है। यदि यह सारे जीवन का बलिदान कहा जा सकता है तो मैं उसे जान-बूझ कर कर रही हूँ। समाज के नियम ऐसे हैं कि उसके अतिरिक्त मेरे लिए और कोई मार्ग रहा ही नहीं।

तुम यह न समझना, बसन्ती, कि यह निश्चय करते हुए, मेरे हृदय में कुछ भी दुःख नहीं। कैसा होता, यदि मैं सारा हृदय चीर कर तुम्हारे सामने रख सकती। मैं तुम्हें क्या समझती थी, यह तुम जानते हो। मैं तुम्हारे साथ रह कर किन-किन आकांक्षाओं के पूर्ण होने का स्वप्न देख रही थी, यह तुम जानते हो। मुझे दूसरे के साथ, उसकी पत्नी बन कर, रहने में क्या कठिनाइयाँ आएँगी, यह भी तुम जानते हो। मैं तुम्हें हाथ से खो रही हूँ, अपने हाथ में लाकर, जान-बूझ कर। यह कितनी दर्दभरी बात है—इसकी कसक सदा मेरे हृदय में रहेगी। मैं तुमसे मिलती, परन्तु मेरा साहस न हुआ। तुम्हें न तो मैं दुखी देख सकती थी और न शायद तुम्हारे सामने आकर मैं अपने निश्चय पर दृढ़ रह सकती थी। ओह, मानव-हृदय कितना क्षुद्र है, कितना शिथिल है!

तुम यहाँ से तत्काल चले जाओ, बसन्ती, और मुझे भूल जाओ, सदा के लिए। यही एक उपाय है, जो हमें कुछ 'शान्ति' दे सकता है। भूलने का प्रयत्न करना और स्मृति में तड़पना। अच्छा होता, तुम मेरे जीवन में न आते, तब मैं बलिदान के समय इतना कष्ट प्रतीत न करती। परन्तु अब उन बातों से क्या होता है? भाग्य ही ऐसा था।

अब मैं अधिक नहीं लिख सकती। उन स्मृतियों का उपहार—तुम्हें मेरा प्रथम बार और अन्तिम बार प्यार!

—अभागिनी कल्याणी"

५

कल्याणी का विवाह हो गया। उसकी ससुराल बरेली में थी। पति पढ़े-लिखे थे—एफ़० ए० पास करके उन्होंने पढ़ना छोड़ दिया था। अब कपड़े का व्यापार करते थे। प्रथम बार कल्याणी ने देखा। वह बात न थी, जो बसन्ती में थी। यदि दोनों हीरे के टुकड़े थे, तो एक तो वह हीरा था, जो किसी कुशल कारीगर द्वारा काटा जाकर जौहरी की शीशेदार आलमारी की शोभा बढ़ाता है और जिसे देख कर प्रत्येक व्यक्ति का मन उसे ख़रीदने के लिए चलायमान हो जाता है; दूसरा वह हीरा था जो अभी खान से निकाला गया हो, जिस पर चारों ओर मिट्टी लगी हो और जिसे कोई देखने के लिए भी तैयार न हो। परन्तु बात इतनी ही न थी। कल्याणी ने यह देखा कि वह हीरा ऐसा न था कि जिसे काट कर दूकान की आलमारी में रक्खा जा सके।

पहली रात्रि थी। कल्याणी अपनी माता के घर से अपना हारमोनियम ले आई थी। उसे सङ्गीत का शौक़ तो था ही, जब थोड़ा अवकाश मिला, वह अपने कमरे में चली गई। सोचा था, पतिदेव आएँगे, छिप कर, चोर की तरह। कुछ देर तक वह गाना सुनने में तल्लीन हो जाएँगे, फिर धीरे-धीरे, वह उसकी कुर्सी के पीछे आकर उसकी आँखों पर हाथ रख देंगे। वह जान जायगी, पर यह बात प्रगट न होने देगी। वह आश्चर्यान्वित होकर चिल्लाएगी—यह कौन है? वह कुछ न कह कर उसकी आँखों को और ज़ोर से दबा देंगे। तब वह कहेगी—मैं समझ गई, 'तुम हो!' आँखों पर से हाथ हट जाएँगे और दोनों एक ठहाका देकर हँस पड़ेंगे। वह होगा उनका पहला मिलन, मधुर-मिलन।

कुछ देर तक कल्याणी इसी प्रकार अपने भावुक हृदय में भावुक कल्पनाओं का सञ्चार करती रही। फिर वह उस काल्पनिक नींद से जागी। हारमोनियम लेकर उसने बजाना प्रारम्भ कर दिया। हारमोनियम का बजना था कि बिहारी, कल्याणी के पति, के मकान के नीचे, कल्याणी के कमरे की खिड़की के पास ही, कई लड़के इकट्ठे हो गए। कोई मुँह बना रहा था, कोई हारमोनियम की धुन के साथ सीटी बजा रहा था और शेष बिहारी का नाम ले-लेकर उसका उपहास कर रहे थे। बिहारी दूकान से लौट कर आ रहा था। उसने यह देखा। उसे ऐसा विदित हुआ, मानो कल्याणी ही स्वयं उसका उपहास कर रही हो। वह आगे बढ़ा; द्वार तक आने पर उसने सुना, कल्याणी गा रही थी—

काहे बदरवा, मोहिं तरसाओ !
पिय के बिरह की अगिनि बढ़ो है,
मिलन-नीर सीतल बरसाओ !
काहे बदरवा, मोहिं तरसाओ !

द्वार पर खड़ा होकर बिहारी गाना सुनने लगा। इतने ही में उसे सुन पड़ा कि पड़ोस के कुछ अधेड़ व्यक्ति पास ही बैठे उसकी स्त्री के विषय में बातें कर रहे हैं।

'पूरी मेम है !'—एक ने कहा।

'कल आई है और आज ही ऐसे करतब दिखा रही है।'—दूसरा बोला।

'अगर आज यह बात है तो कल सड़क पर नाचेगी भी !'—तीसरे ने बड़ी गम्भीरता से अपनी सम्मति दी।

बिहारी का मुख लाल हो गया। वह सीधा ऊपर चढ़ा और कल्याणी का द्वार खोल कर भीतर पहुँचा। कल्याणी ने द्वार खोलने का शब्द सुना। आ गए, यह जान कर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह उस समय गा रही थी—

मेरी पीर समझि, निरमोही,
आँसुन की दो बूँद बहाओ !
काहे, बदरवा, मोहिं तरसाओ !

उसने गाना बन्द न किया। उसी प्रकार वह गाती रही, यह दिखाने को कि उसे बिहारी के कमरे में आ जाने का पता तक भी नहीं था, परन्तु बिहारी उसके पास तक न आया। द्वार के पास खड़े-खड़े ही उसने चिल्ला कर कहा—गाना बन्द करो !

कल्याणी के होश उड़ गए। उसे कभी यह स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि उसके पति का, प्रथम मिलन के अवसर पर, यह व्यवहार होगा। शायद है, बिहारी के वाक्य का वह बुरा न मानती, यदि उसके कहने का ढङ्ग शिष्ट तथा मधुर होता। स्नेह से सना हुआ विष भी लोग प्रसन्नता से पान कर लेते हैं। परन्तु इस वाक्य में भरा था आदेश, उपेक्षामय आदेश, गर्व और स्वामित्व भरा आदेश। यह तो कल्याणी के लिए विष से भी अधिक दाहक था। उसके कोमल हृदय को चोट लगी। उसकी आत्मा को ठेस लगी। वह कुछ देर, गाना बन्द करके, बिहारी की ओर लुटी हुई सी देखती रही। उसके पास केवल दो चीज़ें थीं—कल्पना और भाव। अब किसी ने उसके कल्पना-कुसुम को कुचल डाला, उसके भावों की प्याली को छलका डाला। वह सम्पत्ति विहीन-सी रह गई।

'इस घर में इस तरह गाना-बजाना न होगा। यह भले आदमियों का घर है, रण्डियों का चकला नहीं है।'—कह कर बिहारी बाहर निकल गया। उसने कल्याणी से एक बात तक न की। कल्याणी कुछ देर योंही खड़ी रही। उसे अभी तक यह विश्वास ही न होता था कि उसके पति आए और यह सब कुछ कह कर चले गए। फिर वह पास ही पड़े हुए पलङ्ग पर बैठ गई। अन्तर्वेदना की पहली श्रेणी समाप्त हो चुकी थी। अब थी दूसरी। आँखें उसकी आँसू बहाने लगीं। पहले वे आँखों की कोर से बाहर को झाँके, फिर बाहर निकले, फिर उन्होंने गालों पर आक्रमण किया और फिर उनकी लड़ी बँध गई। आँसुओं के साथ उसकी सिसकारी भी बँध गई। उसने तकिए में मुँह छिपा लिया और बच्चे की भाँति बिलख-बिलख कर रोने लगी। तकिए के स्थान पर यदि किसी का वक्षस्थल होता है तो आँसू शीघ्र बन्द हो जाते हैं, परन्तु तकिए से उतनी सहानुभूति, उतना धैर्य और उतना सन्तोष नहीं मिलता।

जब से कल्याणी इस घर में आई थी, उसने बसन्ती को भुलाने की इतनी चेष्टा की थी, इतना प्रयत्न किया था, कि वह उसे लगभग भूल ही गई थी। जब उसकी याद आती, तो वह अपने पति का ध्यान कर लेती। स्त्री

में यह बड़ा भारी गुण है। वह अपने अन्तर्जगत की वेदना को इस प्रकार दबा दे सकती है कि उसका अस्तित्व बिल्कुल नष्ट हुआ सा प्रतीत होने लगता है। परन्तु हाँ, उसके हृदय में जो भावुकता होती है, उसका पोषण होना चाहिए। यदि उसका पोषक न मिला तो उसकी अन्तर्वेदना जाग उठती है और वह अपने प्रेमी के लिए उसी प्रकार छटपटाने लगती है, जिस प्रकार बिना जल के मछली। यही दशा कल्याणी की हुई। जब उसकी भावुकता बिहारी द्वारा ठुकरा दी गई, तो उसे बसन्ती का ध्यान आया। वह उसके लिए व्याकुल हो गई। बार-बार उसे प्रतीत होने लगा कि बसन्ती उसके सामने खड़ा हुआ गा रहा है—

आओ, आओ, हे कल्याणी !

उसके मन में आता है कि वह भी गा दे—

देखो, हाज़िर है कल्याणी !

परन्तु उसके मुख से शब्द न निकलता। निकलता भी कैसे ? सङ्गीत हृदय की वस्तु है, न कि होठों की। जब हृदय श्मशान बन जाता है, तो कोयल भी वहाँ से उड़ जाती है।

६

धीरे-धीरे कल्याणी ने अपने को सँभाल लिया। उसने अपना विवाह इच्छानुसार नहीं किया था, माता की इच्छा से किया था। फिर जब अपनी इच्छानुसार उसे सुख न मिले, तो उसे कोई शिकायत न करनी चाहिए। भाग्य की परीक्षा करने ही के लिए उसने माता की आज्ञा शिरोधार्य की थी। अब भाग्य की परीक्षा हो चुकी थी। उसका जो परिणाम निकला, उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। इन्हीं विचारों को लेकर उसने अपना गृहस्थ-जीवन प्रारम्भ किया। उसने अपने काल्पनिक जगत को नष्ट कर डाला। जिस जीवन में वह थी, अपने को उसी के अनुरूप बनाने का वह प्रयत्न करने लगी। उसने सङ्गीत छोड़ दिया। हारमोनियम उस दिन जो बन्द करके रक्खा, फिर छुआ तक नहीं। वह एक दूसरी ही कल्याणी हो गई थी। कभी-कभी उसकी आत्मा इस नीरस जीवन से विचलित हो जाती थी, परन्तु फिर भी वह उस जीवन से सन्तुष्ट थी। वह जीवन उसका हो गया था, वह उस जीवन की हो गई थी।

बिहारी में वे गुण नहीं थे, जो कल्याणी जैसी स्त्री के हृदय को विजयी बना लेते हैं और सन्तुष्ट रखते हैं। फिर भी वह कल्याणी को प्रेम करता था। वह अपनी बुद्धि के अनुसार उसे सुखी बनाने की चेष्टा भी करता था, परन्तु उसकी बुद्धि इतनी ही थी कि वह कल्याणी के भोजन-वस्त्र सम्बन्धी सुख ही को समझ सकती थी। कल्याणी के हृदय में क्या उथल-पुथल मचती थी, इसको वह न समझ सकता था। यदि कल्याणी स्वयं ही अपने भावों को दमन न कर देती, तो बिहारी का पारिवारिक जीवन नरक-तुल्य हो जाता।

❀ ❀ ❀

कल्याणी के इस जीवन को दो वर्ष व्यतीत हो गए। बिहारी को बम्बई कार्यवश जाना था और पन्द्रह दिन रहना था। कल्याणी ने बम्बई देखी नहीं थी। अतः बिहारी उसे भी साथ लेता गया।

कल्याणी बम्बई के अपने कमरे में बैठी हुई थी कि बिहारी भीतर आया।

"एक मेरे बाल्यकाल के मित्र आज सन्ध्या को भोजन यहीं करेंगे, कल्याणी।'—उसने कहा।

'जो कुछ बता दीजिए, वह बना लूँ।'

'नाटक में काम करता है, खाना तो बढ़िया खाता होगा।'

'बढ़िया ही बन जायगा।'—कल्याणी ने बहुत धीरे से कहा, मानो 'नाटक' शब्द को सुन कर उसके मस्तिष्क में, सोई हुई पिछली घटनाओं के जग जाने से, खलबली मच गई हो।

सन्ध्या हुई। कल्याणी ने भोजन का सब सामान ठीक करके सजा दिया। बिहारी अपने मित्र को लेकर आ गया था और उसे बाहर की बैठक में बिठा दिया था।

'सब सामान तैयार है। देख लीजिए, फिर माँगना पड़े तो कष्ट होगा।'

'कष्ट इसमें क्या है। तुम परोसती जाना।'

'मैं ?'—कल्याणी ने विस्मय से पूछा।

'क्यों नहीं ?'

'एक परपुरुष के सामने निकलूँगी ?'

'बम्बई में सभी स्त्रियाँ निकलती हैं। जब बरेली पहुँचेंगे तो फिर देखा जायगा। और फिर वह तो मेरा बाल्यकाल का साथी है। हम दोनों ने वर्षों एक साथ पढ़ा-लिखा, खाया-खेला है। उसके सामने निकलते तुम्हें लज्जा न होनी चाहिए।'

कल्याणी को बिहारी के विचारों में यह परिवर्तन देख कर प्रसन्नता हुई। परन्तु कुछ देर बाद ही वह प्रसन्नता दूर हो गई। उसे रह-रह कर यह आशङ्का होने लगी कि कोई अनिष्ट होने वाला है। उसके अन्तर में कोई कह रहा था कि, 'तू बाहर न निकल!' परन्तु बिहारी की अवज्ञा वह करना नहीं चाहती थी, अतः उसने वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

कल्याणी एक ओर खड़ी थी। बिहारी ने उससे कहा—यह हैं मेरे मित्र, बसन्ती बाबू।

कल्याणी चौंक पड़ी। उसे अपनी दृष्टि पर विश्वास न हुआ। क्या, जो कुछ वह देख रही थी, ठीक हो सकता था? उसके सामने बसन्ती खड़ा था। बसन्ती भी विस्मित था, उसे यह कभी स्वप्न में भी विचार न था कि बिहारी की स्त्री कल्याणी होगी। बिहारी ने यह सब कुछ न देखा। जब उसने बसन्ती की ओर दृष्टि फेरी तब तक दोनों सँभल चुके थे।

भोजन समाप्त हो गया और बसन्ती के चलने का समय भी आ गया, परन्तु कल्याणी और बसन्ती में कोई बातचीत न हुई। कल्याणी ने तो अपने हृदय के भावों को इतना दबाया कि उसने बसन्ती की ओर देखा भी नहीं।

'फिर आना, बसन्ती।'—बिहारी ने कहा।

'कब?'—बसन्ती ने पूछा।

'तुम्हें कब अवकाश मिलेगा?'

बसती कुछ देर सोच कर बोला—ऐसा क्यों नहीं करते कि कल तुम हमारा नाटक देखने आओ और उसके पश्चात् हम सब यहाँ आकर साथ-साथ भोजन करें!

'ठीक तो है! अब तुम्हारी कम्पनी भी बाहर जा रही है, शायद फिर तुम्हारा नाटक देखने का अवसर न मिले।'—बिहारी बोला और उसी समय बसन्ती को लेकर बाहर चल दिया।

जब बिहारी लौट कर आया तो कल्याणी बोली—इन्हें आपने फिर क्यों बुलाया है?

'क्यों?'

'योंही पूछती हूँ। इनसे कह दीजिए कि फिर न आवें।'

'यह भी एक ही कही। कोई मित्र होता है तो उसको बुलाया ही जाता है।'

'और चाहे जिस मित्र को बुलाइए, परन्तु इनको नहीं।'—कल्याणी ने बड़ी कातर वाणी में कहा।

'आख़िर बात क्या है? क्या तुम पहले कभी उससे मिली हो?'

'नहीं।'

'फिर?'

'न जाने क्यों, मुझे इनका विचार करके बड़ा भय लगता है।'

'यह सब तुम्हारा भ्रम है। बसन्ती को मैं भली-भाँति जानता हूँ।'

'नहीं, मुझे उनके विषय में कोई शङ्का नहीं है।'

'तो किसके विषय में शङ्का है?'

'यह मैं नहीं जानती।'

'मैं जानता हूँ, अभी तक तुम किसी पुरुष के सामने नहीं पड़ी हो, बस यही बात है।'

'परन्तु एक बात तो मान लीजिएगा?'

'क्या?'

'मैं नाटक देखने नहीं जाऊँगी।'

'यह तो बसन्ती के ऊपर निर्भर है। यदि वह छोड़ दे, तब यह सम्भव हो सकता है।'

कल्याणी चुप हो रही। परन्तु मन ही मन वह झुलसी जा रही थी। बसन्ती को भूलने का उद्योग किया था, वही बसन्ती अब फिर सामने है। पहले से भी अधिक सुन्दर, अधिक आकर्षक, अधिक मोहक। कर्तव्य और वासना में जो सुलह हो गई थी, उसका अन्त हो गया था। दोनों ने उसके हृदय को रणाङ्गण बना कर फिर संग्राम छेड़ दिया था। वह भयभीत सी दिखाई दे रही थी। यदि वह बसन्ती से मिलेगी, बातें करेगी, उसे ऐक्टिङ्ग करते हुए देखेगी, गाते हुए सुनेगी, तो क्या वह अपने कर्तव्य पर दृढ़ रह सकेगी? क्या वासना उसे फिर बसन्ती की ओर खींच कर न ले जायगी?

बिहारी और कल्याणी दोनों, नाटक देखने गए। सामने एक सोफ़े पर दोनों बैठे थे। कल्याणी का जी ठीक

नहीं था। वह भीतर से उद्विग्न थी और बाहर से उदास। रङ्ग-मञ्च पर बसन्ती आया। वहाँ बसन्ती कुछ और ही दीखता था, उन्मत्तकारी, नशीला। कल्याणी ने आँखें बन्द कर लीं। वह उस जादू के सामने ठहर नहीं सकती थी। एक बार ही उसकी हृद्-तन्त्री के सारे तार हिल उठे, परन्तु नेत्र बन्द होने से क्या होता? बसन्ती की आकृति एक बाहरी व्यापार ही न थी, वह तो उसके अन्तस्तल में समाई हुई थी। आँखों ने अपने ही भीतर बसन्ती को देखा। कल्याणी की वेदना बढ़ गई। हृदय पीड़ा से कराहने लगा। इतने ही में उसके कानों ने सुना, बसन्ती गा रहा था—

आओ, आओ, हे कल्याणी!

यह उसी नाटक का गीत था, जिसने दोनों को उस रात, उस झरने के किनारे, उस झुरमुट के निकट मिलाया था। परन्तु आज उस गाने में नया माधुर्य था, नई मोहिनी थी। उसके मस्तिष्क में उन सभी बीती हुई घटनाओं का सिनेमा होने लगा। इससे अधिक उसके लिए असह्य था!

'घर चलो।'—वह मुरझाई हुई बिहारी से बोली।

'क्यों?'

'मेरा जी अच्छा नहीं है। शीघ्र उठ चलो, नहीं मैं मूर्च्छित हो जाऊँगी।'

वह अधिक न कह सकी। उसके नेत्र झपकने लगे। बिहारी ने उसे साध लिया, नहीं तो वह गिर जाती।

७

बिहारी कल्याणी को लेकर घर आ गया। उसके होश उड़ रहे थे। उसकी समझ में यह रहस्य कुछ भी न आता था। कल्याणी पलङ्ग पर चेतना-रहित पड़ी थी। बसन्ती का पार्ट शीघ्र ही समाप्त हो गया था, अतः वह भी वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसने बिहारी से कहा—तुम डॉक्टर को लेकर आओ, मैं इनकी देख-रेख करूँगा।

बिहारी चला गया। कल्याणी का हाथ पकड़ कर बसन्ती बोला—कल्याणी!

शायद कल्याणी के कान बसन्ती के शब्द की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। कल्याणी ने अपने नेत्र, बसन्ती का शब्द सुनते ही, इस प्रकार खोल दिए, जैसे कोई अपने द्वार पर घण्टी का शब्द सुन कर किवाड़ें खोल देता है।

'कल्याणी!'—बसन्ती ने उसके अधखुले नेत्रों की ओर देख कर कहा।

'कौन, बसन्ती?'

'हाँ!'

'तुम यहाँ क्यों आए? तुम चले जाओ, अभी, अभी!'

'इतनी घृणा क्यों करती हो, कल्याणी?'

'घृणा नहीं, भय!'

'मुझसे भय क्यों?'

'आह, तुम नहीं समझ सकते! मेरे हृदय का गढ़ सुरक्षित नहीं है, न दृढ़ है; तुम चोर हो, न जाने किस ओर से भीतर घुस आओ। तुम्हें भीतर का सब भेद मालूम है, न जाने किस वस्तु की चोरी कर ले जाओ! ओह बसन्ती, तुम क्यों फिर मुझे दिखाई दे गए? तुम्हें भूल चुकी थी, जैसे-तैसे जीवन बिता रही थी। क्यों तुमने वह शान्ति भङ्ग कर दी? क्यों दृढ़ता का बाँध तोड़ दिया? अब, अब क्या होगा?'

वह रोने लगी।

'जब से तुम्हारा पत्र मुझे मिला था, कल्याणी! मैंने तुमसे मिलने तक का उद्योग न किया। यह मिलन संयोगवश हुआ है। शायद दैव का इसमें हाथ हो!'—बसन्ती बोला।

'दैव का हाथ! उफ़, कितना भयानक हाथ है। कहाँ से खींच कर कहाँ लाया और अब न जाने किधर ले जायगा।'

'तुम प्रसन्न नहीं हो।'

'क्यों नहीं? मैं प्रसन्न हूँ, बहुत प्रसन्न हूँ। मेरे पास क्या नहीं है? घर-द्वार, धन-वस्त्र, पति-सभी कुछ हैं।'

'परन्तु.....'

'हाँ?'

'सब कुछ होते हुए भी कुछ भी नहीं है। तुम छिपा रही हो, कल्याणी, तुम सुखी नहीं हो।'

'थी, बहुत सुखी, आज से पहले तक। परन्तु आज? आज वह बात नहीं है।'

'आज भी हो सकती हो।'

'अब?'

'क्यों नहीं?'

'नहीं!'

'क्यों नहीं ? अब भी वही बात हो सकती है, जो उस झरने के किनारे हो सकती थी। तुम भी वही हो, मैं भी वही हूँ।'

'यही तो तुम नहीं जानते। मैं अब वह कल्याणी नहीं हूँ। उस कल्याणी को तो मैंने मार डाला।'

'मेरे लिए वह कल्याणी फिर जीवित हो सकती है!'

'नहीं, नहीं, मेरी ओर न देखो। चले जाओ! उन स्मृतियों को जाग्रत न करो।'

बसन्ती उठने लगा। कल्याणी ने देखा कि वह जा रहा है। वह तकिए में मुख छिपा कर रोने लगी। बसन्ती चल दिया। परन्तु वह द्वार तक ही पहुँचा था कि कल्याणी बोल उठी—न जाओ बसन्ती, लौट आओ।

बसन्ती लौट कर उसके पास खड़ा हो गया।

'क्यों जा रहे हो?'—कल्याणी ने पूछा।

'तुम यही तो चाहती हो।'

'सदा के लिए फिर चले जाओगे?'

'कल कम्पनी बाहर जा रही है। फिर शायद ही भेंट हो। यह जाना सदा के ही लिए होगा।'—कल्याणी चुप रही। बसन्ती उसकी ओर देखता रहा।

'कभी वह दिन था, जब तुम गाते थे, 'आओ, आओ, हे कल्याणी!' पर आज?'—वह बोली।

'आज भी बात वही है। कोई दिन नहीं होता, जब कि मैं इसे न गाता होऊँ। परन्तु इसके उत्तर में कोई 'देखो, हाज़िर है कल्याणी!' कहने के लिए नहीं।'

'यदि हो तो?'

'कल्याणी?'—बसन्ती ने उत्तेजित होकर कहा।

'उत्तर दो।'

'सच पूछती हो?'

'हाँ।'

'यह जीवन तुम्हारे लिए नहीं है। चलोगी?'

'हाँ, जहाँ ले चलोगे, बसन्ती, प्रियतम!'

८

कल्याणी को नाट्य-समिति में एक्ट्रैस का पार्ट मिल गया था। उसे करुण पार्ट करने को दिए जाते थे और उससे वे निभते भी ख़ूब थे। गाने जो वह गाती थी, वे भी करुणोत्पादक होते थे। उसकी आकांक्षा पूरी हो गई थी। वह एक्ट्रैस थी और एक सफल एक्ट्रैस। वह गाती थी, आप ही आप नहीं, सैकड़ों के सामने; और उसका गाना लोगों के हृदयों में चुभ जाता था, वह साधारण गायिका नहीं थी। इन सब बातों से वह प्रसन्न थी। परन्तु सब से अधिक प्रसन्न वह इसलिए थी कि बसन्ती उसके साथ था। वह कभी-कभी बिहारी के विषय में सोचती, तो उसे थोड़ा दुःख होता था। क्या उसका इस प्रकार निकल आना न्याय्य था? मानुषिक था? क्या उसने बिहारी के साथ धोखा नहीं किया था? कुछ भी हो, परन्तु वह यह समझने लगी थी कि उसे अपने भाग्य-निर्णय का स्वयं अधिकार था। जब बिहारी उसके भावों की चिन्ता नहीं करता था, तो वह उसके भावों की चिन्ता क्यों करे? बिहारी को इस प्रकार भुला-भुला कर उसने बिल्कुल पर्दे के पीछे डाल दिया था। पर्दे के आगे एकमात्र बसन्ती था। वह बसन्ती के साथ सुखी थी। वे दोनों प्रेमियों की भाँति ही रहते थे, परन्तु उसे रहने के प्रकारों से कोई प्रयोजन नहीं था, वह तो बसन्ती के पीछे जी रही थी। उसे वह किसी भी रूप में अङ्गीकार करने को तैयार थी। जब तक वह उसका था, उसे और किसी बात की चिन्ता न थी। बसन्ती उसे समझता था और वह बसन्ती को समझती थी। दोनों घण्टों सङ्गीत की चर्चा करते, उसका अभ्यास करते। कभी-कभी पास की नदी में, चाँदनी रात में, एक नाव पर वे निकलते। कभी हँसते हुए चन्द्रमा की ओर देखते और खिलखिला कर हँस पड़ते; कभी मुस्कुराते हुए तारों को देखते और उनकी मुस्कान से एक-दूसरे की मुस्कान की तुलना करते। इस प्रकार कभी प्रकृति की गोद में, कभी प्रकृति से परे, वे अपने खेल खेलते और हँसते हुए दिन बिता देते। परन्तु यह हँसी अधिक समय तक स्थिर न रह सकी। गुलाब के फूल में काँटा होता ही है, किसी में बड़ा, किसी में छोटा। जहाँ छोटा होता है, फूल की कोमलता में बाधा नहीं डालता; जहाँ बड़ा होता है, स्पर्श-सुख को किरकिरा कर देता है। यही दशा हमारी हँसी की है। हँसते सब हैं, परन्तु कुछ थोड़ा हँस कर बहुत रोते हैं, दूसरे बहुत हँस कर थोड़ा रोते हैं। पिछलों का रोना विश्व पर प्रकट नहीं होता, पहलों की हँसी छिपी रह

जाती है। कल्याणी थोड़ा ही हँसने पाई थी कि रोने के दिन आ गए, उसके जीवन-गुलाब का काँटा बहुत बड़ा था।

कम्पनी उन दिनों लाहौर में थी। वहीं मैनेजर ने एक नई एक्ट्रेस भर्ती की थी। अब तक हास्य-रस की नायिका बसन्ती के साथ, एक दूसरी एक्ट्रेस थी, अब नई एक्ट्रेस जमाल को वह पार्ट मिला। जमाल देखने में अत्यन्त सुन्दरी थी। कल्याणी सुन्दरी थी, परन्तु जमाल के सामने वह कुछ भी न जँचती थी। जमाल का स्वर भी वह घड़ा था, जो माधुर्य से लबालब भरा था। कल्याणी के स्वर में माधुर्य था, परन्तु वह घड़े को पूरा न भर सका था।

पहले-पहल जमाल ने बसन्ती के साथ रिहर्सल किया। वह स्तम्भित रह गया। जब 'प्रेम' का दृश्य आता तो जमाल इस ख़ूबी के साथ ऐक्टिङ्ग करती कि ऐसा मालूम होने लगता, मानो वह बसन्ती के साथ सचमुच ही प्रेम कर रही है। उसकी मतवाली आँखों में ऐसा सुरूर भरा था कि बसन्ती उसकी ओर खिंचे बिना न रह सका। कल्याणी ने यह देखा।

'बसन्ती, सावधान रहना।'—वह बोली।

'किससे ?'

'जिसकी ओर खिंचे चले जा रहे हो।'

'कल्याणी से ?'

'मुझे न बनाओ !'

'तुम्हीं बताओ, किससे ?'

'जमाल से।'

'जमाल ? उसके विषय में तुम कुछ न कहो, कल्याणी ! हम लोग नाटकी जीव हैं। हमारे संसार में यह सब क्षम्य है ! परन्तु कल्याणी का पद कोई नहीं छीन सकता है।'—उसने हँस कर कहा।

कल्याणी ने उस समय कुछ भी न कहा। परन्तु उसको सन्तोष न हुआ। जितना भय उसे अब हो रहा था, उतना जीवन में कभी नहीं हुआ था। इतनी घटनाओं के बाद बसन्ती को पाया था। अब, जब वह उसका एक-मात्र आधार था, उसे कोई दूसरी छीन ले जायगी ! उसने लड़ने का निश्चय कर लिया। वह बसन्ती को हर एक प्रकार से अपनी ओर आकर्षित किए रखने का प्रयत्न करती, हर तरह उसकी चिन्ता रखती; परन्तु फिर भी वह उस परिवर्त्तन को, जो बसन्ती में हो रहा था, रोक न सकी। वह जितना ही उसे अपनी ओर खींचना चाहती थी, उतना ही वह जमाल की ओर खिंचा जाता था। धीरे-धीरे उसने कल्याणी के साथ भोजन करना भी छोड़ दिया था।

उस दिन वह बहुत रोई थी। एक सप्ताह से बसन्ती उसकी ओर न आया था। उस दिन छुट्टी थी। बसन्ती उसे दिखाई दिया।

'आज शाम को दो घण्टे तो मुझे दे दो।' वह बोली।

'क्या करोगी ?'

'कहीं घूमने चले चलेंगे। इतने दिन हो गए, एक बार तो और मेरे साथ घूम लो, शायद फिर.....।'

'कल देखा जायगा, कल्याणी ! इस समय मुझे मैनेजर से बहुत आवश्यक कार्य है।'

वह अकेली बहुत देर तक बैठी रही। जब जी न लगा, तो वह सिनेमा देखने चल दी। द्वार पर जब वह टिकट लेने लगी, तो देखा कि वहीं बसन्ती जमाल के साथ खड़ा है। कल्याणी को देख कर वह एक ओर चलने लगा, परन्तु कल्याणी ने उसके पास जाकर कहा—सो यह मैनेजर के साथ आवश्यक कार्य है ?

'एक ख़ुशख़बरी सुन लो, पहले !'

'ख़ुशख़बरी ?'

'हाँ, कल जमाल के साथ मेरा विवाह हो रहा है !'

उसने सिनेमा नहीं देखा। रोती हुई, पागल की भाँति, वह लौट कर अपने घर चली आई। जिस प्रकार बिहारी को वह छोड़ कर आई थी, आज उसी प्रकार बसन्ती ने उसे ठुकरा दिया !

उस रात को दुःखान्त नाटक खेला जा रहा था, जिसमें सबसे पीछे कल्याणी मरने का पार्ट करती थी। उसी रात को जमाल और बसन्ती का विवाह हुआ था। बिखरे हुए बाल थे, साधारण वस्त्र पहने थी, आँखें रोते-रोते लाल हो रही थीं। इस प्रकार वह पहले सीन में स्टेज पर आई थी। उसका ऐक्टिङ्ग बहुत भद्दा हो रहा था। अचानक उसने देखा कि एक सामने की सीट पर बिहारी बैठा है, और उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह रही है। वह हृदय को थामे हुए स्टेज से गई। मैनेजर ने उसे घेर कर कहा—जान डालो, कल्याणी, ज़रा खेल में। आज तुम्हें क्या हो गया है ? पार्ट को स्वाभाविक बनाओ।

'ऐसा स्वाभाविक बनाऊँगी कि उसमें बनावट का नाम भी न होगा।'—वह सूखी हँसी हँस कर बोली।

खेल समाप्त होने को था। कल्याणी ने ग़ज़ब का पार्ट किया था। अन्तिम दृश्य में उसने मरने का दृश्य दिखाया। छुरी का हृदय में भोंकना, रक्त का बहना, उसका 'आह!' कह कर गिरना इतना स्वाभाविक था कि दर्शक दङ्ग रह गए। पर्दा गिर गया। 'वन्स मोर' के नारे लगा कर दर्शकों ने तालियाँ बजाईं, परन्तु पर्दा न उठा! कल्याणी के जीवन का पर्दा भी सदा के लिए गिर गया था।

# आँसू

[ श्री० विश्वेश्वरप्रसाद जी 'विप्र', एम० ए०, एल्-एल्० बी० ]

तोड़ कर या तो कठिन लज्जा-शिला,
हृदय-मन्दर से निकलते श्रोत दो,
बह रहा जिनसे है दाहक शीत जल,
है द्रवित शीताग्नि या रस रूप हो।
है मुकुर प्रत्येक निर्मल विन्दु या,
झलकता जिसमें हृदय का चित्र है।
भय से जिनके मुँह में या ताले लगे,
उन जनों का करुण नीरव शब्द है।
तार है या अश्रुओं का तार यह,
अति अनोखी अरु अलौकिक योजना,
हो रही व्यञ्जित है विद्युत-वेग से,
इक हृदय को दूसरे की वेदना।
सिन्धु है सुस्नेह का या विन्दु में,
दीर्घ निःश्वासों की आँधी चल रही,
उठ रही हैं भावनाएँ वीचियाँ,
वाड़वानल है विरह की जल रही।
धैर्य का टूटा कदाचित तन्तु है,
हैं बिखरते जलज[1] मुक्ता-माल से।
बाँध मर्यादा का या खण्डित हुआ,
बह रहा जल है हृदय-नद-कूल से।

शान्त करने के लिए हृदयाग्नि या,
प्रकृति-निर्मित दिव्य निर्झर झर रहे।
भावनाओं को अमर करने को या,
हैं सुधाधर से सुधाकण गिर रहे।
पान है अतिशय किया मकरन्द का,
बैठ कर अलिनी ने नलिनी में कहीं,
हैं उगलतीं करके अनुभव अधिकता,
ये कदाचित विन्दु जल के हैं नहीं।
या टपकता स्नेह है बाताद[2] से,
हैं उगलतीं मीन या नवरत्न को,
बूँद झरतीं ओस की सुमनों से या,
त्याग कर गिरते हैं, मुक्ता सीप को।
या हृदय ही प्रेम-रस से सिक्त हो,
तप्त होकर फिर विरह की आँच से,
हो मदोत्पादक निकलता है वही,
बन के आसव नव्य नलिका नेत्र से।
है निकट अनुरूप पावस ऋतु का या,
लग रही है घोर वर्षा की झड़ी,
रुक नहीं सकती प्रलय आए बिना,
यदि रही अविरल कहीं यह दो घड़ी।

पय किया मोती में पानी[3] जान कर,
खञ्जनों ने हो पिपासाकुल कहीं,
हैं उगलते करके अनुभव अधिकता,
ये कदाचित 'विप्र' आँसू हैं नहीं।

१—जलज=मोती, आँसू, २—बाताद=बादाम, ३—पानी=चमक, जल (श्लेष)।

## भारतवर्ष के अधिपतन का कारण

( मत-मतान्तर )

इस काल-कराल की कठिन गति से इस समय जितने मत-मतान्तर भारतवर्ष में फैले हुए हैं, शायद ही अन्य देशों में उतने मत-मतान्तर होंगे। जब से भिन्न-भिन्न भेदवादी आचार्यों ने यहाँ पर जन्म लेकर भेदवाद की प्रबलता से पुष्टि की है, और मनुष्यों में विषयों के प्रति अनुराग अधिक होने लगा है, तभी से मनुष्यों में स्वार्थपरायणता समा गई है, और विषय-पूर्ति के लिए नाना आडम्बरों के समूह भेदवाद की प्रबलता हो गई है। जितने भी आस्तिकवादी हैं ( ईश्वर का अस्तित्व मानने वाले हैं ) वे दो प्रकार के हैं— ( १ ) अभेदवादी और ( २ ) भेदवादी।

१—विभु व्यापक परमात्मा सब जगह आकाशवत व्यापक है, दूरस्थ नहीं है। वह हमारा आत्मा है, सिर्फ़ अज्ञानरूपी पर्दे के हट जाने से कण्ठ-भूषणवत प्राप्त होता है, ऐसा मान कर उसकी प्राप्ति के लिए जो उपासना है, उसका नाम अभेदवाद है।

२—परमात्मा हमसे भिन्न है, दूरस्थ है, एकदेशीय है, ऐसा मान कर उसकी प्राप्ति के लिए जो उपासना है, उसका नाम भेदवाद है। भेदवाद से मनुष्यों में राग, द्वेष, कलह उत्पन्न होते हैं, और अभेदवाद से दया, करुणा, समता और आत्मशक्ति का विकास होता है। भेदवादी आचार्यों ने इस देश में भेदवाद को फैला कर देश का बड़ा भारी अपकार किया है। जगत में जीव-ईश्वर का उपाधिकृत भेद तो अनादि काल से चला ही आता था, और प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा सिद्ध भी था, व्यवहार का बाधक भी नहीं था, किन्तु साधक ही था। उस अनादि भेद के सिद्ध करने के लिए जो अपनी पण्डिताई दिखाता है वह पण्डित नहीं कहा जाता, क्योंकि उसको तो मूर्ख भी जानते हैं, और प्रत्यक्ष प्रमाण करके दिखाता भी है। जो कि अदृश्य अभेद है उसको सिद्ध करने वाला जो है वह पण्डित कहा जाता है। फिर अनादि-काल का जो उपाधिकृत जीव-ईश्वर का भेद था, उसको दूर करने से ही पुरुष का कल्याण होता है, उसी का हटाना आचार्यों का मुख्य कर्तव्य था। उसको तो भेदवादी आचार्यों ने नहीं हटाया, किन्तु दुख के और देश के अपकार और अनेक प्रकार के भेद को लगा कर देश को मूर्ख बना दिया है, और किसी-किसी ने तो द्वैत से त्रैत भी लगा दिया है। इतना बड़ा देश का अपकार नवीन भेदवादी आचार्यों ने किया है। एक तो सच्चे, नित्य, सिद्ध, व्यापक ईश्वर को लोप करके, अनेक ईश्वर और उनके अनेक ही लोकों की कल्पना करके बड़ी भारी फूट को पैदा कर दिया है। दूसरे सच्चे चेतन आत्मा की भक्ति का लोप करके अनात्मा की भक्ति को फैला दिया है। फिर नवीन भेदवादी मतवादियों ने परस्पर इष्ट-देवों का भेद, परस्पर मन्त्रों का भेद, देवताओं का भेद, कण्ठी और मालाओं का भेद, तिलक और छापों का भेद, परस्पर धर्मों का भेद, मन्दिरों का भेद, मूर्तियों का भेद, परस्पर खान-पान का भेद, तीर्थों का भेद इस प्रकार अनेक भेदों को लगा कर देश में अनेक प्रकार की फूट को पैदा कर दिया है। फिर भेद नाम फूट का है, अभेद नाम मिल जाने का है। जहाँ पर कि परस्पर फूट है वहाँ पर ही सब आपत्तियाँ, सर्व प्रकार के दुख आकर प्राप्त होते हैं। जहाँ पर मेल है वहाँ पर सब प्रकार का सुख है, इसीलिए सर्व वेदों और शास्त्रों का सिद्धान्त भी अभेद में ही है। अभेद का अर्थ समवर्तन में नहीं आ सकता, क्योंकि अभेद दृष्टि ( समदृष्टि ) आत्मा में होती है। खान-पानादि समवर्तन रूप व्यवहार में अभेद नहीं घट सकता है। जिस काल में

कोई किसी वृक्ष के बीज को बोता है, उस काल में वह बीज एक ही होता है, फिर उसमें से अङ्कुर निकल कर धीरे-धीरे उसकी अनेक ही छोटी-छोटी शाखाएँ फूट-फूट निकलती जाती हैं और वह एक ही बीज बड़ी-छोटी अनेक शाखाओं वाला होकर बहुत बड़ा वृक्ष बन जाता है। इसी प्रकार जब शाक्तिक और वैष्णवादि मत पहले चले थे, तब बीज की तरह एक ही प्रकार के चले थे। पीछे ज्यों-ज्यों उन मतों में चतुर व्यक्ति पैदा होते चले गए, उन सब ने अपने-अपने नाम के वास्ते हर एक मत में अनेक शाखाओं को उत्पन्न करके तथा इन मतों में भी परस्पर की फूट को पैदा करके, उनको मनुष्य-कृत व मिथ्या करके दिखा दिया। शाक्तिक मत के अन्दर कोई काली का, कोई दुर्गा का, कोई चामुण्डा का और कोई भैरव का उपासक है, और हर एक उपासक अपनी ही देवी को ईश्वर मानता है। अनेक देवियों के होने से अनेक ही ईश्वर इनके मतों में सिद्ध हो गए। इसी तरह शैव और वैष्णव मत के अन्दर भी बहुत-सी शाखाएँ हैं। हर एक का इष्ट-देवता और मन्त्र तथा तिलक-छापे वग़ैरा सब भिन्न ही हैं, लक्ष्य एक न मिलने से जिनकी किसी प्रकार से भी एकता नहीं हो सकती है। यह सब सनातनधर्मी कहाते हैं, परन्तु ऐसा सनातन-धर्म का लक्षण कोई भी नहीं बनता, जोकि इनमें घट जाए, क्योंकि इन सब के धर्म भी अपने-अपने जुदा-जुदा हैं। जो एक के मत में धर्म है, वह दूसरे के मत में अधर्म समझा जाता है। जिस देवता को एक मत वाले ने अपना ईश्वर माना है, उसी देवता को दूसरे मत वाले ने जीव करके माना है। वे इस प्रकार से एक दूसरे के धर्म को अधर्म ही साबित करते हैं। इसी प्रकार जैन, बौद्ध, ईसाई आदि मतों में भी हर एक का धर्म जुदा-जुदा ही है। मुसलमानों के मत के अन्दर भी शिया और सुन्नी वग़ैरा बहुत सी शाखाएँ हैं, और सभी के धर्म अपने-अपने जुदा-जुदा हैं। तात्पर्य यह है कि हर एक मत वाले ने अपना-अपना परिछिन्न देहधारी एक-देशीय ईश्वर और धर्म जुदा-जुदा ही माना है। अगर धर्म जुदा-जुदा न मानते होते तो आज अपने को 'हिन्दू' कहलाने में कभी पीछे न हटते। हिन्दू सनातनधर्म से अलग होने के वास्ते ही अपने-अपने जुदा-जुदा धर्म क़ायम किए हैं, और इनके कल्पे हुए धर्म भी धर्म नहीं सिद्ध होते, और युक्ति-प्रमाण से यह भी सिद्ध होता है कि इन मतवादियों को ईश्वर के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान भी नहीं हुआ है, क्योंकि इन नवीन मतवादियों को ईश्वर के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता तो एक ही तरह से ईश्वर के स्वरूप का निर्णय करते। सो तो नहीं किया है, किन्तु उल्टी फूट को उत्पन्न करके लोगों को भ्रम-जाल में भेदवादियों ने डाल दिया है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि भेदवादी आचार्यों ने झूठे मतों को और झूठे कपोल-कल्पित धर्मों को चला कर, देश में अनेक प्रकार की फूट उत्पन्न करके, देश का बड़ा भारी अपकार किया है। जो कोई इन भेदवादियों के मतों को न माने, उसको यह लोग 'नास्तिक' कहते हैं, परन्तु आस्तिक-नास्तिक शब्दों के अर्थों का पूरा-पूरा इनको ज्ञान नहीं है। केवल अपनी-अपनी वाणी को अपवित्र ही करना जानते हैं। जिसका अपना घर स्वयम् गन्दा हो और दूसरे साफ़ घर वाले को यह कहे कि तुम्हारा घर गन्दा है तब तो वह मूर्ख ही सिद्ध होता है। इसी प्रकार यह भेदवादी लोग भी हैं। क्योंकि प्रथम तो इनके घरों में हर एक बात ऐसी बनी हुई है, जो कि परस्पर फूट पैदा करके देश की महान हानि कर रही है, फिर इन्होंने वेदों और धर्म-शास्त्रों से विरुद्ध पाखण्डों को ही अपना धर्म बना रक्खा है, और कुरीतियों को ही अपना धर्म बना कर नास्तिकपने को फैला रहे हैं। आस्तिक वही कहा जाता है जो कि वेदों की आज्ञा का पालन करता है, और सच्चे धर्मों का यथार्थ रूप से पालन करता है, खैंचातानी नहीं करता है। यह जितने भेदवादी हैं, उनमें यह बातें सब नहीं घटतीं, क्योंकि इन्होंने ईश्वर में अनेक तरह के भेद लगा कर उसका लोप ही करा दिया है।

—स्वामी शिवानन्द भारत-भिक्षु ( रमता )

❀ ❀ ❀

## पतितोद्धार का प्रयत्न

कलकत्ता भारतवर्ष का सब से बड़ा शहर है। यदि आप लन्दन को छोड़ दें, तो ब्रिटिश साम्राज्य का कोई भी नगर इसकी बराबरी नहीं कर सकता। एशिया के महान नगरों में इसका पाँचवाँ

स्थान है, समस्त भूमण्डल के शहरों में इसका नम्बर चौदहवाँ है। कलकत्ता भारतवर्ष में सब से बड़ा बन्दरगाह है, व्यापार की सब से बड़ी मण्डी है और आधुनिक विद्या-बुद्धि का सब से बड़ा तीर्थ है। परन्तु लज्जा के साथ कहना पड़ता है कि कलकत्ता भारतवर्ष में दुराचार का भी सब से बड़ा केन्द्र है। लोग कहते हैं कि कलकत्ता महलों का नगर है। लोगों के इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति हो सकती है, परन्तु यदि यह कहा जाय कि कलकत्ता पतितों का नगर है, तो इस कथन में कदाचित अधिक अतिशयोक्ति न होगी।

कलकत्ते की जन-संख्या में स्त्रियों की संख्या ( सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार ) २,९०,२६१ है। इस संख्या में पतिता नारियों की संख्या ३९,१५७ है! कलकत्ते की स्त्रियों में प्रत्येक सातवीं स्त्री को, पुरुष-समाज की पाप-वासना को तृप्त करने के लिए, घृणित जीवन बिताना पड़ता है!! फिर यह संख्या उन स्त्रियों की है, जिन्होंने बिना किसी प्रकार की लज्जा के, खुल्लमखुल्ला अपनी जीविका वेश्या-वृत्ति लिखाई है। नगर में अनुमानतः आठ-दस हज़ार स्त्रियाँ ऐसी और हैं, जिन्होंने लज्जा और सङ्कोचवश अपना पतित पेशा छिपाया है, परन्तु जो इस घृणित जीवन में लिप्त हैं। जब पतिता नारियों की संख्या इतनी भयङ्कर है, तब पतित, दुराचारी पुरुषों की संख्या कितनी होगी, इस बात का अनुमान करने से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उनकी संख्या स्त्रियों की संख्या से कई गुणा अधिक होगी। ऐसी दशा में कलकत्ते को पतितों का नगर कहने में अतिशयोक्ति के लिए स्थान ही कहाँ रह जाता है?

कलकत्ते की आलीशान कोठियों और जगमगाते बाज़ारों की आड़ में पापाचार की एक कलुषित धारा बह रही है। मारवाड़ी व्यापारियों, बङ्गाली ज़मींदारों तथा अन्यान्य श्रीमानों के विलासपूर्ण जीवन के अन्तस्तल में पाप के ज़हरीले पौधे लहलहाते हैं। समाज इन पाप के पौधों को जानता है, उनके विषैले प्रभाव को जानता है, परन्तु वह उन्हें उखाड़ फेंकने के लिए कुछ भी नहीं करता। देश में नेताओं की कमी नहीं है, वे शायद ज़रूरत से ज़्यादा हैं। कार्यकर्ताओं की कमी नहीं है, अनेकों सच्चे कार्यकर्ता भी मिल जाएँगे। परन्तु नेताओं और कार्यकर्ताओं में कितने महानुभाव ऐसे हैं, जिन्होंने समाज के इस भयङ्कर ज़हरबाद को दूर करने के लिए प्रयत्न किया है? कितनों ने पतिताओं को नारकीय जीवन से उबारने के लिए सहायता का हाथ बढ़ाया है? इन प्रश्नों के उत्तर में प्रत्येक सच्चे व्यक्ति को शर्म से सिर नीचा कर लेना पड़ेगा।

परन्तु यह कहना ग़लत है कि समाज में ऐसे महानुभावों का एकदम अभाव है, जो इस पतित-पावन कार्य के लिए भी कुछ कर सकें। कलकत्ते के कतिपय सज्जनों ने इस ओर थोड़ा-बहुत प्रयत्न आरम्भ किया है। उनके इस पुनीत प्रयत्न का कुछ वर्णन इस लेख में किया जायगा।

कलकत्ते के कुछ सज्जनों ने बङ्गाल लेजिस्लेटिव कौन्सिल में कई वर्ष पूर्व "इम्मॉरल ट्रैफ़िक एक्ट" नामक एक क़ानून पास कराया था, जिसका उद्देश सामाजिक दुराचार को दूर करना है। क़ानून-निर्माताओं ने इस बुराई की जड़ पर ही कुठाराघात करने के लिए इस बात की चेष्टा की कि इस पतित जीवन में आने वाली स्त्रियों की आमदनी पर ही प्रतिबन्ध लगाया जाय। यदि नवीन स्त्रियाँ इस पेशे में न आने पावें तो यह भयङ्कर पाप अपने ही आप दूर हो जायगा। इसके लिए स्त्रियों को बहकाने वालों तथा उनकी लिया-बेची करने वालों के लिए दण्ड निश्चित किया गया। साथ ही यह निश्चय किया गया कि दुराचार-गृहों में नाबालिग़ लड़कियाँ न रहने पाएँ। पुलीस को अधिकार दिया गया कि वे वेश्यालयों से नाबालिग़ बालिकाओं को क़ानूनन् हटा सकें। इन बालिकाओं के मुक़दमों के लिए एक विशेष बचकानी अदालत ( Juvenile Court ) बनाई गई।

क़ानून तो बन गया, मगर प्रश्न यह उठा कि पतित-गृहों से बचाई हुई नाबालिग़ बालिकाएँ रक्खी कहाँ जायँ? इस प्रश्न को हल करने के लिए कलकत्ते के तत्कालीन मेयर श्रीयुत जे० एम० सेन गुप्त ने 'मेयर्स फ़ण्ड' नामक एक फ़ण्ड खोला, जिसकी सहायता से सन् १९२६ में हाईकोर्ट के जज सर यूवर्ट ग्रीव्ज़ की अध्यक्षता में "सर यूवर्ट ग्रीव्ज़ होम" नामक आश्रम की स्थापना हुई। यह आश्रम कलकत्ते के समीप दमदम में एक भाड़े के मकान में खोला गया था। ६ बालिकाओं से

कार्य आरम्भ हुआ। 'ग्रीव्ज़ होम' में तीस बालिकाओं के रखने का स्थान था, जो शीघ्र ही भर गया। चालीस हज़ार की संख्या में तीस कितनी नगण्य संख्या है। परन्तु जगह की कमी के कारण आश्रम का अधिक प्रसार न हो सका और फ़ण्ड की कमी के कारण किसी बड़े स्थान का प्रबन्ध न हो सका। तीन वर्ष तक 'ग्रीव्ज़ होम' इसी प्रकार चलता रहा। प्रबन्ध के लिए एक अङ्गरेज़ महिला सुपरिण्टेण्डेण्ट थी और दो अन्य शिक्षिकाएँ थीं। इन सब ने बड़ी सुन्दरता से अपना काम किया।

सन् १९२९ में एक उदारमना बङ्गाली सज्जन ने इस पवित्र कार्य में हाथ बटाया। बाबू गोपालदास चौधरी ने अपने पिता स्वर्गीय गोविन्दकुमार चौधरी की स्मृति में दो लाख रुपए मूल्य की एक कोठी और बाग़ इस कार्य के लिए दान दिए। कलकत्ते से आठ मील दूर, पानिहाटी नामक स्थान में गङ्गा के तट पर एक सुन्दर बग़ीचे के बीच में यह कोठी—'गोविन्दकुमार-भवन' स्थित है। पतित-पावनी भागीरथी की लहरें दिन-रात बाग़ के चरण धोया करती हैं। कोठी और बाग़ चारों ओर की आबादी से प्रायः बिल्कुल निराला है। वहाँ अविरल शान्ति बिराजती है। नैतिक-तपेदिक़ ( Moral Consumption ) के मरीज़ों के लिए इससे अधिक उपयुक्त स्थान कलकत्ते के समीप मिलना मुश्किल है।

चौधरी महाशय ने केवल यह कोठी और सम्पत्ति ही दान नहीं दी, बल्कि ५,०००) रु० नक़द देकर कोठी की पूरी मरम्मत तथा उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी करा दिया। ३री मार्च, सन् १९२९ को 'ग्रीव्ज़ होम' दमदम से उठ कर इस 'गोविन्दकुमार-भवन' में चला आया। चौधरी महाशय ने यह भवन इसलिए दिया है कि इसमें वेश्यालयों से बचाई हुई केवल हिन्दू-नाबालिग़ लड़कियाँ ही रक्खी जायँ। यह उचित भी था। क्योंकि भिन्न धर्मों की बालिकाओं को एक साथ रखने में बड़ी दिक़्क़त थी; दूसरे सबसे अधिक पतित समाज भी तो हिन्दू-समाज ही है। हिन्दुओं के पतन का इससे बढ़ कर भयङ्कर प्रमाण क्या हो सकता है कि कलकत्ते की ३९,१५७ वेश्याओं में ३३,६७४ वेश्याएँ हिन्दू हैं !!

चौधरी महाशय ने दान की शर्तों में यह व्यवस्था भी रक्खी है कि 'गोविन्दकुमार-भवन' की बालिकाओं को धार्मिक और औद्योगिक शिक्षा भी दी जाय; उन्हें धर्म-परिवर्तन करने के लिए किसी प्रकार के प्रलोभन न दिए जायँ; उनके रिश्तेदारों का पता लगा कर इस बात की कोशिश की जाय कि वे बालिकाओं को पुनः वापस ले लें; तथा लड़कियों की तमाम शिक्षिकाएँ स्त्रियाँ ही हों ! 'गोविन्दकुमार-भवन' के प्रबन्ध के लिए पुरुषों की एक कार्यकारिणी समिति तथा स्त्रियों की एक सम्मतिदात्री समिति है। इन दोनों समितियों में अत्यन्त उच्चकोटि के चरित्रवान सज्जन और महिलाएँ हैं।

'गोविन्दकुमार-भवन' की स्थापना के बाद ही 'ग्रीव्ज़ होम' की अङ्गरेज़ महिला सुपरिण्टेण्डेण्ट छोड़ कर चली गईं और उनके स्थान पर बङ्गाल के प्रसिद्ध पुराने नेता श्री० विपिनचन्द्र पाल की पुत्री श्रीमती शोभनानन्दी सुपरिण्टेण्डेण्ट नियुक्त हुईं। श्रीमती नन्दी की देख-रेख और प्रभाव से 'भवन' को बड़ी सहायता मिली। लड़कियों की संख्या शीघ्र ही बढ़ गई। इस समय 'भवन' में ८२ लड़कियाँ हैं। इससे अधिक के लिए स्थान भी नहीं है। ये लड़कियाँ कैसे विषैले वातावरण से आती हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। फिर उनमें से बहुतेरी नैतिक पतन का विष-पान भी कर चुकी हैं। ऐसी दशा में इतनी लड़कियों पर नियन्त्रण रखना, उन पर से विषैला प्रभाव दूर करना, उनमें सदाचार का बीजारोपण करना आदि बातें अत्यन्त कठिन हैं। श्रीमती नन्दी ने इन बातों के लिए बड़ा परिश्रम किया। फल यह हुआ कि आठ महीने में ही उनका स्वास्थ्य एकदम बिगड़ गया और वे कार्य छोड़ कर चली गईं।

वर्तमान 'स्टॉफ़' में श्रीमती पी० चौधरी नाम्नी एक ईसाई महिला सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं तथा उनकी सहायता के लिए एक 'मेट्रन' और दो शिक्षिकाएँ हैं। 'भवन' के प्रबन्ध-कर्ताओं को सब से बड़ी दिक़्क़त 'स्टॉफ़' के लिए हुई, क्योंकि काम अत्यन्त कठिन है। इसके लिए बड़ी दृढ़-चरित्र और सदाचारिणी स्त्रियों की आवश्यकता है। अतः काफ़ी योग्यता रखने वाली हिन्दू-महिलाओं का मिलना बहुत कठिन है। फिर फ़ण्ड की कमी के कारण 'भवन' बहुत ऊँचे वेतन भी नहीं दे सकता है।

'गोविन्दकुमार-भवन' शायद अपने ढङ्ग की देश में

# पतितोद्धार का प्रयत्न

'गोविन्दकुमार-भवन' और उसकी अधिवासिनी

महिला-सम्मति-दात्री समिति की कुछ सदस्याएँ व कुछ आश्रम-वासिनी

'भवन' की लड़कियाँ झूला झूल रही हैं

'भवन' के 'ट्यूब वेल' पर कुछ लड़कियाँ

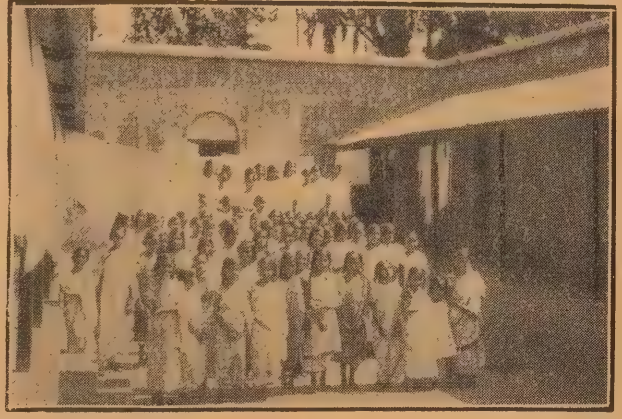

रसोई-घर के आँगन में

सब से पहली संस्था है। उसके कार्यकर्ताओं के सामने इस प्रकार की किसी अन्य संस्था वालों के अनुभव भी नहीं थे, जिनसे उन्हें कुछ मदद मिल सकती। ख़ैर, पाँच वर्ष तक इस संस्था का सञ्चालन करने के बाद सञ्चालकों को बहुत कुछ लाभदायक अनुभव प्राप्त हुए। पहले 'भवन' में ६ वर्ष से १६ वर्ष तक—सभी आयु की लड़कियाँ भरती की जाती थीं, परन्तु पाँच वर्ष के अनुभव के बाद यह मालूम हुआ कि सभी आयु की लड़कियों को भरती करके सुधार की आशा करना व्यर्थ है। अतः अब यह निश्चय किया गया है कि १२ वर्ष से अधिक अवस्था वाली लड़कियाँ न भरती की जायँ।

भवन में जो लड़कियाँ आती हैं, उनमें से कुछ तो भगाई हुई होती हैं और कुछ ऐसी स्त्रियों की पुत्रियाँ हैं, जो स्वयं घृणित जीवन व्यतीत करती हैं। पहले लड़कियों की माताएँ महीने में एक बार अपनी पुत्रियों को देखने आती थीं, मगर अनुभव से ज्ञात हुआ कि इन पतिता माताओं के संसर्ग का प्रभाव हानिकर होता है। अतः अब उनका आना-जाना बन्द कर दिया गया है। अब प्रत्येक तीसरे-चौथे महीने एक उत्सव मनाया जाता है, जिसमें लड़कियों की माताएँ, लड़कियाँ तथा 'भवन' से सहानुभूति रखने वाली अन्य महिलाएँ सम्मिलित होती हैं। इन उत्सवों में लड़कियाँ गाना गाती हैं, 'ड्रिल' करती हैं तथा अन्यान्य खेल-कूद करती हैं, और किसी उदार मित्र की सहायता से उन्हें बढ़िया मिठाई आदि का जल-पान कराया जाता है।

लड़कियों को लोअर-प्राइमरी शिक्षा देने का प्रबन्ध है। परन्तु साथ ही साथ कुछ अन्य व्यावहारिक बातों की शिक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। उन्हें घर-गृहस्थी का काम, सीना-पिरोना, कपड़े काटना, दर्ज़ीगीरी, सूत कातना, बिनना, 'नर्स' का काम तथा बाग़बानी आदि बातें सिखाई जाती हैं।

'गोविन्दकुमार-भवन' के कार्यकर्ताओं की राह में धन की कमी के कारण भी बड़ी अड़चन पड़ती है। एक लड़की के रखने, खिलाने-पिलाने, कपड़े-लत्ते और देख-भाल का औसत व्यय २३) प्रति मास पड़ता है। सरकार १०) प्रति मास प्रति लड़की के हिसाब से 'भवन' को सहायता देती है। बाक़ी १३) प्रति लड़की के लिए प्रतिमास 'भवन' को जनता से माँगने पड़ते हैं। गत वर्ष 'भवन' का ख़र्च पन्द्रह हज़ार रुपए से कुछ अधिक हुआ था। इसमें से ७८००) रुपए सरकार ने और १२००) कलकत्ता कॉर्पोरेशन ने दिए थे, ८००) स्थायी फ़ण्ड के सूद से प्राप्त हुए और बाक़ी सब रुपया जनता से माँग कर पूरा किया गया।

मगर सब से बड़ा प्रश्न यह है कि 'गोविन्दकुमार-भवन' से निकलने पर इन लड़कियों का क्या किया जाय। सरकारी क़ानून के अनुसार ये लड़कियाँ जब तक बालिग़ न हों, तब तक 'भवन' में रक्खी जा सकती हैं। बालिग़ होने पर वे जहाँ चाहें जाने के लिए स्वतन्त्र हैं। यदि 'भवन' से निकल कर वे पुनः उसी पाप-पङ्क में फँस गईं तो 'भवन' की सारी मेहनत ही वृथा हो जायगी।

गत दो वर्षों में 'भवन' से निकली हुई लड़कियों में से दो लड़कियों के विवाह कर दिए गए और वे सुख से जीवन व्यतीत कर रही हैं। एक लड़की उसके पति के सुपुर्द कर दी गई है, मगर इस शर्त पर कि लड़की की माँ लड़की से किसी भी दशा में न मिलने दी जाय। साथ ही भवन की महिला-अधिकारिणी को लड़की से बराबर मिलने-जुलने का अधिकार हो। एक लड़की अवधि की समाप्ति पर अपनी माँ के पास भेज दी गई। एक अन्य लड़की ने अभी 'भवन' में रह कर ही कार्य करना निश्चित किया है, जब तक उसके लिए कोई और उपयुक्त स्थान नहीं मिलता। दो लड़कियों ने पढ़ने-लिखने में विशेष रुचि और दक्षता का परिचय दिया, अतः उन्हें हाई-स्कूल में उच्च शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध कर दिया गया है, जहाँ वे सन्तोषजनक रीति से उन्नति कर रही हैं। केवल एक लड़की 'भवन' से अपनी अवधि समाप्त करने के बाद अपनी माँ के पास—जो एक बाज़ारू स्त्री है—लौट गई। उसके लिए 'कलकत्ता हॉस्पिटल' में 'नर्स' का काम करने के लिए सब प्रबन्ध कर दिया गया था, परन्तु उस पर उसकी माँ का विषैला प्रभाव इतना अधिक पड़ा कि वह उसकी उपेक्षा न कर सकी।

इस समय एक ऐसी संस्था की अत्यन्त आवश्यकता है, जहाँ 'गोविन्दकुमार-भवन' से निकलने पर, जो लड़कियाँ चाहें, रह सकें तथा जो उन्हें उनके भावी जीवन के संस्थापित होने में सब प्रकार की सहायता दे सके। 'भवन' के प्रबन्ध के लिए महिलाओं की जो सम्मतिदात्री समिति है, उसने इस विषय पर एक 'सब-

कमिटी' नियुक्त की थी। इस 'सब-कमिटी' ने ख़ूब सोच विचार करके इस प्रकार के आश्रम बनाने की योजना तैयार की है, जो 'भवन' से निकलने पर लड़कियों की देख-भाल और सहायता कर सके। 'गोविन्दकुमार-भवन' के संस्थापक श्रीयुत गोपालचन्द्र चौधरी ने इस आश्रम के लिए, 'भवन' के समीप ही तीन बीघा भूमि का एक टुकड़ा भी उदारतापूर्वक दान कर दिया है। मगर पैसे की कमी के कारण आगे का सब काम रुका है।

'गोविन्दकुमार-भवन' में भी स्थान की कमी पड़ रही है। उसमें जितनी जगह है, उससे अधिक लड़कियाँ हैं। 'भवन' की इमारत पर एक तल्ला और बनाया जा सकता है, मगर उसके लिए ३०,०००) रु० की आवश्यकता है। धन की कमी से उसमें किसी प्रकार का विस्तार असम्भव हो रहा है।

'भवन' की लड़कियों में अधिकांश बङ्गाली हैं, जो स्वाभाविक ही है, परन्तु दो मास पूर्व जब इन पंक्तियों के लेखक ने 'भवन' को देखा था, तब उसमें कई मारवाड़ी लड़कियाँ भी थीं।

कलकत्ते में श्रीमानों की कमी नहीं है। हमारे सहस्रों श्रीमान्—विशेष कर मारवाड़ी—अपनी आत्मा को कलङ्कित करने, शरीर को दूषित करने और स्त्रियों को पतिता बनाने में प्रतिवर्ष लाखों ही नहीं, बल्कि करोड़ों रुपए व्यय कर देते हैं। क्या इन श्रीमानों में दस-बीस भी ऐसे नहीं हैं, जो इन पतिताओं के उद्धार में सहायता देकर पतित-पावन बन सकें? हम अपने मारवाड़ी और देशवासी धनिकों से अपील करते हैं कि वे इस पवित्र कार्य में पूर्ण आर्थिक सहायता प्रदान कर, समाज को पवित्र बनाने का पुण्य प्राप्त करें।

इस बात की भी बहुत बड़ी आवश्यकता है कि संयुक्त-प्रान्त में भी इस प्रकार के आश्रम खोले जायँ। संयुक्त-प्रान्त के नगरों में भी पापाचार कुछ कम नहीं है। यह ठीक है कि यहाँ पतिताओं की इतनी बड़ी संख्या नहीं मिलेगी, जितनी कलकत्ते में है, मगर यहाँ कलकत्ते की बराबरी का कोई नगर भी तो नहीं है! नगरों के आकार के अनुरूप पतिताओं की भी संख्या मौजूद है। कविवर मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में :—

व्यभिचार ऐसा बढ़ रहा है, देख लो; चाहे जहाँ,
जैसा शहर, अनुरूप उसके एक 'चकला' है वहाँ।

जहाँ तक मैं जानता हूँ, प्रान्त में इस प्रकार की कोई सुसङ्गठित और सुपरिचालित संस्था नहीं है, जो समाज के इस कोढ़ का इलाज करने की चेष्टा करती हो। हिन्दू-महासभा के आन्दोलन के फलस्वरूप दो-चार स्थानों में "अबलाश्रम" नाम की संस्थाएँ खुली हैं, मगर वे ऐसे अवाञ्छनीय पुरुषों के हाथों में हैं, जिनसे मर्ज़ के बढ़ने की सोलह आना सम्भावना है। क्या संयुक्त-प्रान्त-निवासी इस ओर ध्यान देंगे?

— 'दण्डपाणि'

❀ ❀ ❀

# बन्दी की बहिन की राखी!

देव मन्दिर
श्रावण, शुक्ला त्रयोदशी

प्राणोपम मेरे भैया,

आज कई दिनों पश्चात् तुम्हें पत्र लिखने लगी हूँ। इतने दिनों तक, तुम्हारी आज्ञा के अनुसार, मैं पत्र नहीं लिख सकी, पर आज तो हाथ नहीं मानते। कदाचित् तुम पूछो, क्यों? वही बतलाती हूँ।

भैया, तुम्हें पता है, परसों रक्षा-पूर्णिमा है और यह वही दिन है, जिस दिन बहिनें भाइयों को रक्षा-बन्धन के पुनीत बन्धन में बाँध कर, अपनी रक्षा का भार उन पर डालती हैं। भैया, यह प्रथम ही अवसर है, जब तुम मेरे पास नहीं, वरन् दूर, बहुत दूर, किसी बन्दी-गृह की भीषण ऊँची-ऊँची प्राचीरों से घिरी हुई, छोटी सी कोठरी में बैठे होगे।

क्या मेरी इस हृदय-विदारक व्यथा का अनुभव—उनके अतिरिक्त, जो कि मेरी जैसी ही अभागिनी बहिनें हैं—कर सकता है? पर नहीं, व्यथा कैसी? यह तो मोहजनित आत्म-विडम्बना है। इसी विडम्बना को जाने मुझे कहाँ से कहाँ ले जाना है! मैं बहुत चाहती हूँ कि मेरे हृदय को शान्ति प्राप्त हो, मैं सन्तोषपूर्वक इस कष्ट का भार वहन करूँ, पर दुखों की आँधी निरन्तर कष्टप्रद होती चली जा रही है।

भैया, गत वर्ष की पूर्णिमा को मैं क्या जानती थी कि इस वर्ष तुम्हारे राखी न बाँध सकूँगी ! आह भैया, यदि उस समय जानती होती कि जननी जन्म-भूमि की बेड़ियों को ढीली करते हुए, तुम स्वयं बेड़ियाँ पहन लोगे, तो मैं अनेक वर्षों के लिए तुम्हें अनेक राखियाँ पहना कर, अपने हृदय का अरमान निकाल लेती। हे ईश्वर, क्या फिर भी समय होगा, जब मैं फिर अपने भैया को उसी प्रकार राखी बाँध सकूँगी ?

यह पत्र तुम्हें उस समय मिलेगा, जब सौभाग्यवती बहिनें प्रसन्नतापूर्वक अपने भाइयों को राखी बाँध रही होंगी। और मैं ? आह, मैं अभागिनी केवल पत्र लिख कर ही परितोष कर रही हूँ। पता नहीं, वह भी तुम तक पहुँचेगा अथवा नहीं।

भैया, तुम जानते हो, कि इसी मास में ससुराल से बहिनें झूले झूलती हुई, भाइयों के गीत गातीं तथा स्नेह-पत्रिकाएँ भेजती हैं, कि भाई उन्हें बिदा करा ले जाएँ। पर भैया, तुम्हारी यह अभागिनी बहिन तुम्हारे ही स्नेहमय घर में रहती हुई, तुम्हारी छत्रछाया से वञ्चित है। इससे अधिक और क्या अभाग्य होगा ?

परसों जब मेरी एक सखी ने मुझसे कहा, "विजया, रक्षा-बन्धन आ रहा है। मैं तो भैया को राखी बाँधने घर जा रही हूँ।" तो मेरी जो दशा हुई, क्या उसका अनुमान तुम लगा सकते हो ? अपनी विवशता पर मैं मन मार कर रह गई। केवल इस विचार से मुझे कुछ सन्तोष हुआ कि मेरा वीर भाई बन्दीघर में माँ की सेवा के लिए गया है।

मैं राखी के उस सुन्दर डोरे के साथ ही, हृदय की आन्तरिक भावनाएँ तथा अपने स्नेह की सुधामय जल-राशि द्वारा आशीर्वाद देती हूँ कि "विश्वनियन्ता तुम्हारे जीवन की इस भीषण परीक्षा में तुम्हें उत्तीर्ण करें और यह राखी का डोरा कवच के सदृश सदैव तुम्हारी रक्षा करता रहे।"

स्नेह की आन्तरिक भावना के साथ,

तुम्हारी प्यारी बहिन,

—विजया

❀ ❀ ❀

# महिलाओं के लिए श्री० सेखसरिया पारितोषिक

अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कलकत्ते वाले अधिवेशन में कलकत्ते के प्रसिद्ध व्यापारी और साहित्य-प्रेमी श्रीमान् सीताराम जी सेखसरिया ने महिलाओं को ५००) प्रति वर्ष पुरस्कार देने के लिए, २५००) देने की कृपा की थी। सम्मेलन की कार्यकारिणी समिति ने, इस पारितोषिक के सम्बन्ध में निम्न-लिखित नियम बनाए हैं :—

( १ ) इस वर्ष ( सम्वत् १९८८ ) का पारितोषिक श्रावण की पूर्णिमा तक की समस्त प्रकाशित पुस्तकों में से सर्वोत्तम पुस्तक की जीवित लेखिका को दिया जाय।

( २ ) पुस्तक भेजने की अन्तिम तिथि ३१ अक्टूबर रक्खी जाय।

( ३ ) पुस्तकों की ५-५ प्रतियाँ मँगाई जायँ।

( ४ ) सम्वत् १९८९ का पारितोषिक भाद्रपद कृष्ण १, सम्वत् १९८८ से श्रावण की पौर्णिमा सम्वत् १९८९ तक की समस्त प्रकाशित पुस्तकों में से सर्वोत्तम पुस्तक की जीवित लेखिका को दिया जाय।

( ५ ) निर्णायकों का चुनाव नीचे लिखे अनुसार होगा :—

जिस वर्ष, जिस विषय की पुस्तकों पर पारितोषिक देना होगा, उस विषय के १५ सुयोग्य और अनुभवी विद्वानों की नामावली, पुस्तकों के लिए निश्चित तिथि से २ मास पूर्व सर्व-साधारण के सामने उपस्थित कर दी जायगी, और उनमें से बहुमत द्वारा निर्वाचित ५ सदस्य, पत्र डाल कर चुने जायँगे।

इस वर्ष के लिए १५ नाम ये हैं :—

( १ ) कुमारी चन्द्रवती त्रिपाठी, प्रयाग, ( २ ) श्रीमती पद्माबाई राव, काशी ( ३ ) श्रीमती कमलाबाई किबे, इन्दौर ( ४ ) श्रीमती तोरणा देवी, लखनऊ ( ५ ) श्रीमती ललिता पाठक, प्रयाग ( ६ ) श्री० ज्योतिप्रसाद जी मिश्र "निर्मल", प्रयाग ( ७ ) श्री० साहित्यरत्न भागीरथप्रसाद जी दीक्षित, लखनऊ ( ८ ) श्री० साहित्यरत्न शम्भूदयाल जी सक्सेना, बीका-

नेर ( ९ ) श्री० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय, बनारस ( १० ) श्री० श्यामसुन्दर दास जी, बनारस ( ११ ) श्री० पद्मसिंह जी शर्मा, बिजनौर ( १२ ) श्री० जगन्नाथ दास जी रत्नाकर, बनारस ( १३ ) श्री० जगन्नाथप्रसाद जी चतुर्वेदी, मुँगेर ( १४ ) श्री० कृष्णकान्त जी मालवीय, प्रयाग ( १५ ) श्री० लक्ष्मीधर जी बाजपेयी, प्रयाग।

प्रथम पारितोषिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आगामी अधिवेशन में, जो झाँसी में दिसम्बर मास में होगा, दिया जायगा। हिन्दी-लेखिकाओं को अपनी सर्वोत्तम रचनाओं की ५-५ प्रतियाँ सम्मेलन-कार्यालय में ३१ अक्टूबर, सन् १९३१ के पहिले अवश्य भेज देना चाहिए।

—दयाशङ्कर दुबे, एम० ए०, एल्-एल्० बी०

प्रबन्ध मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन

❀ ❀ ❀

## चित्र

"वाह, चित्रकला तो आपकी अनुगामिनी सी है"—वीणा ने वीणा-विनिन्दित स्वर में कहा।

चित्रकार ललचाई निगाह से वीणा की प्रतिकृति के सौन्दर्य को निरखने लगा।

"मुझसे इसमें तनिक भी फ़र्क़ नहीं है। वाह, कितना सुन्दर है!"—वीणा उसी आवाज़ में बोली।

चित्रकार—स्वभाव-सुन्दर वस्तुओं के चित्रण में सचमुच अनोखापन और गौरव है, वीणा!

वीणा—मैं क्या सुन्दर हूँ?

चित्रकार—निस्सन्देह, हाँ।

वीणा—पराग का पारखी कौन है?

चित्रकार—भौंरा।

वीणा—और सौन्दर्य का?

चित्रकार—जगत्।

वीणा—नहीं चित्रकार, सौन्दर्य की परीक्षा बहुत कठिन है, दुरूह है।

चित्रकार—क्यों?

वीणा—एक बार प्रेम ने सौन्दर्य को देखा है। इन निगाहों से सुन्दरता की झलक नहीं दीखेगी।

वीणा की आँखों में आँसू छलक आए। ये शब्द वीणा के पास थाती या गिरों थे। कहते समय उसके कण्ठ में कम्पन आ गया।

वीणा—चित्रकार, मेरी एक विनीत प्रार्थना है।

चित्रकार—क्या?

वीणा—बढ़ते क़दम को इस राह से लौटा लो।

बिना उत्तर की प्रतीक्षा के वीणा आगे बढ़ गई।

चित्रकार वीणा को नहीं समझ सका। उसने बड़ी आशा रख कर चित्र को तैयार किया था। वीणा चित्र ले जाना भूल गई। चित्रकार मार्मिक व्यथा से बेचैन हो गया।

कुछ देर बाद वीणा फिर लौट आई। चित्रकार चित्र लिए वहीं बैठा था। वीणा को देख कर उसने कहा—चित्र लेती जाओ, वीणा!

वीणा—मैं निर्धन हूँ, इसका मूल्य दे सकूँगी?

चित्रकार—मैं मूल्य नहीं लूँगा।

वीणा—तो?

चित्रकार—इस चित्र की क्या बिसात? तुममें जितने गुण हैं वीणा, उनके आगे, एक क्या सैकड़ों चित्र तुच्छ हैं।

वीणा—तो मैं एक और चित्र चाहती हूँ।

चित्रकार फड़क उठा, उसकी बाछें खिल गईं। उसने पूछा—कैसा चित्र, वीणा?

वीणा—सवेरे आवें तो बताऊँ।

❀ ❀ ❀

वीणा और चित्रकार पास ही खड़े थे। वीणा के चेहरे पर गम्भीरता थी, आँखों में प्रतीक्षा थी और थी आँचल में खिले कुसुमों की माला। सहसा कुछ कोलाहल सुन पड़ा। वीणा सजग हो गई।

"वन्दे मातरम्!", "भारत-माता की जय!!" के नाद पर वीणा आगे बढ़ी। सत्याग्रहियों का एक जत्था बन्दी होकर कारागार की ओर जा रहा था।

दृढ़तापूर्वक अपने मन को रोक कर चित्रकार वीणा को देखने लगा।

वीणा ने एक सत्याग्रही के कण्ठ में सप्रेम माला

डाल कर कहा—प्रियतम, जाओ, तुम्हारा मार्ग फूल-सा कोमल हो !

वीणा फिर चित्रकार के पास लौट आई । उसका मुँह लाल हो रहा था । उसने चित्रकार को लक्ष्य कर कहा—अपनी बातों पर अटल रह कर एक ऐसा चित्र बनाओगे, चित्रकार ?

—साहित्याचार्य "मग"

❀ ❀ ❀

# नाग-पञ्चमी तथा गुड़ियाँ

साधारणतः सभी देशों में, विशेषतः हमारे भारतवर्ष में, प्रतिवर्ष बीसों त्योहार आते हैं और चले जाते हैं। यह त्योहार क्यों मनाए जाते हैं ? इनका उद्देश्य क्या है ? विशेष ऋतु में विशेष त्योहार ही क्यों मनाए जाने की प्रथा है ? इनके मनाए जाने की रीतियाँ विशेष नियमों से क्यों नियन्त्रित रक्खी गई हैं ? इनसे क्या लाभ हैं ? इत्यादि प्रश्नों के यथेष्ट उत्तर सर्व-साधारण तो क्या, मैं समझती हूँ कि शिक्षित वर्ग में से भी बहुत कम सज्जन दे सकेंगे। यह कितनी लज्जा और खेद की बात है कि कोई उत्सव या समारोह प्रतिवर्ष हम धूम-धाम से मनाएँ, उसके लिए विशेष रूप से अमूल्य समय और धन का व्यय करें, पर यह न समझें कि यह क्यों और किसलिए करते हैं ! इस हीनतात्मक लज्जा और पश्चात्ताप के कटु अनुभव की बात कोई उन सहृदय भाइयों अथवा बहिनों से पूछे, जिनसे किसी पर्व या त्योहार पर किसी विदेशी द्वारा उस त्योहार के सम्बन्ध में उपरोक्त प्रश्न किए जाने पर, उन्हें होता है।

प्रत्येक त्योहार के सम्बन्ध में सम्पूर्ण बातें बतलाना तो बड़े ही ऐतिहासिक, मर्मज्ञ और धुरन्धर मननशील विद्वानों और विदुषियों का काम है। यद्यपि आज हमारे देश में ऐसे महानुभावों का अभाव नहीं, किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि अभी तक इस ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया गया है। हाँ, कभी-कभी किसी-किसी पत्र या पत्रिका में थोड़ा-बहुत लिख दिया जाता है। किन्तु दार्शनिक दृष्टि से वह बहुत ही न्यून और अपर्याप्त होता है। क्या मैं आशा करूँ कि हमारे माननीय विद्वान भाई और बहिनें इस ओर ध्यान देने की कृपा करके जनता के इस जातीय अज्ञान को दूर करने में सहायता प्रदान करेंगे ?

त्योहार हमारी जगमगाती हुई जातीयता निर्मल राष्ट्रीयता और सात्विक धर्म-परायणता के सजीव चिन्ह हैं। त्योहार हमारी कुवासनाएँ दूर करके हमें सीधे और सच्चे मार्ग पर ले जाने वाले हैं। त्योहार हमारे स्वास्थ्य की रक्षा के प्रबल सहायक हैं। त्योहारों में या तो हम अपने किसी अलौकिक प्रतिभा-सम्पन्न जातीय, राष्ट्रीय अथवा धार्मिक नेता की स्मृति में सङ्कीर्तन करते हैं या किसी नीति और धर्म-संयत प्रणाली के प्रचार का उत्साहमय समारोह करते हैं अथवा किसी कुप्रथा के निवारण के लिए प्रभावशाली और मनोरञ्जक प्रदर्शन करते हैं। यद्यपि इनका रूप समय के फेर से इतना परिवर्तित हो गया है कि इनसे लाभ के स्थान में हानि पहुँचने लगी है। उदाहरणार्थ मैं इसी नाग-पञ्चमी के पूजनीय त्योहार को आप महानुभावों के सम्मुख उपस्थित करती हूँ, क्योंकि प्रत्येक त्योहार के विषय में लिखने का न तो इस छोटे से लेख में स्थान ही है और न अपने में इतना ज्ञान ही है।

श्रावण की शुक्ल पक्ष की पञ्चमी के दिन, जहाँ तक मैं समझती हूँ, भारतवर्ष के अधिकांश भागों में नाग-पञ्चमी का त्योहार मनाया जाता है। इसके विषय में जो कुछ मैंने समझा व मनन किया है, निवेदन करती हूँ। आशा है कि सहृदय पाठक और पाठिकाएँ इस पर ध्यान देने की कृपा करेंगे।

नाग-पञ्चमी के दिन ही यू० पी० में गुड़ियों का भी उत्सव मनाया जाता है। सभी त्योहारों की वास्तविकता को खोजने के लिए, उनके मनाए जाने की रीतियों पर विचार करना होता है। खीरी आदि तराई के ज़िलों में, जहाँ कि भूमि बहुत उपजाऊ है और पशु अधिक संख्या में पाले जाते हैं, जिनका निर्वाह केवल जङ्गलों की हरी-हरी वनस्पति चर कर ही होता है, ऐसा देखा गया है कि वहाँ की जनता आषाढ़ के महीने से श्रावण मास के उस दिन तक कि जब तक नाग-पञ्चमी के दिन नाग-देवता को अपने घरों के कोने-कोने में पत्तलों में दूध रख कर प्रसन्न नहीं कर लेती, दूध-सेवन नहीं करती है। इसके

लिए यह कहावत प्रसिद्ध है कि जो नाग-देवता की पूजा किए बिना दूध सेवन करेगा, वह कष्ट भोगेगा। उन लोगों का ऐसा विश्वास है कि पूजा के बाद दूध में विद्यमान विष नाग-देवता पी जाते हैं। अब यहाँ पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि पूर्वजों ने आगे आने वाली अज्ञान सन्तान को कष्टों से बचाने के लिए क्या-क्या उपाय नहीं ढूँढ़ निकाले!

ज्येष्ठ मास की कठिन गर्मी के बाद तप्त भूमि पर ज्योंही वर्षा का पानी गिरा कि उसके अन्दर की गर्मी हरे-हरे पौधों के रूप में बाहर निकलती है, जिसको कि महीनों पहले से अधभूखे पशु भर-पेट खाते हैं। इस प्रकार पृथ्वी की उमड़ी हुई गर्मी घास द्वारा पशुओं के पेट में पहुँचती है और अपना विषैला प्रभाव वहाँ भी डालती है। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि उन दिनों पशुओं को बहुधा पतले दस्त शुरू हो जाते हैं। फिर भला उनके पेट के उस विषैले पदार्थ का प्रभाव उनके दूध पर क्यों न पड़े? जिन स्थानों की यह कथा है, वहाँ पर लोग नाग-पञ्चमी से पहले दूध का सेवन नहीं करते और जो इस नियम का उल्लङ्घन करते हैं, उनको क्वार-कार्तिक में शीत-ज्वर की शिकायत अवश्य रहती है। अतः पूर्वजों ने इन सब पर विचार करके ही ऐसे बन्धन नियत किए। अब रहा नाग-देवता को प्रसन्न करना, और उनकी दुष्ट प्रकृति होते हुए भी, देवता मानना। इसके विषय में यह कहना कि आदिकाल से अब तक भारतवर्ष में आर्य-जाति का इतिहास बताता है कि इस जाति का यह सदैव नियम रहा है कि जिसने इसके साथ तनिक भी उपकार किया, उसकी यह सदैव के लिए ऋणी हो जाती रही है और उसके लिए जो बड़े से बड़ा सम्मान इस जाति से सम्भव हुआ, करती रही है। इच्छा-शक्ति पर इसे पूर्ण विश्वास रहा है। इतिहास में वर्णन है कि हमारे ऋषियों ने जङ्गलों में जाकर वहाँ के रहने वाले दुष्ट जानवरों को अपने वश में कर, उनसे अपनी सेवा कराई, फिर उनके लिए नाग-देवता को दूध पिला कर उनके प्राकृतिक क्रोध को शान्त कर लेना कोई असम्भव बात नहीं। इस प्रकार वर्षा-ऋतु में नागों का अधिक दौरदौरा होने से आर्य-जाति ने उन्हें दूध पिला कर प्रसन्न कर उनसे मैत्री कर ली होगी और अपनी जाति को उनके द्वारा कष्ट न पहुँचने के उपकार के बदले में उनकी गणना अपने देवताओं की श्रेणी में की होगी, ऐसा प्रतीत होता है।

यू० पी० में मनाए जाने वाले गुड़ियों के त्योहार के विषय में मेरा अनुमान इस प्रकार है :—

जहाँ-कहीं भी हो, गुड़ियों का खेल, मेरी समझ में, बहुत हानिकारक है; और विशेषकर उस रूप में जैसा कि हमारे यहाँ खेला जाता है। परन्तु यह भी मान लेना पड़ेगा कि हमारे पूर्वजों ने कोई प्रथा बिना सोचे-समझे नहीं चलाई होगी। अब प्रश्न यह उठता है कि गुड़ियों के खेल की प्रथा के लिए पूर्वजों को कौन सी आवश्यकता हुई।

ऐसा प्रतीत होता है कि अभी एक ही सदी पहले के पूर्वजों को गुड़ियों के खेल के प्रचार करने की आवश्यकता पड़ी, जिस समय मुसलमानी सल्तनत का दौरदौरा था और हिन्दुओं की, विशेषकर क्षत्रियों की, यौवनावस्था में सुन्दरता से भरपूर बालिकाएँ कामान्ध मुसलमान नवाबों व सिपहसालारों द्वारा जबरन छीनी जाकर उनके घरों की गृह-स्वामिनी बनाई जा रही थीं और हमारे राजा-महाराजा अपनी गृह-कलह से पतन को पहुँच चुके थे, उनकी नसों का ख़ून ठण्डा पड़ चुका था और तरह-तरह के प्रलोभनों द्वारा बुरी तरह नष्ट किए जा चुके थे। अपने धर्म को बचाने के हेतु हज़ारों देवियाँ आत्म-हत्या द्वारा अपने कुल को उज्ज्वल बना रही थीं। धर्मात्मा पुरोहितों ने यवनों की धार्मिक पुस्तकों का अवलोकन कर, आर्य-जाति के उद्धार के लिए उनकी मज़हबी रुकावटों को ढूँढ़ निकाला और उस आपत्ति के समय अपनी वैदिक आज्ञाओं का उल्लङ्घन कर अन्यायियों के पापी पञ्जे कुछ ढीले करने की युक्ति निकाली।

जहाँ पर हज़रत मुहम्मद ने अपने अनुयायियों को चार औरतों तक से निकाह कर लेने की आज्ञा दे रक्खी थी, वहाँ उनकी एक यह बन्दिश भी थी कि कोई भी मुसलमान किसी भी ब्याही स्त्री को उस समय तक निकाह नहीं पढ़ा सकता, जब तक कि उसका पूर्व पति तलाक़ न दे दे। कुछ दिनों तक तो यह बात रही, परन्तु जब मुसलमान इस बन्दिश को तोड़ने लगे तो पुरोहितों ने राजाओं को यह सम्मति दी कि वे लोग वेदों की उस शिक्षा, कि बालक और बालिकाओं का पाणि-

ग्रहण संस्कार प्रौढ़ावस्था में हुआ करे, से विमुख हो अपनी बालिकाओं के विवाह १२ वर्ष के प्रथम ही कर दिया करें, जिससे कि रजोधर्म में पदार्पण करने के पहिले ही, जब तक उनकी यौवनावस्था की सुन्दरता का निखार होने का समय आवे, वे किसी की गृहलक्ष्मी बन जावें। इस प्रकार कामान्ध नवाबों और उनके अधिकारियों को इस पाप-कर्म से वञ्चित रख, अपनी अबोध बालिकाओं के सर पर अनिच्छित बोझ की गठरी सौंप, सर्वदा के लिए उनको एक अन्ध-कूप में ढकेल दें। यह सलाह अन्याय से पीड़ित आर्य-प्रजा को जीवन-दान के समान प्रतीत हुई। सभी ने एक चित्त से पुरोहितों की उस सूझ पर धन्य-धन्य कह उसका अनुसरण किया। यहीं तक नहीं, सर्वदा के लिए वेदाज्ञा पर स्याही पोत कर पं० काशीनाथ सरीखे विद्वानों ने शीघ्रबोध आदि पुस्तकें रच डालीं।

जब यह तय हो गया कि १२ वर्ष की आयु से पहले ही लड़के-लड़कियों के विवाह रचे जायँ, तो यह आवश्यक हो गया कि कोई ऐसी युक्ति हो, जिससे कि अबोध बालकों तथा बालिकाओं को विवाह-सम्बन्धी रहस्य का ज्ञान और अनुभव कराया जाय और वह युक्ति थी "गुड़ियों का खेल"। इसी नाशकारी खेल द्वारा अबोध बच्चों को स्त्री-पुरुष सम्बन्धी पूरा कोर्स कण्ठस्थ कराया जाने लगा। परिणाम यह हुआ कि आज कोई ऐसा परिवार नहीं, जोकि डॉक्टर या वैद्य के सहारे बिना चल सकता हो।

जब सुधारकों ने देखा कि गुड़ियों के खेल से बच्चों में जवानी के भाव कम उम्र में ही पैदा होने लगे और सन्तान बहुत निर्बल होने लगी, तो उन्होंने इस खेल के विषैले प्रभाव को दूर करने में भरसक प्रयत्न किया और जनता में इस खेल के प्रति इस सीमा तक घृणा पैदा कर दी कि प्रत्येक लड़की ने इन सुन्दर गुड़ियों को घर से बाहर फेंकना प्रारम्भ किया और लड़कों ने बाहर जहाँ-कहीं भी पड़ी हुई पाईं, लाठी-डण्डों से पीट-पीट कर उनके प्रत्येक अङ्ग को छिन्न-भिन्न कर दिया और इस घृणा को सर्वदा जीवित रखने के लिए ही सुधारकों ने प्रतिवर्ष प्रदर्शन करने की सम्मति दी। इसके लिए श्रावण का महीना इस कारण नियत किया कि इस महीने में प्रथम बार वर्षा होने के बाद ही जगह जगह कूड़ा-करकट के सड़ने से वायु अशुद्ध हो जाती है और इस प्रकार स्वास्थ्य के बिगड़ने का बहुत भय रहता है। इसको दूर करने के लिए यह आवश्यक था कि लोग इन दिनों में ब्रह्मचर्य का पालन करें। अतः इस महीने में प्रत्येक स्त्री को अपने पीहर में रखना निश्चय हुआ, जिससे जिधर निगाह पड़े, भाई-बहिन के ही जोड़े दिखाई दें और इस प्रकार स्वप्न में भी ब्रह्मचर्य के खण्डन की सामग्री न रह जाय।

गुड़ियों का त्योहार आज भी मनाया जाता है, पर उससे लाभ के बदले हानि हो रही है। गुड़ियों से घृणा करने के बदले बच्चों का उस ओर प्रेम अधिक बढ़ रहा है। लड़कियाँ चिथड़ों से फेंकने योग्य गुड़ियाँ बना कर बाहर फेंक आती हैं और उसी समय से सुन्दर- सुन्दर गुड़ियाँ बना-बना, अपने घरों में पास-पड़ोस के बच्चों को इकट्ठा कर, उनके ब्याह आदि के उत्सव मनाना प्रारम्भ करती हैं। यहीं तक नहीं, घरों के बड़े-बूढ़े लोग अपनी गाढ़ी-कमाई के धन को व्यय करके बाज़ारों से भी गुड़ियाँ लाते हैं।

अन्त में मैं "चाँद" के सुयोग्य पाठक और पाठिकाओं से अनुरोध करती हूँ कि वे कृपा कर गुड़ियों के त्योहार के मनाने का जो वास्तविक उद्देश्य है, उसे समझें और अपनी पहुँच के स्थानों में इस हानिकारक खेल के बन्द करने का वैसा ही उद्योग करें जैसा कि वे बाल-विवाह के बन्द कराने का करते हैं।

—( रानी ) रामरतन कुमारी

# संयोग

[ श्री० अनूपलाल जी मण्डल, साहित्य-रत्न ]

उस दिन ट्रेन देर से पहुँची थी। एक युवक लपका हुआ रिज़र्व इण्टर क्लास में घुस पड़ा। गाड़ी चल पड़ी, पर युवक अकचका कर उतरने के लिए बगलें झाँकने लगा। उसने एक ओर का दरवाज़ा खोला। वह कूदना ही चाहता था कि इसी समय एक ओर से आवाज़ आई—क्यों नाहक़ जान देते हो? यह ज़नाना डिब्बा नहीं, तुम आराम से बैठ सकते हो।

युवक का नाम विनोदशङ्कर था।

वस्तुतः विनोद ज़नाना डिब्बा ही समझ कर कूदना चाहता था। पर जब उसे विदित हुआ कि यह ज़नाना डिब्बा नहीं, तो वह निश्चिन्त हो, अपना सूट-केस नीचे रख एक ओर बैठ गया।

डिब्बे में केवल तीन व्यक्ति थे। एक अधेड़ स्त्री थी, दूसरी एक युवती थी—यही २०-२१ की, और तीसरा, जान पड़ता था, उनका नौकर।

"तुम कहाँ जाओगे, बेटा?"—विनोद के निश्चिन्त हो जाने पर वृद्धा ने बड़ी आत्मीयता के साथ पूछा।

"कलकत्ता।"—शर्माते हुए विनोद ने कहा।

"कलकत्ता?"—वृद्धा बोल उठी—"कलकत्ते तो हमें भी जाना है, वाह बड़ा अच्छा रहा। वहाँ तुम क्या करते हो?"

"पढ़ता हूँ।"

"कॉलेज में?"

"हाँ, थर्ड-इयर में हूँ।"

विनोद ने देखा, सामने बेञ्च पर बैठी युवती दोनों की बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। कभी-कभी वह युवक की ओर आँखें उठा कर देख भी लेती, किन्तु युवक लज्जा से नत-मस्तक हो जाता। वृद्धा समझ रही थी—युवक कितना शान्त, शिष्ट और सुशील है। उसमें लज्जा भी कितनी है। उसका हृदय और कुछ पूछने को आतुर हो रहा था। वह अपने को रोक न सकी, बोली—कलकत्ते में तुम्हारे और कोई हैं या अकेले हो, बेटा?

"मैं अकेला हूँ।"—कहने के साथ ही उसका मुख-मण्डल म्लान हो गया।

"तो क्या होस्टल में रहते हो?"

"नहीं, मैं एक सज्जन के यहाँ रहता हूँ, जो मुझे मुफ़्त भोजन भी देते हैं और रहने का स्थान भी।"

वृद्धा ने इधर अपनी कन्या से पान बनाने को कहा, उधर लगी वह बातें करने। घर पर कौन हैं, विवाह हुआ है या नहीं, ख़र्च कौन देता है, स्वराज्य के बारे में कैसा विचार है, आदि-आदि। विनोद बड़ी शालीनता के साथ उसके प्रश्नों का उत्तर देता। फल-स्वरूप घनिष्ठता बढ़ती गई। वृद्धा में ममत्व था और विनोद में श्रद्धा!

पान के बीड़े तैयार हो जाने पर तश्तरी माँ की ओर बढ़ाती हुई युवती बोली—लो अम्मा!

माँ ने हँसते हुए कहा—बाबू को दो, रज्जू।

उसका असल नाम था राजेश्वरी, पर प्यार से माँ उसे रज्जू ही कहा करती। रज्जू ने सङ्कोच से तश्तरी विनोद की ओर कर दी। विनोद लजा रहा था, उसकी आँखें नीचे की ओर झुकी थीं। वह बोल उठा—इतना कष्ट करने की क्या आवश्यकता थी? मैं तो पान का उतना आदी नहीं हूँ।

"खाओ, बेटा, लजाने की कोई बात नहीं।"—वृद्धा ने कहा।

"अच्छा, मैं लिए लेता हूँ!"—विनोद ने रज्जू की ओर मुस्कुरा कर देखते हुए पान के दो बीड़े ले लिए।

वृद्धा मुँह में पान दबा कर लेट रही। नौकर तो पहले से ही लम्बा हो रहा था। वृद्धा लेटती हुई बोली—मैं ज़रा आराम करती हूँ, बेटा, दूर से आते-आते जी घबरा उठा है। रज्जू, ज़रा जागती रहना।

चीज़ों पर भी एक नज़र रखना। गाड़ी में बहुत से उचक्के भी चढ़ आया करते हैं।

२

गाड़ी द्रुत गति से भागी जा रही थी। इधर रज्जू के हृदय में तूफ़ान मचा था और विनोद में लालसा। पर दोनों मूक थे, नीरव थे, साहसहीन थे। हाँ, कभी-कभी एक दूसरे को देख-भर लेता, आँखें भी कभी चार हो जातीं। विनोद ने अपने सूट-केस से एक पुस्तक निकाली, और ज़रा सीधे होकर पढ़ने का उपक्रम करने लगा। पन्द्रह-बीस मिनट भी न हुए होंगे कि विनोद को झपकी आने लगी और कुछ देर बाद वह सो गया। पुस्तक हाथ से छूट कर नीचे गिर पड़ी।

रज्जू ने पुस्तक नीचे से उठा ली और अपने अञ्चल से पोंछ कर वह इधर-उधर पढ़ने लगी। कुछ ही क्षण के बाद युवक की नींद उचट गई। उसने घबरा कर रज्जू की ओर देखा, रज्जू पुस्तक बड़े ध्यान से पढ़ रही थी। उसने आँखें बन्द कीं, पर नींद कहाँ? वह अचानक उठ बैठा। रज्जू उसे देख लजा गई। वह सकपकाई हुई उसकी ओर पुस्तक बढ़ा कर बोली—लीजिए, यह नीचे गिर पड़ी थी!

"पढ़ना चाहती हैं, पढ़ें। मैं तो इसे कई बार पढ़ चुका हूँ।"

"पुस्तक तो बड़ी अच्छी जान पड़ती है!"—रज्जू ने शर्माते हुए कहा—"नाम भी तो बड़ा मनोहर है—मधुर-मिलन!"

विनोद बोला—पढ़ने में आपकी बड़ी उत्सुकता देख रहा हूँ! आपने कहाँ तक पढ़ा है?

"पढ़ रही हूँ।"

"पढ़ रही हैं? अच्छा, किस क्लास में?"

"फ़र्स्ट-इयर में!"

"वाह! अच्छी बात है!"—और वह फिर से लेट रहा

रज्जू तन्मयता के साथ पुस्तक पढ़ने लगी। गाड़ी अपनी चाल से चल रही थी। सब कोई सो रहे थे, केवल रज्जू ही बैठी पुस्तक पढ़ने में लगी थी। यथावसर गाड़ी हवड़ा जङ्क्शन पर आ लगी। सभी अपनी चीज़ें सँभालने लगे। विनोद ने भी अपना सूट-केस सँभाला। एक-एक कर सभी उतर पड़े।

अलग होते समय वृद्धा ने विनोद से कहा—तुम्हारे साथ रास्ता बड़ी अच्छी तरह कटा, बेटा। क्या कभी तुमसे फिर मुलाक़ात होगी?

"हाँ-हाँ, अवश्य!" विनोद ने बड़ी उत्सुकता से कहा।

विनोद ने देखा, राजेश्वरी उसकी ओर एक बार दृष्टि-निक्षेप कर नत-मस्तक हो गई। हृदय उससे और कुछ पूछना चाहता था, पर थी वह शक्तिहीन, न जाने क्यों?

३

वृद्धा, रज्जू और नौकर के साथ गाड़ी पर बैठी। विनोद ने भी अपनी राह ली। वियोग के समय एक और ही घटना घटी। रज्जू को जाने के समय कुछ भी स्मरण न रहा कि विनोद की पुस्तक उसी के पास रह गई है। विनोद को यद्यपि उसका स्मरण था सही, फिर भी उसने माँगने की धृष्टता न की; प्रत्युत् उसे एक प्रकार से समर्पण कर विनोद को कम आह्लाद न हो रहा था!

देखते ही देखते कई महीने निकल गए। अचानक एक दिन कॉलेज से लौटने के समय रास्ते में उसके सामने एक फ़िटन आ लगी और किसी परिचित व्यक्ति का कण्ठ-स्वर सुन पड़ा। उसने मुड़ कर देखा, रज्जू थी।

रज्जू उतर कर उसके सामने आई और अभिवादन करती हुई बोली—अच्छा, विनोद बाबू, हम लोगों को इतनी जल्द भूल गए? माँ आपको बराबर याद करती हैं!

"धन्यवाद! मैं कभी आप लोगों को भूल नहीं सकता! आप जानती हैं, मुझे अपने हाथों से सभी प्रबन्ध करने पड़ते हैं! पढ़ना, दूसरों को पढ़ाना, रसोई-पानी का प्रबन्ध—सभी झञ्झट सिर पर! हाँ, मिलने की मुझे भी कम उत्सुकता न थी! अच्छा ही हुआ, आप मिल गईं।"

कुछ क्षण के बाद रज्जू बोली—अच्छा, विनोद बाबू, आज तो शनिवार है। कॉलेज तो बहुत सवेरे बन्द हो गया है। मेरा बङ्गला भी नज़दीक ही है! चलिए न इसी समय! माँ से मुलाक़ात कर एकाध घण्टे में लौट आइएगा।

विनोद से कुछ कहते न बना। रज्जू विनोद को लेकर गाड़ी पर बैठी। बात की बात में गाड़ी उसके द्वार पर आ लगी।

विनोद ने देखा, उसके सजे-सजाए, साहबी ठाठ के बङ्गले को—सब कुछ इङ्गलिश पैटर्न। पर विनोद में उत्सुकता न थी, थी दीनता की करुण-कहानी। उसके उच्छ्वसित अन्तस्तल में एक ओर क्षोभ, ग्लानि, मन-स्ताप और चिन्ता थी और दूसरी ओर स्वार्थ-हीन स्नेह का सञ्चार—पूत प्रेम का प्रदर्शन! रज्जू के साथ विनोद भीतर आया, देखा कोच पर वृद्धा लेटी हुई थी, मानो किसी की प्रतीक्षा कर रही हो!

राजेश्वरी मचलती हुई बोली—माँ, देखा, आज मैं विनोद बाबू को पकड़ लाई हूँ।

विनोद ने सर झुका कर प्रणाम किया। वृद्धा आशी-र्वाद देती हुई बोली—बेटा, क्या तुम्हें अपनी माँ को भूल जाना चाहिए था? अच्छा, आओ, बैठो! रज्जू, कुर्सी देना!

रज्जू ने कुर्सी उसके सामने कर दी। वह बैठते हुए बोल उठा—नहीं, माँ, मैं कभी भूल सकता था? मैं आने को कई बार तैयार हुआ, पर.....आज तो रज्जू मुझे घसीट ही लाई।

वृद्धा हँस पड़ी। बोली—सङ्गत प्यादे से आज तुम्हें भेंट हुई, विनोद! जब कभी तुम्हारी बात छिड़ जाती, यह कहती कि 'वे न आएँगे, अम्माँ!' देखो न, वह तुम्हारे बिना कितनी बेचैन रहती है!

रज्जू लाज से सकपका रही थी। वह माँ की बातें सुन कर सङ्कोच से भीतर को ओर जाने को ही थी कि माँ बोली—जा रज्जू, भीतर से दाई को जलपान लेकर बुला ला।

दाई जलपान की सामग्री लेकर आई, रज्जू भी साथ थी। दाई ने जलपान की चीज़ें टेबुल पर सजा दीं।

"अच्छा तो जलपान तैयार है, खाओ। रज्जू, आ बेटी, तू भी खा ले?"—वृद्धा बोली।

विनोद ने बाध्य होकर तश्तरी उठाई, पर रज्जू वहाँ से टल कर भीतर चली गई, शायद पान बनाने।

इधर विनोद का जलपान समाप्त हुआ, उधर रज्जू भी पान लेकर आई। विनोद ने अब तक हाथ न धोया था, इसलिए रज्जू सामने आ, पान की तश्तरी टेबुल पर रख, उसके हाथ धुलाने लगी। धुलाने के समय रज्जू का मुँह विनोद के मुँह के बहुत समीप था। विनोद को ऐसा जान पड़ा, मानो बसन्त और रति का सम्मिलन हुआ हो।

विनोद पान लेकर कुर्सी पर बैठ गया। रज्जू भीतर की ओर चली गई। इधर माँ-बेटे में बातें होने लगीं।

कुछ देर के बाद रज्जू आई, हाथ में वही पुस्तक थी। वह आकर शर्माई हुई बोल पड़ी—लीजिए अपनी पुस्तक। उस दिन मेरे साथ ही चली आई थी!

"रहने दो रज्जू, इसे अपने ही साथ। मैं तो इसे पढ़ चुका हूँ। तुम्हें कैसी लगी?"

वृद्धा बोल उठी—इसने तो इसकी समालोचना 'मनोरमा' में लिख भेजी है।

"क्या रज्जू लिखती भी हैं?"

"केवल लिखती ही नहीं, कविता में विशेष प्रगति भी है।"—कहती हुई माँ ने रज्जू से कहा—"रज्जू, दिखा ज़रा अपनी कविता की पुस्तक विनोद को।"

"हाँ-हाँ, दिखाओ, रज्जू। मैं नहीं जानता था कि कविता भी लिख लेती हो।"

"दो वर्ष से इसकी कविताएँ प्रसिद्ध पत्रिकाओं में निकल रही हैं।"—वृद्धा ने बीच में कहा।

"किस नाम से निकलती हैं?"

"चपला के नाम से।"—वृद्धा ने कहा।

रज्जू तब तक पुस्तक ले आई। वह उसमें से कविताएँ पढ़ने लगी और विनोद उन कविताओं की भाव-सरिता में डुबकियाँ लगाने लगा।

## ४

विनोद के चले जाने पर वृद्धा बड़ी देर तक उसके विषय में सोचती रही। अन्त में, इसी निश्चय पर पहुँची कि विनोद को अपने यहाँ रज्जू के पढ़ाने के लिए ट्यूटर-रूप में रख लिया जाय।

दूसरा दिन रविवार का था। डाकिया दस बजे पत्र का बण्डल रज्जू के लेटर-बक्स में डाल गया था। रज्जू ने यथावसर बक्स खोला, उसमें 'सुधा' भी थी। उसने आनन्द में निमग्न हो उसकी कवरिङ्ग खोली, और इधर-उधर पन्ने उलटने लगी। कुछ ही पन्ने के बाद उसने एक शीर्षक देखा। मोटे अक्षरों में लिखा था—'संयोग' और लेखक था उसका श्रीयुत विनोदशङ्कर।

रज्जू का हृदय मानो नाच उठा। वह समझ गई कि लेखक उसका परिचित विनोद ही है। उसने एक

ही साँस में समूची कहानी पढ़ डाली ! कितनी मँजी हुई भाषा है। कैसी सुन्दर शैली है और कैसा सुन्दर कथानक ! कहीं एक शब्द भी इधर-उधर का मालूम नहीं पड़ता ! रज्जू तन्मयता में लीन थी !

यथावसर विनोद आया और वह रज्जू से मिलते ही बोल उठा—'अभिलाषा' शीर्षक कविता में तुमने क़लम तोड़ दी है, रज्जू ! यह कविता तो बड़े से बड़े कवियों की उत्कृष्ट रचनाओं से टक्कर ले सकती है ! वास्तव में तुमने कमाल कर दिया है !

"नहीं-नहीं"—लजाते हुए रज्जू ने कहा—"मुझे ऐसा कह कर आप लज्जित न करें। मैं जो कुछ लिखती हूँ, मन बहलाने के लिए ही। मेरी कविता में वह भाव कहाँ से आ सकता है, विनोद बाबू ?"

"नहीं, कविता नैसर्गिक होती है रज्जू, कविता प्रतिभा की सहचरी है। वह पाण्डित्य की प्रतीक्षा नहीं करती।"—विनोद ने कहा।

"सच है ! पर प्रतिभा भी हो तब न ! प्रतिभाशाली लेखक तो और कोई है, जिसके शब्द-शब्द में वसुधा को मत्त करने की शक्ति निहित है। इसमें आपने ऐसी कौन-सी चीज़ देखी, विनोद बाबू ?"

"अहा ! इसमें क्या नहीं है ?"—विनोद ने मुस्कुराते हुए कहा—"संसार धन-जन, मान-सम्मान को हृदय से लगाने की कामना करता है, पर तुम्हारी 'अभिलाषा' ? तुम्हारी अभिलाषा, रज्जू, इन सबको लातों से कुचल कर किसी के चरण-तल पर लोटना चाहती है। कितनी ऊँची अभिलाषा है ! आह ! इस अभिलाषा का हृदय कितना विशाल है, रज्जू !"

रज्जू का सिर नीचे की ओर झुक गया। लज्जा आँखों पर नाचने लगी। कुछ क्षण दोनों निस्तब्ध रहे, उसके बाद रज्जू बोल उठी—क्या 'संयोग' के लेखक ने अपनी भावी पत्नी के लिए.....

विनोद बीच ही में इतना खिलखिला कर हँसा कि कमरा एक बार गूँज उठा। रज्जू लाज से मानो काठ हो गई। वह फिर आँखें ऊपर न कर सकी।

विनोद हँसते हुए बोल उठा—वह कौन लेखक है, रज्जू ?

रज्जू का हृदय नाच उठा। उसने कहने के लिए चेष्टा की, पर बोल न सकी। हाँ, ओठों पर एक मीठी मुस्कान थिरक रही थी। उसने अपने में साहस सञ्चय कर कहा—उसे तो आपका हृदय ही जानता होगा।

"मेरा हृदय जानता है या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता, पर तुम तो जानती हो, रज्जू ! कैसे उसे जानती हो ?"

रज्जू ने 'सुधा' उसकी ओर फेंक दी, और विनोद का ध्यान 'सुधा' के सम्पादकीय वक्तव्य की ओर आकर्षित किया, जिसमें सम्पादक ने 'संयोग' के लेखक की सर्वोत्कृष्ट रचना बतलाते हुए पुरस्कार देने की बात लिखी थी।

विनोद को वास्तव में यह एक पहेली बोध हो रही थी। वह कुछ सोच रहा था, इसी समय राजेश्वरी बोल उठी—अब आप ही कहिए, विनोद बाबू, कौन अपनी रचना पर पुरस्कृत हुआ है, आप या मैं ?

"सच कहूँ रज्जू ? मैं 'अभिलाषा' की लेखिका को जितना पुरस्कृत कर सकता हूँ, वह क्या और कोई कर सकता है ?"

रज्जू लजा गई। वास्तव में रज्जू को इससे अधिक और क्या पुरस्कार मिल सकता था।

५

राजेश्वरी अब से विनोद की विद्यार्थिनी है। विनोद कॉलेज की पढ़ाई में सहायता तो दिया ही करता, इससे अधिक सहायता और उत्साह देता था उसे काव्य-रचना में। यथावसर राजेश्वरी ने बी० ए० पास किया और विनोद ने एम० ए०। विनोद प्रोफ़ेसर हुए और श्रीमती राजेश्वरी देवी गर्ल्स हाई स्कूल की अध्यापिका। दोनों के बीच वियोग का प्राचीर खिंच गया। दोनों दो दिशाओं में चले गए।

तीन वर्ष के बाद—

एक दिन रज्जू को घर से एक तार मिला। वह घबरा कर, कई दिनों की छुट्टी ले, घर आई। पर, आह ! माँ के प्राण-पखेरू उड़ने को छटपटा रहे थे। रज्जू ने माँ की अवस्था देखी, और देखी उसने संसार में अपने को अकेली ! आह ! उसके हृदय का बाँध टूट पड़ा, वह धड़ाम से माँ के ऊपर गिर पड़ी, पर निठुर माँ तो गिरने के पहले ही चल बसी थी। रज्जू छाती पीट कर रह गई। आज उसे संसार में अपना कहलाने वाला कोई न रहा।

विपत्ति में पुरातन स्मृति एक बार सजग हो जाती है। विनोद भी रज्जू के स्मृति-पट पर खिंच आया। इच्छा हुई, मृत्यु-सम्वाद उसे दे दिया जाय। वह उठ खड़ी हुई, टेबुल के पास पहुँची, दराज़ खोला, लेटर पेपर निकाला। पर यह क्या? दराज़ में सील वाला यह बन्द पैकेट कैसा? रज्जू ने उसे निकाल कर देखा। ऊपर लिखा था—'श्रीमान विनोदशङ्कर और श्रीमती राजेश्वरी देवी!' रज्जू ने उसे खोलना चाहा, पर उसी समय बाहर से दरबान ने आकर सलाम करते हुए कहा—बाबू आना चाहते हैं।

"कौन बाबू?"

"जो आपको पढ़ाया करते थे।"

"आने कहो।"—कहा और आप दौड़ पड़ी। वह मिलन कितना सुखद था! रज्जू रोई, विनोद ने भी माँ की स्मृति में दो आँसू बहाए।

रज्जू ने वह पैकेट लाकर विनोद के हाथ में देते हुए कहा—अम्मा मरने के पहिले न जाने क्या लिख गई हैं।

विनोद ने उसे खोला। उसमें एक पत्र था।

"बेटा विनोद,

"दुख है कि अन्तिम समय तुम्हें न देख सकी। सारी अभिलाषाएँ मेरे साथ ही चल रही हैं। इस संसार-समुद्र में रज्जू को—अपना एक मात्र खिलौना रज्जू को—केवल तुम्हारी आशा पर छोड़े जा रही हूँ। मुझे उस समय बड़ा आनन्द होगा, जब मैं रज्जू को तुम्हारे हाथों सुखी देखूँगी। इच्छा थी, एक बार तुम्हें बुला कर अपने सामने रज्जू को तुम्हें सौंपती, पर क्रूर काल से यह भी देखा न गया। अन्तिम समय, मैंने केवल यही उपाय सोचा।

"इसी के साथ सारी जायदाद का दान-पत्र तुम दोनों के नाम से मैंने रजिस्टर्ड करा दिया है। तुम लोगों को अधिकार है, जिस तरह चाहो ख़र्च करना।

"हाँ, एक बात और है, जिसे स्पष्ट किए बिना मैं नरक में भी सुखी न हो सकूँगी। यदि कोई अपने पाप का प्रायश्चित्त किए बिना, दूसरों की आँखों में धूल झोंकना चाहता है तो वह कभी सुखी नहीं हो सकता। इसी भय से मैं आज सच्ची बातें तुम्हारे सामने रख रही हूँ। तुम्हें सुन कर मुझ पर अवश्य घृणा होगी, हो सकता है, रज्जू भी तुम्हारी नज़रों से गिर जाय। फिर भी मैं तुम्हें धोखा नहीं दे सकती! भगवान के घर कौन-सा मुँह दिखाऊँगी मैं! यदि तुम्हें रज्जू पर कुछ भी ममता हो, दया हो, प्रेम हो, तो उसका निर्वाह करना, वरना, उसे अपने हाथों से बध कर मेरे पास पहुँचा देना! अभागिनी के बध की भागी हूँगी—पापिनी मैं!

"बात यह है कि रज्जू मेरी पाप-वृत्ति की स्मृति-रूप है। मेरे पति मुझसे विवाह करने के बाद ही चल बसे थे। होश सँभालने पर मुझे विदित हुआ कि मैं बाल-विधवा हूँ।.....पर मैं वैधव्य-व्रत का पालन न कर सकी। इसके कई कारण थे— मैं जिस वायु-मण्डल में पाली-पोसी गई थी, वह बड़ा ही विषाक्त था। फिर उसका प्रभाव पड़े बिना रह कैसे सकता था? फल वही हुआ जो होना था। मैं पाप की नदी में कूद पड़ी, घर से निकल कर संसार के कामी कुत्तों को वरण किया। फल-स्वरूप रज्जू हाथ लगी!

"रज्जू के मिलने पर मैं फिर से सचेत हुई! भोग-लिप्सा शान्त हो चुकी थी। रज्जू के विहँसते हुए मुख ने मुझे बुरे कामों से विमुख कर दिया था। मैं व्यभिचार-वृत्ति को छोड़ यहाँ आकर बसी और चाहा कि रज्जू को ऊँची शिक्षा देकर पूर्ण विदुषी बनाऊँ। फल-स्वरूप रज्जू तुम्हारे सामने है।

"जो सच्ची बातें थीं, कह दीं। अब, जैसा विचार हो करना। मेरी गिरी आत्मा यदि तुम्हारे हाथों सुधर सके तो सुधारने का प्रयत्न करना। —तुम्हारी माँ"

विनोद ने पत्र पढ़ा, वह अवाक् हो रहा। रज्जू ने पत्र उसके हाथ से ले लिया। पढ़ते-पढ़ते उसे बोध हो रहा था कि पैर के नीचे से ज़मीन निकल गई।

विनोद ने पुरानी बातों पर कई दिनों तक विचार किया। अन्त में, यही निश्चय हुआ—चाहे समाज मुझे भी पतित समझ कर अपना मुँह फिरा ले, पर रज्जू सर्वथा निर्दोष है! रज्जू को त्यागना उसकी आत्मा के साथ अन्याय करना होगा।

विनोद और रज्जू एक सूत्र में बँध गए। विनोद ने रज्जू के साथ परामर्श करके सारी सम्पत्ति 'विधवाश्रम' के नाम अर्पित कर दी।

# उपन्यास-कला और श्री० प्रेमचन्द के उपन्यास

[ श्री० केशरीकिशोर शरण जी, बी० ए० ( ऑनर्स ), साहित्य-भूषण, विशारद ]

[ गताङ्क से आगे ]

## सुमन

सुमन वास्तव में उपन्यास-कानन का सरस सुमन थी। माली ने उसे खिलाया था मुस्कुराने के लिए नहीं, कुम्हिलाने के लिए। वह सुमन, जिसे प्राप्त कर देव-गण अपने को धन्य समझते, जो किसी राजा के हृदय पर लहराने के योग्य थी, परिस्थिति में पड़ कर एक निर्धन कुपात्र के हाथ पड़ गई, जो उसकी सच्ची क़द्र न कर सका। उसका सारा बचपन हास-विलास में ही व्यतीत हुआ था, अतएव वह प्रयत्न करने पर भी सुचतुर गृहिणी न बन सकी। उसमें अभिमान और अज्ञान की मात्रा बहुत थी। उसे अपने सतीत्व और मर्यादा का नाज़ था, परन्तु वह सिद्धान्त की कच्ची थी। भोली से वह अपने को श्रेष्ठ समझती थी, परन्तु उसका आदर और अपना निरादर देख सुमन का अभि-मान चकनाचूर हो गया। वह अब अपने को विशेष धोखा न दे सकी। उसे बड़ी निराशा और ग्लानि हुई। उसका वह आधार ही खिसक गया, जिसके बल पर वह खड़ी थी। अन्त में मिथ्याभिमान के वशीभूत हो वह घर से बाहर चली गई। उसे अनिच्छापूर्वक वेश्यावृत्ति स्वीकार करनी पड़ी। किन्तु इस पतित जीवन से उसका हृदय सदा दूर भागता रहा। और अन्त में पद्मसिंह शर्मा और विट्ठलदास के प्रयत्न और परिश्रम से उससे विमुक्त हो उसने सेवा-मार्ग ग्रहण कर लिया।

## सोफ़िया

सोफ़िया एक विचित्र जीव थी। वास्तव में वह स्त्री के रूप में विनय थी। उसी के ऐसी गम्भीर, सरल, विवेकशील और उन्नत-हृदय युवती थी। परन्तु वह विनय से अधिक और कुछ थी। उसे अपना सिद्धान्त प्यारा था, प्राण नहीं। विनय प्रेम के वशीभूत हो अपने सिद्धान्त और आत्म-सम्मान को भूल गया, परन्तु सोफ़िया नहीं भूली। वह विनय को प्राण से भी अधिक प्यार करती थी, परन्तु वासना की तृष्णा को बुझाने के लिए वह विवेक को हलाल न कर सकी। उसने विनय के लिए सब कुछ किया, जो न करना चाहिए था। यहाँ तक कि छल, माया, कपट, कौशल, त्रिया-चरित्र, एक से भी बाज़ नहीं आई। क्लार्क ऐसे प्रेमी को निराश करना किसी दूसरी अवस्था में अत्यन्त निकृष्ट कार्य होता। परन्तु 'प्रेम-गली अति साँकरी तामें दो न समायँ।' प्रेम ने उसके आत्माभिमान को चूर-चूर कर दिया। कुछ काल के लिए विवेक को भी दबा दिया, परन्तु उसका सम्पूर्ण नाश वह कभी न कर सका। उसके हृदय ने उसके आत्म-सम्मान को नष्ट किया था, उसने अपने हृदय को कुचलना चाहा। परन्तु हृदय एक वस्तु है, जो अपना होते हुए भी अपने अधीन नहीं रहता। उस पर कोई अधिकार नहीं, कोई दबाव नहीं। उसने आवेश में आकर विनय का तिरस्कार किया अवश्य, परन्तु पुनः प्राप्त कर उसे त्याग न सकी। वह उसके साथ एक एकान्त स्थान में जाकर रहने लगी। पर यह सब कुछ होते हुए भी वह विनय की आकुल पिपासा को तृप्त न कर सकी। उसके नन्हें से जीवन में सिद्धान्त और प्रेम का सङ्घर्ष बराबर होता रहा। कभी एक को कुछ सफलता मिली तो कभी दूसरे को, परन्तु अन्त तक पूर्णतया पराजित कोई भी न हो सका। वह करुणा और दया की मूर्ति थी। वह धर्म का स्वाँग भरना न जानती थी। वह सच्चे धर्म की उपासिका थी, जिसका साम्प्रदायिक धर्मों से कोई सम्बन्ध नहीं। परन्तु अभा-ग्यवश वह ईसाइन थी। काश वह हिन्दू होती; तो उसका जीवन बड़े आनन्द से व्यतीत होता। परन्तु वैसी दशा में उसका चरित्र इतना निर्मल और उज्ज्वल नहीं होता। वह ईसाइन होते हुए भी एक सच्ची हिन्दू-महिला

थी, जिसके लिए प्रत्येक हिन्दू-महिला को गर्व होना चाहिए।

## निर्मला

निर्मला हमारे हिन्दू-समाज की बलि-वेदी की एक करुण भेंट है। उसकी जैसी लाखों हिन्दू-नारियाँ अपने हृदय की मूक व्यथा में बधिक की छुरी के तले की बकरी की भाँति छटपटाती हैं, तड़पती हैं। परन्तु उस दारुण यन्त्रणा से मुक्त होने के लिए मृत्यु के अतिरिक्त दूसरा कोई साधन नहीं। वह चञ्चल और खिलाड़ी बालिका सहसा गम्भीर और एकान्त प्रिय बन कर भावी जीवन-संग्राम के लिए प्रस्तुत हो गई। ऐसे प्राणियों के लिए निस्सन्देह यह संसार एक संग्राम-क्षेत्र है, जहाँ केवल दुख और निराशा है, वह सुख और शान्ति की रङ्ग-भूमि नहीं। वह अपने बूढ़े पति का आदर और सम्मान करती थी। जिसके चरणों पर वह अपना जीवन अर्पण करने के लिए बाध्य हुई थी, उससे दग़ा करना उसका अभीष्ट न था। परन्तु जो बात उसके वश की नहीं थी, उसे वह कैसे करती। वह उसके लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत थी, काम पड़ने पर जान तक दे सकती थी, परन्तु पिता-तुल्य पति को वह प्यार नहीं कर सकती थी। पति-पुत्र मन्साराम एक गबरू जवान था। नवयौवना निर्मला उसे प्यार करती थी, किसी बुरे अभिप्राय से नहीं बल्कि उस नैसर्गिक तृष्णा को तृप्त करने के लिए, जो प्रत्येक प्राणी को अपने हमजोलियों के साथ हँसने-बोलने की होती है। हाँ, यह निश्चित था कि यदि मन्साराम के हृदय में पाप होता तो निर्मला उसके लिए सब कुछ कर सकती थी। परन्तु वह तो मनुष्य नहीं,देवता था; आदर और स्नेह का भूखा। निर्मला उसे सच्चे दिल से प्यार करती थी। यहाँ तक कि उसकी प्राण-रक्षार्थ अपना रक्त देने के लिए भी प्रस्तुत थी। परन्तु विधि के विधान में अपना क्या वश ? उसने उस दुनिया के दग्ध हृदय को क्षणिक शान्ति प्रदान करने वाली वस्तु को भी हटा लेना श्रेयस्कर समझा, जिसमें वह और तड़पे। उसकी अवस्था को विस्मृत कराने के लिए एक कन्या प्रसूत हुई अवश्य, पर इससे उसका दुख लेश मात्र भी कम नहीं हुआ, बल्कि और बढ़ गया। समय के फेर से वह दाने-दाने की मोहताज हो गई। बालिका के भावी जीवन की चिन्ता ने उसे बिल्कुल पागल बना डाला। मधुर-भाषिणी और सहनशीला निर्मला कर्कशा हो गई। उसे अपने पति की चिन्ता नहीं थी, अपनी चिन्ता नहीं थी, चिन्ता थी तो उस नवजात शिशु की जिसका अभी पहाड़ के ऐसा सारा जीवन पड़ा हुआ था। धीरे-धीरे वह व्याधियों का शिकार बन गई और एक दिन 'उसका प्राण-पक्षी दिन भर के शिकारियों के निशानों, शिकारी चिड़ियों के पञ्जों और वायु के प्रचण्ड झोकों से आहत और व्यथित अपने बसेरे की ओर उड़ गया।'

## चरित्र-चित्रण सम्बन्धी आक्षेप का उत्तर

प्रेमचन्द जी के चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत मतभेद है। कोई उसमें किसी प्रकार की त्रुटि नहीं पाते, कोई उसमें अतिरञ्जना और अस्वाभाविकता की झलक पाते हैं। एक ऐसी भी श्रेणी के समालोचक हैं, जो उसमें केवल दोष ही दोष पाते हैं। अतएव इस पर विचार करना आवश्यक है। कलाविदों का सिद्धान्त है कि पुरुष-चरित्र-चित्रण में प्रेमचन्द जी को पूर्ण सफलता मिली है*। कोई भी समझदार समालोचक, जिसे अपने उत्तरदायित्व तथा कर्त्तव्य का लेशमात्र भी ध्यान है, इससे असहमत नहीं। परन्तु जहाँ तक हमें स्मरण है, केवल एक समालोचक† ने ज्ञानशङ्कर और विनय के चरित्र में अतिरञ्जना का दोष ढूँढ़ निकाला है। उनका कहना है कि 'विनय के चरित्र में बहुत सी दुर्बलताओं का उल्लेख नहीं है, जिससे उसका आदर्श चरित्र और भी निखरता। ज्ञानशङ्कर के चरित्र में केवल बुराइयों का ही प्रदर्शन है। इस बात की कहीं भी चर्चा नहीं आती कि उसके हृदय में भी कभी सद्भावनाओं का उद्रेक होता है या नहीं। उसके ऐसा पतित पुरुष इस संसार में नहीं हो सकता।' मेरे विचार में विनय का चरित्र-चित्रण सर्वाङ्ग-सुन्दर और निर्दोष है। उसकी एक ही मानवोचित दुर्बलता ने उसके आत्म-सम्मान, विवेक, आदर्श, धैर्य इत्यादि सभी गुणों को मलिन कर दिया था। आवेश में आकर उसने बिल्कुल विपरीत पथ का अवलम्बन किया। वह अपने आदर्श से इसके कारण बहुत गिर चुका था, और यदि घटना-चक्र में पड़ कर वह अपना प्राण न्योछावर नहीं करता तो

* 'विशाल भारत' १९२८, पृ०२९३,

† परिषद् निबन्धावली ( प्रथम भाग ) पृ० २३

उसके ऐसा पतित और पापी जीव दूसरा नहीं होता। और यह उपन्यास पाठकों के सम्मुख आदर्श उपस्थित करने के बदले, उनकी विचार-दृष्टि को और भी सङ्कीर्ण बना देता। यदि उसके चरित्र में अत्यधिक दुर्बलताओं का दिग्दर्शन कराया जाता—जो कदाचित असङ्गत न प्रतीत होता—तो उसका वह अपूर्व उत्सर्ग भी उसकी पावन स्मृति को देश-द्रोही और स्वार्थी के कलङ्क से न मुक्त कर सकता ; बल्कि उसे 'भोरु' की एक नई उपाधि (?) मिल जाती, जो अपना दोष छिपाने के लिए आत्म-हत्या कर ले। अतएव यह स्पष्ट है कि विनय का चरित्र निर्दोष है। ज्ञानशङ्कर के चरित्र-चित्रण सम्बन्धी आक्षेप के उत्तर में हम यहाँ यह निवेदन करना आवश्यक समझते हैं कि उक्त समालोचक महोदय ने उसे ध्यानपूर्वक पढ़ा नहीं है। उसके हृदय में प्रायः सद्भावनाओं का सञ्चार होता है और अवश्य होता है, परन्तु कहीं-कहीं भेद खुल जाने के डर से अपने कृत-कार्यों के प्रतिकूल चलने का उसे साहस नहीं होता। उसके 'श्यामल-चरित्र' के सम्मुख कुछेक श्वेत चिह्न उस श्यामलता को और भी भयावह बना देते हैं। प्रेमचन्द जी ने स्वयं लिखा है—'सम्पत्तिशाली होकर वह उदार, दयालु, दीन-वत्सल और कर्तव्य-परायण हो गए थे। लाला प्रभाशङ्कर को, पुत्रियों के विवाह में उन्होंने ख़ासी मदद की थी और पुत्रों के मातम में शरीक होने के लिए गोरखपुर से आए थे। प्रेमशङ्कर के प्रति भी उनका भ्रातृ-प्रेम जागृत हो गया था, यहाँ तक कि लखनपुर वालों के मुक्त होने पर उन्हें बधाई दी थी। गायत्री की मृत्यु का शोक-समाचार मिला तो उन्होंने उसका संस्कार बड़ी धूम से किया और कई हज़ार रुपए ख़र्च किए। उसकी यादगार में एक पक्का तालाब खुदवा दिया।' और भी, जब रायसाहब के पुत्र की मृत्यु का सम्वाद मिला तो उसे कितना क्षोभ हुआ, यह स्पष्ट है। परन्तु उसकी आत्मा स्वार्थ की कीच में बेतरह फँस चुकी थी, अतएव उसके हृदय में नई-नई आकांक्षाएँ तरङ्गें मारने लगीं। इससे निस्सन्देह उसकी नीचता पराकाष्ठा को प्राप्त होती है। पाठक इसका अनुभव स्वप्न में भी नहीं कर सकते। वे सोचते हैं, भला मनुष्य इतना नीच हो सकता है? वास्तव में इसका कारण यह है कि हमें मानव-चरित्र का पूरा पता कभी नहीं मिलता। "हम अपने अन्तरङ्ग मित्र के भी हृदयगत भावनाओं को नहीं जान सकते। हम जो कुछ भी जान पाते हैं, वह उसकी बाहरी प्रक्रियाओं तथा चेष्टाओं से*।" परन्तु उपन्यास के चरित्र के सम्बन्ध में यह बात नहीं होती। हम उसके बाहर-भीतर की सभी भावनाओं को जानते हैं और इसी कारण, जैसा कि कलाविदों का सिद्धान्त है, उपन्यास के पात्र अत्यधिक सत्य और आकर्षक प्रतीत होते हैं†। यदि लेखक ज्ञानशङ्कर के हृदय की दशा का सत्य और पूर्ण चित्र नहीं खींचता तो कदाचित यह बात अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होती। हाँ, एक बात आश्चर्यजनक अवश्य है, और वह है उसका छद्मवेश धारण करना। यह बात बिलकुल साधारण बुद्धि के परे है कि जो मनुष्य पूजा-पाठ में इतना निरत रहे, उसका अन्तःकरण इतना कलुषित हो। जिस समय (१९२४ ई० में) पहले-पहल हमने इस पुस्तक को पढ़ा था, हमें भी यह शङ्का हुई थी। परन्तु अब नहीं। गोविन्द-भवन कलकत्ता के कलियुगी-कृष्ण हीरालाल गोयनका की पापलीला की जब चर्चा हमने सुनी तो बरबस हमें प्रेमचन्द जी की यह पंक्ति याद आ गई कि "इस संसार-सागर में एक से एक मगर-मच्छ पड़े हुए हैं।" वास्तव में ज्ञानशङ्कर के चरित्र में अणु मात्र भी अतिरञ्जना नहीं है। अब इसके पश्चात् एक बड़ा गम्भीर एतराज़ पेश किया जाता है, जिसकी सत्यता का पूर्ण खण्डन नहीं किया जा सकता। वह यह है कि प्रेमचन्द जी के स्त्री-चरित्र के चित्रण में स्वाभाविकता का अभाव है। वह घटना के अनुसार ही प्रकाश में आता है और उसी की आवश्यकतानुसार उसके विकास में कमी-बेशी होती है। अतएव स्त्रियों का चरित्र प्रेमचन्द जी के मस्तिष्क तथा कल्पना की उपज है, हमारी दुनिया की वह वस्तु नहीं। उनमें केवल ज्ञान ही ज्ञान रहता है, हृदय नहीं, जो स्त्रियों की जन्म-सिद्ध वस्तु है। यह सुप्रसिद्ध कलाविद इलाचन्द जी जोशी की सम्मति है। इसके विपरीत एक समालोचक, कदाचित यह सज्जन श्री० प्रतापनारायण जी श्रीवास्तव हैं, का कहना है कि प्रेमचन्द जी को स्त्रियों के चरित्र-चित्रण में अत्यन्त सफलता मिली है। इतने मतभेद का कारण क्या है?

*—'उपन्यास रहस्य': महावीरप्रसाद जी द्विवेदी।

†—Aspects of the Novel, pp. 47-49.

बात असल में यह है कि समालोचक प्रायः सभी पुरुष हैं और इस कारण स्त्रियों के वास्तविक मनोविज्ञान का ज्ञान किसी भी दशा में पूर्ण नहीं हो सकता, जब हम एक ही प्रकार के दूसरे मनुष्य के मनोगत भावनाओं को नहीं जान सकते। पुनः प्रेमचन्द जी ने अपने उपन्यासों में स्त्रियों को बहुत उच्च स्थान प्रदान किया है। इनकी स्त्रियाँ आदर्श हैं। प्रायः प्रत्येक स्त्री—सुधा, विद्या, श्रद्धा, बिरजन—पतिपरायणा हैं। उनके लिए पति ही धर्म और कर्म है। यह सिद्धान्त भारतीय संस्कृति का मुख्य एवं अचल सिद्धान्त है। सनातन से चला आया है और कदाचित अनन्त-काल तक चला जायगा। इनके हृदय में हमारी सभ्यता और संस्कृति का प्रतिबिम्ब अङ्कित है। समय के साथ ही साथ पुरुष के चरित्र में सर्वदा परिवर्तन होता चला आ रहा है, किन्तु स्त्रियों का चरित्र अत्यन्त अपरिवर्तनशील है। पुरुषों का सिद्धान्त, कर्तव्य, आदर्श, सभी बदल गया, परन्तु अधिकांश भारतीय महिलाएँ आज भी अपने को सीता और सावित्री के समान सती बनाने का यथा-साध्य प्रयत्न करती हैं। यही कारण है कि काल के इतने भीषण थपेड़े खाकर भी हमारी सभ्यता आज तक जीवित है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द जी को पूर्ण सफलता मिली है। परन्तु उस आदर्श चित्र के साथ ही साथ उन्होंने यह भी प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि स्त्रियाँ पुरुषों के कार्य-क्षेत्र में बाधक नहीं, बल्कि सहायक होती हैं। वह 'उनके पैरों की ज़ञ्जीर नहीं, बल्कि उनके पैरों के पीछे उड़ने वाली धूल हैं।' इसी कारण विवेक और हृदय में बड़ा सङ्घर्ष होता है। और ; देवी सोफ़िया का तो सारा जीवन ही इस सङ्घर्ष का करुण इतिहास है। इस सङ्घर्ष में कभी हृदय को सफलता मिलती है और कभी विवेक को, परन्तु विशेषकर विवेक के ही हाथ में मैदान रहता है और हृदय गौण हो जाता है। वास्तव में भारत की वर्तमान दशा को देख कर हमें इसी प्रकार के चरित्रों की आवश्यकता है। स्त्रियों की मातृत्व-शक्ति का पूर्ण प्रदर्शन हो चुका है। अब हम पददलित स्त्रियों के हृदय में पुरुषत्व का उदय देखना चाहते हैं। परन्तु यह सब होते हुए भी यह कोई नहीं कह सकता कि स्त्रियों के चरित्र-चित्रण में अस्वाभाविकता आ गई है। उसका स्टैण्ड (Standard) आदर्शात्मक है, घोर सत्यात्मक नहीं। निर्मला, सुमन, गायत्री और सोफ़िया में कोई भी ऐसी नहीं है, जो हमारी जीती-जागती दुनिया से परे कल्पना-जगत की जीव हो। अब प्रश्न उठता है रानी जाह्नवी के सम्बन्ध में। उनका चरित्र-चित्रण घोर आदर्शात्मक हुआ है, इस कारण कतिपय समालोचक इससे असन्तुष्ट हैं। परन्तु यह जान-बूझ कर ऐसा किया गया है। लेखक ने स्वयं विनय के मुख से कहलवाया है कि 'माता जी में केवल बुद्धि ही बुद्धि है और पिता जी में हृदय और बुद्धि दोनों हैं*।' वास्तव में कला का पूर्ण विकास तभी होता है, जब हृदय और बुद्धि दोनों की मात्रा प्रायः समान हो। असमानता के कारण चरित्र-चित्रण में निर्जीवता आ जाती है और प्रायः यह बात उत्तम से उत्तम औपन्यासिकों की भी रचनाओं में पाई जाती है। इसी कारण विद्वान 'फॉर्स्टर' (Forster) ने खिन्न होकर चरित्रों की निर्जीवता (Flatness of character) को एक आवश्यक अङ्ग ही मान लिया†। अतएव यह प्रश्न उठता है कि चरित्र-चित्रण में निर्जीवता क्यों नहीं होनी चाहिए? एडविन मूर का उत्तर है कि आधुनिक समालोचक सजीव चरित्र (Round character) को ही विशेष महत्व देते हैं, परन्तु हो सकता है कि आगामी सन्तति निर्जीव चरित्र को ही विशेष महत्व दे। पुनः उपन्यास के चरित्र बिल्कुल स्वतन्त्र कार्य नहीं कर सकते। नाटक के पात्र एक बार निर्मित होकर अपने स्वच्छन्द कार्य से ही 'प्लॉट' में रहस्य ले आते हैं और पुनः अपने ही कार्यों द्वारा उसकी गहनता को दूर कर, प्राप्ति की ओर पहुँचते हैं। परन्तु उपन्यास की घटना इतनी स्पष्ट और सरल नहीं होती। लेखक के अतिरिक्त कोई भी यह नहीं कह सकता कि इसका अन्त क्या होगा। अतएव उपन्यास-लेखक नाटककार की तरह अपने चरित्रों को स्वेच्छापूर्वक कार्य नहीं करने देता, बल्कि उन्हें एक निश्चित तथा सीमित क्षेत्र में ही केवल गतिशील रखता है। इसमें सन्देह नहीं कि सजीवता की मात्रा जितनी ही अधिक होगी, उतना ही लेखक सफल होगा। परन्तु निर्जीवता अनिवार्य है।

(क्रमशः)

---

*—रङ्गभूमि

†—Forster ; Aspects of the Novel pp. 102-4.

# दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !

[ "पागल" ]

छठा खण्ड

९

"उधर क्या देख रहे हो ?"

"द्वार पर कोई है ?"

"कोई भी तो नहीं मालूम होता। हवा से पल्ला खुल गया है।"

"नहीं, भाभी, ग़ौर से देखो तो। आदमी का ढाँचा जान पड़ता है।"

"वहमी हो। वह शिकार के इन्तज़ाम पर गए हुए हैं। महराजिन लँगड़ी है, सीढ़ियों पर चढ़ती ही नहीं और तीसरा इस वक़्त यहाँ आने वाला भला कौन हो सकता है ?"

"बहस करती हो या उठ कर देखोगी भी ?"

"वाह जी रानी के भाई, तुम्हारी ऐसी हिम्मत ? पत्ता खड़का और बन्दा सड़का। यही हिम्मत लेकर शेर का शिकार खेलोगे ?"

"कौन ? कौन है ?....."

"रह गए अपना सा मुँह लेकर ? कोई होता तो बोलता न ?

"लम्प बुझा दो।"

"आहाहाहा ! चूड़ियाँ पहन लो चूड़ियाँ ! इस दफ़े अलग क्या ठहरे, गोया यहाँ के लिए चोर हो गए ? वाह जी वाह !"

डिप्टी को देखते ही मेरे हवास कुछ ऐसे गुम हुए कि मैं ज्यों का त्यों मूर्तिवत खड़ा का खड़ा ही रह गया। न भागते बन पड़ा और न पिछड़ते। तुरन्त ही मुझे अपने ज़नाने भेष और गूँगे और बहरे होने का ख़याल आया, जिससे दिल में बहुत-कुछ मज़बूती आई। उसीके साथ मेरे सारे बदन का ख़ून खौल उठा। जिस कम्बख़्त ने शुरू-शुरू में मेरे प्रेम की लहलहाती फुलवाड़ी की जड़ खोदी थी, वह अब तक राहु की तरह मेरी इष्ट-देवी के पीछे पड़ा हुआ है, उसके इस नगर में आने का कारण बस उसी के लिए हो सकता है। यहीं तक नहीं, बल्कि अपने आने-जाने का सिलसिला जारी रखने के लिए उसका भाई तक बन गया ! ये विचार उठते ही जी में आया कि झपट कर उस पाखण्डी का गला घोंट दूँ। वैसे ही कल्पना चीख़ उठी—अरे ! इसमें तो सरोज का भी हाथ है। यदि उसमें इसके लिए मिठास न होती तो अब तक यह उस पर मक्खी की तरह क्यों भनभनाता ? आह ! कलेजा सर्द हो गया। स्वप्न की बातें सजीव मूर्तियाँ बन कर मेरे दिमाग़ को छाप बैठीं। सरोज की बदनामी की आवाज़ भी इस वक़्त घोर नाद करती हुई मेरे कानों में इस तरह गूँजने लगी कि मैं तहसीलदारिन और डिप्टी की छेड़-छाड़ आगे सुन न सका। यद्यपि निगाहों के सामने यही दोनों थे, तथापि मेरी दृष्टि ख़ून की आँखों से सरोज की कल्पित मूर्ति देख रही थी।

"अरे ! यह है ? एक तो भीतर लम्प की चकाचौंध और बाहर अँधेरा। उस पर मुई पहने है काली साड़ी, तभी तो वहाँ से यह दिखाई नहीं पड़ी।"

एकाएक तहसीलदारिन के उपरोक्त वाक्य से मुझे होश हुआ, तब जाना कि वह द्वार पर खड़ी है। मैंने चुपके से उसके हाथ में धर्मावतार का पत्र दिया। उसने सर घुमा कर डिप्टी से कहा—तुम्हीं जीते भाई, मगर यह मेरे एक पड़ोसिन की गूँगी दासी है। एक किताब लेने आई है, ठहरो अभी आती हूँ।

मुझे आने का इशारा करके वह नीचे आई, जल्दी से काग़ज़ पर इतना लिखा—'प्राणेश्वर, आज क्षमा कीजिए, मेरे सर में सख़्त दर्द है। मरी जाती हूँ। कल मिलूँगी।' और उस काग़ज़ को मुझे देकर चलता कर दिया।

जिस समय मैंने उस काग़ज़ को धर्मावतार को दिया वह उसे पढ़ कर अजीब तीखेपन से मुस्कुराए और बड़-बड़ा उठे—इन चुड़ैलों का यही हाल है। ठोकरों से बात करो तो तलवे चाटें, सीधे मुँह बोलो तो मुँह नोचें। अच्छा एक रोज़ प्रोग्राम में देर और सही।

मैं अब तक तहसीलदारिन ही को विश्वासघातिनी समझ रहा था, मगर अब धर्मावतार का यह रङ्ग देख कर मैं और दङ्ग हो गया। दोनों ही तरफ़ प्रेम नहीं, प्रेम का ढोंग ही ढोंग! या ईश्वर, यह किसलिए? मगर दूसरे दिन जब इन दोनों की मुलाक़ात हुई तो दोनों तरफ़ प्रेम का वह ज़ोर देखने में आया कि इन लोगों की आत्मीयता और सच्चाई पर लेश-मात्र भी शक करते न बना। मैं बौखलाया हुआ यही सोचता रहा कि मनुष्य क्या यहाँ तक बनावट कर सकता है? उसी दिन इनकी बातों से पता चला कि छोटी रानी के भाई के एकाएक बीमार पड़ जाने से शिकार पर कूच नहीं हुई। और बातों-बातों में मस्त होकर धर्मावतार ने तहसील-दारिन से यह भी कह दिया कि पत्र-वाहिका (यानी मैं) स्त्री नहीं, बल्कि असलियत में पुरुष है। पहले तो उसे विश्वास न हुआ, मगर बाद को उसने बड़े नख़रे-तिल्ले मचाए। बिगड़ कर कहने लगी—बाप रे बाप! मैं नहीं जानती थी कि यह पुरुष है, वर्ना इसके साथ इतनी-इतनी रात को मैं भला अकेली कहीं आ-जा सकती थी?

धर्मावतार बात काट कर बोले—तो क्या हुआ? जिसके साथ तुम पहिले आया-जाया करती थीं, वह भी तो आख़िर पुरुष ही था।

तहसीलदारिन—उसकी बात और थी। वह जाना हुआ आदमी था और निहायत ही तमीज़दार था।

धर्मावतार—क्या इसने कोई बदतमीज़ी की है?

तहसीलदारिन—अभी तो नहीं, मगर अनजाने आदमी का कौन ठीक? मैं तो इसके साथ अब एक क़दम न रक्खूँगी। मुझे भी आपने क्या कोई बेसवा समझ रक्खा है?

धर्मावतार—अरे, राम! राम! यह तुम क्या कहती हो? मैं क्या ऐसा बेवक़ूफ़ हूँ कि बिना उसे अच्छी तरह से ठोक-बजा कर परखे हुए तुम्हारे पास भेजता? और दूसरे यह तो देखो कि तुम पर मेरा कितना बड़ा अटल विश्वास है। भला किसकी मजाल है कि कोई तुमसे चूँ कर सके?

पहुँचाते समय रास्ते में तहसीलदारिन एक नया रङ्ग लाई। क़दम-क़दम पर वह डर-डर कर मुझसे चिमटने लगी। मकान पर पहुँच कर मेरी बड़ी आवभगत की। उम्दा-उम्दा पकवान थाल में लाकर मुझे ज़बरदस्ती खिलाने लगी। अब तक मेरी ऐसी ख़ातिरदारी कभी नहीं हुई थी। और न रास्ते में आते-जाते वक़्त पहिले कभी वह इस तरह मुझसे हिल-मिल कर चलती थी। अभी मैं खा-पीकर हाथ-मुँह धो ही रहा था कि एकाएक उसके पेट में शूल का दर्द उठा। मछली की तरह बिस्तरे पर तड़पने लगी और मुझे पास बुला कर मेरी गर्दन में अपने दोनों हाथ डाल दिए और मारे दर्द के हिचकियाँ ले-लेकर रोने लगी। मैं घबड़ाया और इशारे से बताया कि कमरे के बाहर जाकर और लोगों को बुला लूँ। मगर वह मेरी गर्दन से और लटक गई। मैं कुछ देर ज़मीन पर घुटनों के बल बैठा हुआ उसका सर सहला रहा था, इतने में उसके हाथ-पैर फेंकने के ढङ्ग में एकाएक शोख़ी का रङ्ग और निगाहों में छेड़ की चितवन ताड़ते ही मेरा माथा ठनका और मैं अपनी जगह पर घबड़ा कर सोचने लगा कि इसे सच-मुच दर्द है या मेरी परीक्षा लेने के लिए यह सारा ढकोसला किए हुए है या इसके सिवाय और भी कोई बात है। मैं अभी इसी उधेड़-बुन में पड़ा ही हुआ था कि वह चमक कर उठ बैठी और दर्द की बेताबी दिखलाती हुई सर खोले अपनी लटों को ख़ूब छितराए-अँगड़ा कर अलमारी के पास गई और उसमें से एक बोतल और दो गिलास निकाल लाई। अब तो यहाँ से भागने ही में अपनी भलाई देखी। बड़ी मुश्किलों से कुल्ला करने के बहाने मैं उसके कमरे से निकलने पाया। फिर तो सदर दरवाज़ा नाँघ कर सड़क पर आ जाना चुटकियों की बात थी।

एक की स्त्री, दूसरे से प्रेम, तीसरे से दिलबस्तगी और चौथे से क्या कहूँ? इस बेढब स्त्री-चरित्र के नमूने ने तो मेरे हृदय पर और वज्र ढा दिया। जिस व्यक्ति को पूजते-पूजते मैं मर मिटा, हाय! उसी की जाति की यह दशा? कलेजा छलनी-छलनी हो गया। यहाँ आकर अब तक मेरे प्रेम ने जितनी ठोकरें खाई थीं, उन सब पर

यह धक्का और भी अनर्थकारी प्रतीत हुआ। दिल के भीतर एक हाहाकार मच गया। और इस कोलाहल में सिर्फ़ एक ही आवाज़ सुनाई पड़ने लगी कि 'भागो! भागो! भागो!' मगर हाय! फिर भी वह स्थान मैं छोड़ न सका। बल्कि सुबह होते ही न जाने मुझ पर कौन सा शैतान सवार हुआ कि मैं राजभवन की ओर लपका। हाते के बाहर दाहिनी ओर एक नीम का बड़ा-सा पेड़ था। मैं उसी पर चढ़ कर दातौन तोड़ने लगा। डिप्टी हाते के भीतर फुलवारी में टहल रहे थे। बार-बार उनकी निगाह कोठे की ओर उठ जाती थी। मैंने भी उधर नज़र डाली। कोठे पर की एक चिक कुछ हिलती हुई मालूम हुई। कलेजे पर साँप लोट गया। मैं गिरते-गिरते बचा। किसी न किसी तरह से उतर कर भागा। और वहाँ से एकदम भाग जाने के लिए ही भागा। अब दिल पर अधिक अनर्थ सहने का दम नहीं रहा।

मैं जमुनियाबाग़ वाले कमरे में अपने कर्मों पर आठ-आठ आँसू बहा रहा था। सर पर हाथ रक्खे सोच रहा था कि हा! कैसे-कैसे अरमान लेकर आया था और क्या लेकर जा रहा हूँ। निगाहों के सामने तहसीलदारिन की मूर्ति ठट्ठा मार कर कह रही थी कि 'अय मूर्ख प्रेमी, मेरी जाति से उसी को सुख मिल सकता है, जो अपनी आँखें हर तरफ़ से बन्द करके सिर्फ़ उतनी ही बातें देखे और उन पर अन्ध-विश्वास करे, जितनी यह जाति उसको दिखाना चाहती है। उनसे अधिक देखने की कोशिश करने वालों के नसीब में चैन, सुख या शान्ति कहाँ?

यहाँ से भागने के लिए रात का इन्तज़ार करने लगा। मगर शाम होते ही नौकरी के कामों को फ़िक्र सवार हो गई; और उसके अनुसार ज़नाने कपड़े पहन कर धर्मावतार की प्रतीक्षा करनी पड़ी। वह आए और एक छोटा-सा पत्र तहसीलदारिन को लिखा, जिसको उनके पीछे खड़े होकर लिखते समय ही मैंने पढ़ लिया था। उन्होंने लिखा था—हृदयेश्वरी, आज तुम मर्दाने कपड़े पहन कर आओ। क्योंकि आज तुम्हारे साथ मोटर पर घूमने का इरादा है। खाना भी तुम्हें यहीं खाना होगा। तहसीलदार साहब के अभी लौटने की कोई चिन्ता नहीं है। हालाँ कि अन्नदाता जी के साले साहब को बीमारी के कारण शिकारी लोग शिकार पर अभी नहीं जा सके, तथापि वह उनके इन्तज़ार में वहीं रोक दिए गए हैं। शिकारी लोग ग़ालिबन कल रवाना होंगे।

इस ख़त को मेरी ओर बढ़ा कर फिर वह दूसरा ख़त लिखने लगे। मैं उसको भी पढ़ने के लिए अटका हुआ था, मगर उन्होंने मुझे पहिला पत्र लेकर चले जाने का इशारा किया। अभी मैं जमुनियाबाग़ के फाटक ही पर था कि एक मोटर और शहर से आती हुई दिखाई पड़ी। अँधेरा हो चुका था। मैं पेड़ों की आड़ में था, मोटर सीधी बँगले के सामने जाकर रुकी। मैं लौट पड़ा और दबे पैरों चोर की तरह बँगले के एक किनारे वाले कमरे में घुस कर गोल कमरे में झाँकने लगा। नए आने वाले मैनेजर साहब थे। इनको देखते ही धर्मावतार बोल उठे—अरे! आपने क्यों तकलीफ़ की, मैं तो ख़ुद ही अभी-अभी आप लोगों के पास आ ही रहा था।

मैनेजर—माफ़ कीजिए। मगर बात ही ऐसी पड़ गई कि बिना आपके पास जल्दी से जल्दी आए काम नहीं चला। बड़ी मुश्किलों से तो आपका पता लग सका। नहीं तो बड़ी मुश्किल पड़ती।

धर्मावतार—ख़ैरियत तो है?

मैनेजर—क्या बताऊँ, जैसे ही छोटी रानी के साथ उनके भाई टहल कर मोटर से उतरे, वैसे ही उनको एक तार मिला, जिससे मालूम हुआ कि उनके घर पर कोई दुर्घटना हो गई है। वह बेचारे बहुत घबड़ाए हुए हैं और इसी गाड़ी से जाने को कहते हैं।

छोटी रानी के साथ डिप्टी का मोटर पर घूमना सुन कर मैं और जल मरा।

धर्मावतार—अच्छा चलता हूँ। ज़रा इसे ख़तम कर लूँ।

मैनेजर—क्या लिख रहे हैं आप?

धर्मावतार—राज-काज के मामले में अक्सर नीच से नीच काम करना पड़ता है। वही कर रहा हूँ।

मैनेजर—क्या, है क्या?

धर्मावतार—वही, नए गूँगे को पुराने गूँगे की जगह पर तैनात करने के लिए तैयार करने में लगा हूँ।

मेरे कान एकाएक खड़े होगए।

मैनेजर—किस तरह, किस तरह? ज़रा बताइए तो।

( शेष मैटर ७४९ पृष्ठ के दूसरे कॉलम के नीचे देखिए )

# शाही मज़दूर-कमीशन के सदस्य

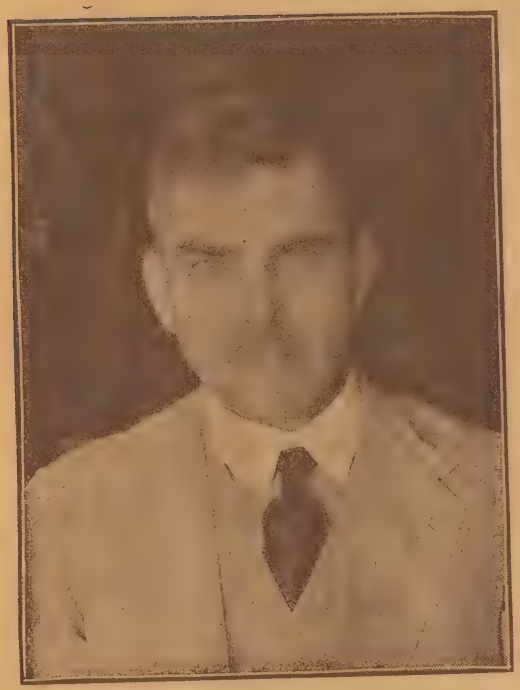

लेफ़्टिनेण्ट-कर्नल ए० जे० एच० रसल; सी० बी० ई० ; आई० एम० एस० ( चिकित्सा-सम्बन्धी सलाहकार )

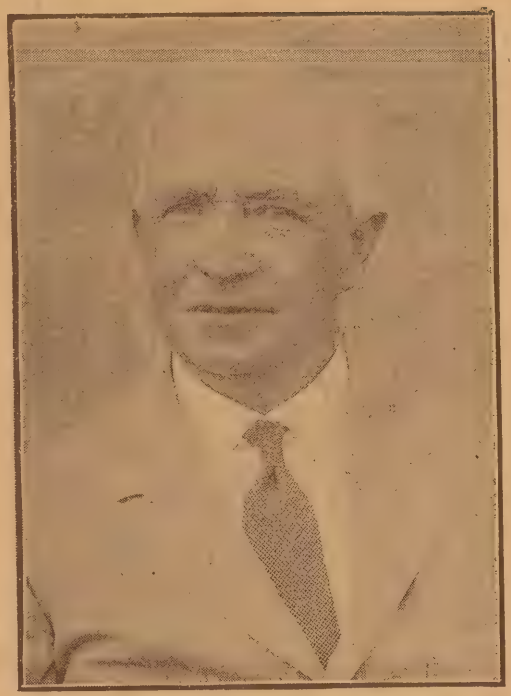

माननीय मि० जे० एच० ह्विटले ( सभापति )

मि० ए० डिब्डी ( संयुक्त मन्त्री )

श्री० कबीरुद्दीन अहमद, एम० एल० ए०

# शाही मज़दूर-कमीशन के सदस्य

सर इब्राहीम रहमतुल्ला ( नाईट ) के० सी० एस० आई० ; सी० आई० ई०

माननीय श्री० वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री

श्री० घनश्यामदास जी बिड़ला, एम० एल० ए० ( प्रधान, भारतीय उद्योग तथा व्यापार-सङ्घ )

श्री० एन० एम० जोशी; एम० एल० ए० ( भारतीय मज़दूर-सङ्घ के सुप्रसिद्ध नेता )

# शाही मज़दूर-कमीशन के सदस्य

मि० जॉन क्लिफ़ ( इङ्गलैण्ड की रेलवे और ट्रान्सपोर्ट वर्कर यूनियन के एसिस्टेण्ट जेनरल सेक्रेटरी )

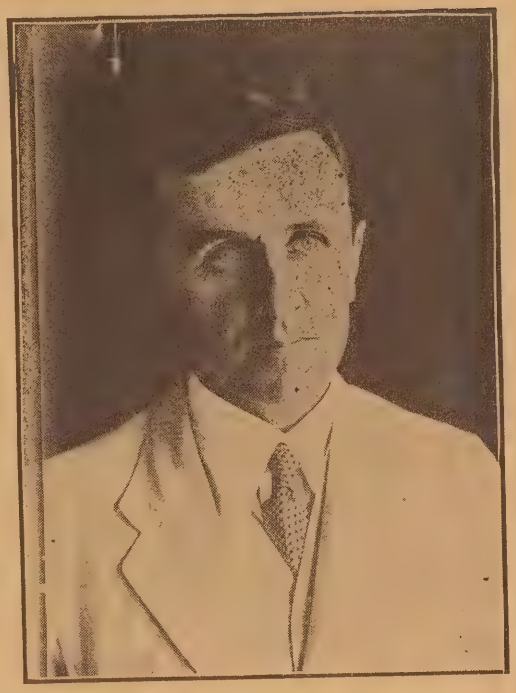

मि० ए० जी० क्लो; सी० आई० ई०, आई० सी० एस०

सर ऐलेक्ज़ेण्डर मरे (नाईट ) सी० बी० ई०

श्री० एस० लाल ; आई० सी० एस०; ( संयुक्त मन्त्री )

# शाही मज़दूर-कमीशन के सदस्य

श्रीमती माई हरदेवी बाई
( कराची की नामज़द सदस्या )

श्रीमती होमाय एफ़० जे० कड़ाका
( कराची की नामज़द सदस्या )

मिस बी० एम० ले पोयर पावर ( इङ्गलैण्ड के व्यापार-बोर्ड की डिपुटी चीफ़ इन्स्पेक्ट्रेस )

दीवान चमनलाल, एम० एल० ए० ( भारतीय मज़दूर-सङ्घ के सुप्रसिद्ध नेता और भारतीय मज़दूर कांग्रेस के प्रधान )

रेड-क्रॉस के नर्स का पार्ट करते हुए, अमेरिका की सुप्रसिद्ध सिनेमा-अभिनेत्री—कुमारी मेरी बार्ड—जिनके सम्मानार्थ अमेरिकन गवर्नमेण्ट ने ५ करोड़ डाक के टिकटों पर आपका यही चित्र छाप कर आपको अलौकिक प्रोत्साहन प्रदान किया है।

पिता की दूकान पर पुत्री का धरना। ( बाँई ओर अकेली ) श्रीमती लीलावती देवो व्यास। आप इन्दौर की एक उत्साहिनी कार्यकर्त्री हैं। इस चित्र में पाठक देखेंगे, आप अपने पिता के विलायती कपड़े की दूकान पर अन्य स्वयंसेविकाओं के साथ धरना दिए खड़ी हैं।

भारत की बड़ी व्यवस्थापिका सभा के भूतपूर्व प्रधान श्री० विट्ठलभाई पटेल ऑस्ट्रियन धारा-सभा के प्रधान— डॉक्टर कार्ल रेज़ से भेंट कर रहे हैं।

श्री० विट्ठलभाई पटेल ऑस्ट्रिया के एक हस्पताल का निरीक्षण करने गए थे। इस चित्र में पाठक हस्पताल के मुख्य कार्यकर्त्ताओं के साथ उन्हें बैठे हुए देखेंगे।

बम्बई के हिन्दोस्तानी सेवा-दल के शिक्षक-अफ़सरों का ग्रूप। बीच में पाठक सेवा-दल के प्रधान—श्री० सम्बामूर्ति को बैठे हुए देखेंगे।

श्री० अलख नारायण वर्मा—आप नवादा ( गया ) के प्रमुख राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता हैं और दो बार जेल हो आए हैं। आपका परिवार अब तक राजभक्ति के लिए विख्यात था। आपके पितामह रायसाहब एवं ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट थे।

रानपूर ( गुजरात ) के भूतपूर्व डिक्टेटर और सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्ता— श्री० डॉक्टर भगवानदास जी दवे।

श्री० ओ३म्प्रकाश तिवारी—आप आगरा के उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। विदेशी वस्तु बहिष्कार के सम्बन्ध में आपने खूब काम किया है, और जेल भी हो आए हैं।

[ श्री० रतनलाल जी मालवीय, बी० ए०, एल्-एल्० बी० ]

( शेषांश )

## दूध और शहद की ख़ूराक

इन मिष्ठान्नों में शहद, किसमिस, खजूर, आलूबुख़ारे, और अंजीर आदि शामिल नहीं हैं, जिनमें स्वाभाविक ही से मिठाई का अंश रहता है। यदि ये जिह्वा-लोलुप मांस और चर्बी के पहाड़ अभ्यास द्वारा केवल मनुष्य के हाथ की मिठाई छोड़ कर ईश्वर की बनाई हुई मिठाई खाने लगें तो वे शीघ्र ही इस विपत्ति से मुक्ति पा जाँय। ये फल केवल मीठे ही नहीं हैं; साथ ही उनमें भोजन के वे सब तत्व भी मिल जाते हैं, जो शरीर का बल और जीवन या प्राण-शक्ति बढ़ाते और वीर्य उत्पन्न कर, उसके ओज का विकास करते हैं। इन फलों का ज़्यादा तो नहीं पर उपयुक्त मात्रा में वे उपयोग कर सकते हैं।

मुटाई छाँटने की ख़ूराक केवल चोकर मिली हुई रोटी, थोड़ा घी या मक्खन, कुछ ताज़े फल और हरी तरकारी होनी चाहिए। मुटापे में पानी अधिक न पीना चाहिए। पानी केवल उतना ही पीना चाहिए जितने की स्वाभाविक इच्छा हो। जो लोग वर्षों ख़ूब स्वादिष्ट और चटपटा आहार करते रहे होंगे, उन्हें यह सीधी-सादी ख़ूराक अखरैगी अवश्य, पर थोड़े दिनों के अभ्यास से वे केवल अपनी जिह्वा पर ही नहीं अपनी मुटाई पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे। बीच-बीच में जब उन्हें अपनी मीठी और चटपटी थाली की याद आजाय उसी समय सङ्कल्प द्वारा उसकी कल्पना का नाश कर डालना चाहिए।

शरीर की मुटाई जल्दी छाँटने के लिए इस नियमित भोजन के साथ ही उपयुक्त व्यायाम भी अत्यन्तावश्यक है। हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि हम जो भोजन करते हैं वह शारीरिक क्रियाओं और सञ्चालन के द्वारा ही पचाते हैं; इसलिए यदि अखाड़े में जाकर या घर पर ही आवश्यकता से कुछ अधिक व्यायाम करें, तो मुटाई बहुत जल्दी घट जायगी। पुस्तक के दूसरे भाग में पेट के लिए जो व्यायाम दिए गए हैं वे चर्बी छाँट कर बदन को कसने में बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। उपर्युक्त भोजन चर्बी छाँटने के लिए उपयुक्त है; पर भोजन के साथ-साथ व्यायाम चर्बी बहुत जल्दी छाँट देगा।

---

( ७३६ पृष्ठ का शेषांश )

धर्मावतार—गुलगुले खाइए, आपको गुड़ से क्या मतलब ? नतीजे से सरोकार रखिए, तरकीब जान कर क्या कीजिएगा ? उसकी मुसीबत झेलने के लिए तो मैं हूँ ही।

मैनेजर—आख़िर कहाँ तक सफलता मिल चुकी ?

धर्मावतार—दिन दूनी रात चौगुनी। औरत की पोशाक में उसे औरतों में भेज कर इतमीनान कर ही लिया कि उसे कोई नहीं भाँप सकता कि वह पुरुष है। अब थोड़ी सी कसर और है, जिसके लिए वह साधा जा रहा है। ईश्वर चाहेगा तो आज ही कल में उसे आपके सुपुर्द कर सकूँगा।

मैनेजर—ओहोहो ! तब तो पुराने गूँगे को आज ही हटा देना चाहिए।

धर्मावतार—नहीं-नहीं, अभी नहीं। सिर्फ़ उम्मीद के भरोसे हाथ की चीज़ खो देना मेरी पॉलिसी के सख़्त ख़िलाफ़ है। मैं ऐसी बेवक़ूफ़ी कभी नहीं करता।

( क्रमशः )

( Copyright )

# चाँद की व्यंग चित्रावली का एक पृष्ठ

पूर्व !

पश्चिम !

# बीसवीं सदी में भारतीय नारियाँ

[ गुरुकुल-वृन्दावन के २६वें वार्षिकोत्सव के उपलक्ष में महिला-परिषद की सभानेत्री की हैसियत से, उत्कल-विदुषी श्रीमती कुन्तल-कुमारी देवी ने जो समयोपयोगी और सार-गर्भित अभिभाषण दिया था, उसका सार हम 'चाँद' की पाठिकाओं के लिए नीचे देते हैं। उत्कल-वासिनी होने पर भी देवी जी ने यह अभिभाषण हिन्दी में पढ़ा था। इससे इसकी महत्ता और भी बढ़ गई है। —सम्पादक 'चाँद' ]

बहिनो ! हमारी अवस्था क्या है ? जगत में हमारी दशा क्या है ? और दुनिया के अन्दर हमारा स्थान कहाँ है ? हम अभिमान से कहेंगी—सीता और सावित्री के देश में हमारा जन्म हुआ है ; गार्गी, मैत्रेयी और विश्वधारा हमारी पूर्वजाएँ थीं । परन्तु उत्तराधिकारिणी बनने के लिए कितनी सच्ची चीज़ हमारे पास शेष रह गई हैं ? हमें देख कर क्या दुनिया यही समझती होगी कि ये निरक्षराएँ, रूढ़ियों की दासियाँ, समाज के कुसंस्कारान्धकार में भटकने वाली, जिनके अन्दर लाखों आघातों पर चूँ तक करने का भी दम नहीं, सावित्री जैसी तेजस्विनी एवं यमराज से लड़ने वाली तथा गार्गी और मैत्रेयी जैसी स्वाधीनमना विदुषियों की पुत्रियाँ हैं ? भारतीय नारियाँ किसी समय वेदों की रचना करने वाली थीं ; सहस्रों पण्डितों की सभा में इन्होंने शङ्कराचार्य जैसे परम विद्वान को हरा दिया था। कालिदास जैसे कवि इन्हीं में से एक के तिरस्कार से, विद्या बिना जीवन को व्यर्थ समझ कर, सरस्वती की खोज में चले गए थे। ये भारतीय महिलाएँ कभी ऐसी थीं कि मानव क्या, देवता भी इनका आदेश नहीं टाल सकते थे। यहाँ तक कि इनकी आज्ञा मान कर सूर्य ने अपना उदयास्त तक बन्द कर दिया था।

परन्तु अब हम क्या रह गई हैं ? पुरुषों के हाथों का खिलौना ! वे हमें जिस तरह चाहते हैं, नचाते हैं। उच्च स्थान में ले जाएँ, तो हम उच्च बनें और नीचे गिरा दें, तो नीचे गिरी रहें ! अब हमारी कोई स्वाधीन इच्छा नहीं रह गई। हम दूसरों की इच्छा-दासी, पिंजड़े का तोता बन गई हैं। जो स्वतन्त्रता विधाता ने हर एक मनुष्य को दी है, परमात्मा के दिए हुए जिस अधिकार को लेकर मनुष्य मनुष्य कहलाता है, वह हमारा अधिकार, हाय ! भारतीय बहिनो, कहाँ खो गया ? हम किस वस्तु पर दावा करें ? दूसरों की दी हुई लाञ्छना की रोटी से टुकड़े का मुहताज बनने के सिवा हमारे गौरव की सामग्री और कुछ भी नहीं रही।

हम समझती हैं, देश की स्वाधीनता के लिए लड़ना नारी और पुरुष दोनों का कर्तव्य है। परन्तु यह भी सोचने की बात है कि जिस देश में स्त्रियाँ स्वयं पराधीना बन्दिनी हैं, उस देश की स्वाधीनता के लिए लड़ने की उनकी क्या ग़र्ज़ थी ? भगवान अन्यायी नहीं हैं। भारतीय पुरुषों ने गत कई शताब्दियों से स्त्रियों को जो पराधीन और हीन बना रक्खा है, यह पराधीनता उसी कर्म का फल है। इसी पाप के कारण वे हज़ारों वर्षों से पराधीनता के दुःख झेल रहे हैं। परन्तु हम पुरुषों से बदला लेना नहीं चाहतीं। हम उन्हें अपने देश में स्वाधीन देखना चाहती हैं। इसीलिए हम बन्दिनी होकर

भी, पुरुषों की दृष्टि में हीन, नीच, दीन, दुर्बल, अबला होकर भी देश के कल्याण के लिए वीराङ्गनाओं की भाँति इस असहयोग महासंग्राम में अपना सर्वस्व निछावर कर देने को तैयार हो गई हैं और इसीसे हमें अपने अधिकार-लाभ की योग्यता भी प्राप्त हो गई है।

लेकिन इसमें भी देखने, सोचने और विचारने के योग्य एक बात है! इस युद्ध में पुरुष हैं पथ-प्रदर्शक और नारियाँ हैं अनुसारिणी। पुरुषों के उङ्गली-निर्देश पर चलना, उनके आदर्श को शिरोधार्य करना ही नारियों ने अपना धर्म समझ लिया है! पुरुष सदैव से ही संसार को अधिकार में कर अपने पाशविक बल से संसार का राजा—अधिपति—बन बैठा है। नारी को अपने समान अधिकारिणी समझना इसके लिए प्राण-घातक क्लेश है। पुरुष ने अपने विचार का प्रभाव नारी पर ऐसा डाला है कि नारी भी समझती है कि भगवान ने ही पुरुष-जाति को नारी से बड़ा—नारी का प्रभु बनाया है! इस दास-मनोभाव ने ही नारी-जाति का सर्वनाश किया है। समानता, एकता, परस्पर मैत्रीभाव के बदले दासत्व को ही नारी ने अपना कर्तव्य समझ लिया है। इसलिए आज नारी-जाति पर पुरुषों का अन्याय-अत्याचार क़ायम है। नारी पुरुष से हीन किस बात में है? पुरुष कहते हैं, नारी निर्बल है, पुरुष बलवान है। नारी ने भी मान लिया—नारी अबला है। परन्तु बल-क्या केवल शरीर का ही होता है; आत्मबल, मनोबल क्या कोई चीज़ नहीं हैं? हम पूछती हैं, जिस देश में आठ वर्ष की अबोध बालिका साठ वर्ष के गलित-दन्त, पलित-केश वृद्ध के साथ ब्याही जाती है, जिस देश में ५ वर्ष की शिशु-विधवा आजन्म-ब्रह्मचारिणी बनने के लिए विवश की जाती है, जिस देश में अपनी जीवितावस्था में ही सती-साध्वी, अपने पति को बार-बार नव-विवाहों में आबद्ध देख कर भी प्रफुल्ल-मुखी रहती हैं, जिस देश में नारियों का न तन पर, न मन पर, न धन पर, न सन्तान पर कोई अधिकार है, उस देश का पुरुष नारी से किस गुण में बड़ा है?

मनु जी ने भले ही लिख दिया है कि "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" परन्तु समान बनने की भी जहाँ इच्छा नहीं, वहाँ पूजा से क्या मतलब? और हम अपनी पूजा थोड़े ही चाहती हैं—हम तो चाहती हैं कि हमें मनुष्य की दृष्टि से देखिए।

हमें जन्म से दुनिया की किसी वस्तु पर भगवान ने अथवा हमारा भगवान जो धर्म-शास्त्र है और जिसे पुरुष ने अपने कौशलमय हाथों से बनाया है, उसने अधिकार नहीं दिया। "पिता रक्षति कौमार्ये, भर्ता रक्षति यौवने, पुत्रः रक्षति वार्द्धक्ये" बस पुरुष हमारा पिता, पति, पुत्र रूप से मालिक है। चिन्ता की कोई बात न थी। हमने भी मान लिया था उनका आदेश! हमें ख़रीदना, बेचना, चाहे जैसे सुख या दुखमय जीवन के अन्दर ढकेल देना उनके बाएँ हाथ का खेल हो गया। हमें, हमसे बिना पूछे, सब कुछ बना देने का उन्हें हक़ रहा। हम, निर्जीव बोझ की तरह, जहाँ चाहा वहीं उठा कर रख दी गईं। चाहे कोई पैर से दबा लो, कोई गले में रस्सी डाल कर घसीट लो, चुपचाप सब सह लेना ही हमारा कर्तव्य है। कट्टर समाज-सेवी नाक-भौं सिकोड़ कर कहने लगे, नारी तो पैर की जूतियों के बराबर हैं। बस उन्हें सिखाओ कि पुरुषों की आज्ञाकारिणी बनना ही तुम्हारा सब से उच्च आदर्श है। पुरुष चाहे तुम्हारे जीते जी सात शादियाँ कर ले, परन्तु तुम्हें पतिव्रत का पालन करते रहना चाहिए। चाहे तुम तीन साल को उमर में ही विधवा क्यों न हो जाओ। रही पढ़ने-लिखने की बात, सो अगर नारियाँ पढ़ें-लिखें तो घर का काम कौन देखे? नौकर का काम किससे लिया जाय? जिन नारियों ने वेद बनाए, उन्हीं को शूद्र के समान बता कर वेद पढ़ाना तो दूर रहा, एक मन्त्र उच्चारण करने का अधिकार भी उनसे छीन लिया गया। पुरुषों की जिस उच्छृङ्खलता के कारण आज लाखों सुकुमारी अबलाएँ पति के गृह-कोण में अकथ-नीय रोग भोग कर मृत्यु-शय्या तक वरण कर लेती हैं। उस दोष के लिए—पुरुषों की इस भीषण अधोगति के लिए—उन्हें समाज की ओर से दण्ड मिलता है! पुरुषों का अनियन्त्रित जीवन और दुर्निवार लालसा के फल-स्वरूप कितनी हतभागिनी सती-साध्वी, कुल-लक्ष्मियाँ बलि चढ़ाई जाती हैं, उनके दुख-व्याधि के प्रतिकार के लिए ऐसा कौन सा क़ानून सरकार ने बनाया है?

अपने ऊपर होने वाले तमाम अनाचार, अत्याचारों

का बदला लेना नहीं, वरन् उनका सुधार करना ही हमारा उद्देश्य है। हम भारतीय नारी हैं, पृथ्वी के अन्यान्य देशों के अनुरूप पुरुषों से बदला लेने के लिए, पुरुष बनना हम नहीं चाहतीं। हम नारी हैं और यही हमारा गौरव है। नारीत्व को अपमान समझना, परमात्मा की सृष्टि के विरुद्ध असन्तोष प्रकट कर अपनी मर्ज़ी के अनुसार मनमाना रास्ता बना लेना हमारे देश का आदर्श नहीं है। हमारा आदर्श है हमारी प्राचीन माताएँ, हमारी आर्य-महिलाएँ, जो उच्छृङ्खल और स्वेच्छारिणी नहीं थीं, बल्कि पातिव्रत्य को अपना परमादर्श समझती थीं।

आज सारे संसार में युद्ध हो रहा है। निर्बल बलवानों के साथ, निर्धन धनिकों के साथ, शस्त्रधारी अशस्त्रों के साथ, स्त्रियाँ पुरुषों के साथ जूझ रही हैं। लड़ना तो हमारा कर्तव्य है, पर हमारी माँगें क्या हों? हम चाहती हैं अधिकार—अपने शरीर पर, अपने धन पर, अपने पति-सन्तति पर, अपने समय पर, अपने धर्म पर।

हम शरीर पर इसलिए अधिकार चाहती हैं कि जिस से बाल्य काल में माता-पिता हमें चाहे जिसके साथ न बाँध दें। हम धन पर इसलिए अधिकार चाहती हैं कि हम अपनी जीविका-निर्वाह की अधिकारिणी बन कर समाज में पुरुषों के साथ एक आसन प्राप्त कर सकें। जिस सन्तान को ख़ून-पानी कर हम इस धरती पर लाएँ, उस पर हमारा अधिकार होना न्याय ही है। समय पर हम इसलिए अधिकार चाहती हैं कि जिससे हम, चहारदीवारी के अन्दर रहने के अतिरिक्त, अन्य उपयोगी काम भी कर सकें। हमें धर्म पर इसलिए अधिकार होना चाहिए कि नारी-धर्म पुरुष-धर्म से अलग है। वह न हिन्दू-धर्म है, न इस्लाम-धर्म, न ईसाई-धर्म है। वह प्रेम-धर्म है, मातृ-धर्म है, दया-धर्म है; जहाँ युद्ध नहीं, हिंसा नहीं, द्वेष नहीं; बल्कि है महाप्रेम, महाक्षमा, महाशान्ति।

युगान्तर की निद्रा भङ्ग कर अब नारी-जाति जग गई है। अब वे अपने पैरों पर खड़ी होने लगी हैं। उन्हें उनके अधिकार अवश्य मिलने चाहिएँ, इसीमें संसार का कल्याण है।

❀ ❀ ❀

# स्त्रियों का स्थान

[ कुछ समय हुआ, जबलपुर की 'नारी-मङ्गल समिति' के उत्सव पर सभा-नेत्री, श्रीमती ऊषा मित्र, ने जो भाषण दिया था, उसके कुछ अंश हम पाठकों के लाभार्थ नीचे उद्धृत करते हैं।
—स० 'चाँद' ]

यद्यपि एक श्रेणी के लोगों ने भारतीय नारी को निकृष्ट प्रमाणित करने के लिए अथक परिश्रम किया है, किन्तु विचारपूर्वक देखने से निश्चय होता है कि नारी न तो कभी हीन थी और न होगी। वह केवल कुछ काल के लिए सुप्त-मात्र रह सकती है। प्राचीन ग्रन्थों में इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। हिन्दुओं की ईश्वर-रचित पुस्तकों में सब से प्राचीन ऋग्वेद की अनेक ऐसी गाथाएँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा सकती हैं, जो नारी द्वारा ही प्रकाशित हुई थीं। इससे ज्ञात होता है कि पुरातनकाल में नारी का स्थान धर्म-जगत् में कितना उच्च था एवं यह भी समझना कठिन नहीं है कि वेद समझने की शक्ति नारियों में थी। लिखने-पढ़ने में भी वे किसी प्रकार हीन नहीं थीं। हिन्दू-समाज में ऋषि का पद सर्वोच्च है और अनेक स्त्री-ऋषियों के नाम हमारे प्राचीन साहित्य में प्राप्त होते हैं। समाजिक रीति-नीति भी नारी-समाज के लिए अपमानकारक नहीं थी। स्त्रियों को पति-निर्वाचन का अधिकार था; इससे यह भी अनुमान होता है कि बालिकावस्था में उनका विवाह तो होता ही नहीं था, प्रत्युत व्यक्तिगत स्वाधीन-सत्ता एवं स्वतन्त्रता के अधिकार से भी उन्हें वञ्चित नहीं रक्खा जाता था। मध्य युग में रानी दुर्गावती, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, सुल्ताना, साम्राज्ञी नूरजहाँ आदि राज्य शासन व प्रजापालन में अद्भुत क्षमता एवं दक्षता प्रदर्शित कर भारतीय नारी-शक्ति की अव्याहत धारा का प्रमाण देती हैं। पुरातन युग को छोड़ दीजिए, वर्तमान भारत के नवजागरण में भारतीय नारी का अवदान है। बाहर का आह्वान पाते ही हज़ारों स्त्रियाँ घर और बाहर एक समान कार्य सँभाल कर कल्याणी मातृमूर्त्ति को पूर्ण करने के निमित्त तुली हुई हैं।

'स्त्री-पुरुषों को समान अधिकार होना चाहिए' इस बात को लेकर हम लोग प्रायः अनेक तर्क-वितर्क कर

बैठती हैं; उस समय हम यह नहीं विचार करतीं कि अन्तःपुर के जो साम्राज्ञीय अधिकार हमें प्राप्त हैं, उन्हें किस प्रकार चुरण करके बाहर कूद पड़ने के लिए हम उद्योग करती हैं। मैं इस बात को स्वीकार करती हूँ और बारम्बार स्वीकार करती हूँ कि स्त्रियों का पूर्ण विकास अन्तःपुर में ही आबद्ध नहीं है; उस विकास के लिए अन्तःपुर तथा उससे बाहर भी उनके लिए क्षेत्र खुला हुआ है और उन दोनों पर उनका पूर्ण अधिकार है। किन्तु इस बात को न बिसर जाना चाहिए कि अन्तःपुर सम्बन्धी कर्त्तव्य-कर्म सुचारु रूप से सम्पादित कर लेने के बाद ही बाहर की बातों का विचार हो सकता है। अन्यथा सारा परिश्रम बालू के ऊपर पत्थर के प्रासाद के समान निरर्थक होगा। पुरुषों के समान हमें भी अधिकार चाहिए; किन्तु उस समानता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि यदि पुरुष-जाति को भला व बुरा जो कुछ भी करने का अधिकार है, तो हमें भी वही अधिकार मिलें। हम लोग जो समान स्वाधीनता माँगती हैं, उसका प्रकृत अर्थ यह है कि पुरुष जिस प्रकार अपना पूर्ण विकास करने का अधिकार भोग करते हैं, उसी प्रकार हम लोग भी अपना विकास करने का सुयोग पावें। जीवन में स्वाधीनता एक परमाराध्य वस्तु है; परन्तु स्वाधीनता और निरङ्कुशता एक ही वस्तु नहीं हैं। एक कार्य को असमाप्त छोड़ कर दूसरे के लिए दौड़ना अस्थिरवृत्ति का परिचायक है। प्रयोजन पड़ने पर स्त्री-जाति का परम धर्म है कि माताओं का असीम शक्ति-जाज्वल्य रूप धारण करके अन्तःपुर के बाहर निकले, किन्तु साथ ही साथ यह भी ध्यान रहना चाहिए कि अपने अनुरूप मातृमूर्त्ति को सङ्गठित कर बाहर भेजने का भार भी उसी पर है।

हम लोग माताओं की श्रेणी में हैं। हममें जिस शक्ति का निवास है, उसका विचार हममें से अधिक लोगों ने नहीं किया है। यदि आग्रहपूर्वक हम अपने अन्तस्तल में देखें तो स्पष्ट दृष्टि-गोचर होगा कि हमारी शक्ति के अंश से जिस नारी का जन्म है, उसकी शक्ति का अन्त नहीं। हमारे अन्तस्तल में ऐसी-ऐसी शक्तियाँ सुप्तावस्था में पड़ी हुई हैं कि जो सदा वाञ्छनीय हैं और जिन्हें जगाना हमारे हाथ की बात है। हमें सब सुभीते और सुयोग प्राप्त नहीं हैं और इसीलिए तर्क-वितर्क या दुःख करने बैठें तो उससे कोई लाभ नहीं। जो कुछ प्राप्त है उसीके भीतर सुभीता और सुयोग निकाल कर उस सोती हुई शक्ति को उद्बोधित कर घर और बाहर अपने कर्तव्यों का पालन करना ही माताओं की प्रधान साधना है।

हमारे देश ने जीवन को एक अखण्ड रूप में देखा है; धर्म, दर्शन, शिल्प आदि को जीवन से भिन्न नहीं रक्खा है। शक्ति का जब प्रादुर्भाव होता है तो उसका प्रकाश जीवन के समस्त पथों पर पड़ता है। सम्भव है अभी तक विश्व के उन्नत ज्ञान, विज्ञान व चारु शिल्प में नारी-जाति ने अपना योग न दिया हो, किन्तु आज समस्त नारी-मण्डल में जागृति के चिह्न स्पष्ट रूप से दृष्टि-गोचर हो रहे हैं। परमपिता परमेश्वर के निकट हम लोगों की यह प्रार्थना है कि वह शक्ति, वह जागृति, भारत ही नहीं समस्त विश्व की सभ्यता की प्रकृति व परिधि को वृहत्तर, महत्तर, एवं सुन्दरतर बनावे। आज अन्तःपुर की वह क्षीण दीप-शिखा, जो निर्जन कोने में अपना मृदु प्रकाश फेंक रही है, गगनालोकी सूर्य-सदृश तेज धारण करके समस्त मानव-समाज को उद्भासित करे, यही हम लोगों की एकान्त कामना एवं आन्तरिक प्रार्थना है, यही हमारी तपस्या एवं सच्ची साधना है।

---

राम – तुम्हारी माँ को एक छूत का रोग है। सँभल कर रहना, कहीं तुम्हें भी वे अपना रोग न दे दें।

श्याम—डरो मत, वे मेरी विमाता हैं और मुझे कुछ भी नहीं देतीं।

❀ ❀ ❀

पड़ोसी—तुम्हारा पुत्र तो बम्बई में रहता है। तुम्हें बम्बई के विषय में कोई आश्चर्यजनक बात मालूम पड़ी?

माँ—हाँ, वहाँ स्त्रियाँ थोड़ी आयु में ही मर जाती हैं। क्योंकि जब मेरा पुत्र तीन वर्ष बाद यहाँ आता है, तो प्रत्येक बार एक नई पत्नी साथ लाता है।

# विज्ञान और वैचित्र्य

## आमाशय के भीतरी भागों की चित्रकारी
## ( Gastro-photography )

आपने चित्रकारी के विषय में अनेकों विचित्र बातें पढ़ी होंगी, परन्तु आपने यह नहीं पढ़ा होगा कि आमाशय ( Stomach ) के भीतरी भागों का चित्र खींचना भी सम्भव हो गया है।

आमाशय ( जिसे सोधी-सादी भाषा में 'पेट' कहते हैं ) के रोगों का निदान डॉक्टर लोग अब तक तीन उपायों से करते थे। पहला, रोगी की वाह्य परीक्षा करके। दूसरा, रोगी के आमाशय के रसों को निकाल कर और उनकी परीक्षा करके। और तीसरा उपाय था, किसी भारी धातु को खिला कर एक्सरेज़ ( X-rays ) द्वारा आमाशय का चित्र लेना। इस पिछले उपाय द्वारा जो चित्र खिंचता था, उससे केवल यह मालूम हो सकता था कि आमाशय के आकार में क्या ख़राबी है। और उसी ख़राबी द्वारा डॉक्टर अपना निष्कर्ष, निदान के लिए, निकालते थे, परन्तु इस विधि के द्वारा आमाशय के भीतरी भाग का असली चित्र नहीं खिंच सकता था।

पिछले वर्ष ही कुछ आविष्कारकों ने एक कैमरे का आविष्कार किया है, जिसके द्वारा आमाशय के भीतरी भाग का चित्र खिंच सकता है। यह कैमरा बहुत ही छोटा, मटर के बीज के आकार का होता है। यह एक रबर की लम्बी नली के सिरे पर लगा होता है और उसी सिरे पर बिजली का एक नन्हा-सा बल्ब लगा होता है। इस बल्ब के द्वारा आमाशय के भीतर, चित्र लेते समय, प्रकाश हो जाता है। इस कैमरे में सैलूलौइड ( Celluloid ) के छः फ़िल्म होते हैं—ये छहो फ़िल्म, एक के बाद दूसरा, एक साथ ही चित्र लेने के लिए प्रयोग में लाए जा सकते हैं।

इस कैमरे का प्रयोग कठिन नहीं है। रोगी डॉक्टर के सामने बैठ जाता है। रबर की नली के कैमरे वाले सिरे पर शहद या ग्लिसरीन लगा कर रोगी उसे निगलता है। धीरे-धीरे वह सिरा आमाशय में पहुँच जाता है। जब सब ठीक हो जाता है, तो डॉक्टर बाहर निकले हुए बटन को दबा देता है और फ़ोटो खिंच जाता है। कैमरे को घुमा-फिरा कर एक ही बार कई चित्र लिए जाते हैं, जिससे आमाशय का कोई भाग रह न जाय। पीछे से इन चित्रों से बड़े चित्र बना लिए जाते हैं। इस प्रकार के चित्रों से अमाशय के विषय में बहुत सी बातें ऐसी मालूम होती हैं, जिनका पहले ज्ञान होना बहुत कठिन था। इससे यह पता चल जाता है कि सारे आमाशय में सूजन है या किसी एक स्थान पर फोड़ा है। यदि वह फोड़ा है, तो कितना पुराना है। वह साधारण फोड़ा है या नासूर है, इत्यादि। हाँ, इन सब बातों का पता एक अनुभवी व्यक्ति ही लगा सकता है।

इस यन्त्र से रोगी को कोई कष्ट नहीं होता, इस बात के दर्शाने के लिए लन्दन की फ़िल्म कम्पनी, British Movietone Co., ने एक अनुभवी डॉक्टर की सहायता से सारी विधि का एक बोलता हुआ फ़िल्म बनाया था, जो लन्दन के समस्त सिनेमाओं में दिखाया गया था। इसका जनता पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा था, क्योंकि लोगों के मन में से यन्त्र के विषय में यदि कोई भय था तो वह दूर हो गया।

इस कैमरे का मूल्य बहुत अधिक है, इसीलिए कई देशों में इसका प्रचार अभी नहीं हुआ। आशा है, कुछ समय में भारत के मुख्य-मुख्य अस्पतालों में इसका प्रयोग होने लगेगा।

❀ ❀ ❀

## अद्भुत घोड़ी

विलायत में मिसेज़ फोंडा (Mrs. Fonda) के पास एक ऐसी अद्भुत घोड़ी है, जो कि मनुष्य की बातों को भली प्रकार समझ लेती है, यहाँ तक कि चीनी भाषा के सवालों का भी उत्तर दे सकती है। सब से बड़ी विशेषता की बात यह है कि वह छोटे-छोटे हिसाब के सवालों का उत्तर सही-सही दे देती है और किसी के नाम में कौन-कौन अक्षर हैं, यह भी बता देती है। बड़े-बड़े जीव-विज्ञान के धुरन्धर विद्वानों की समझ में नहीं आता कि इस घोड़ी का मस्तिष्क किस प्रकार इतनी उन्नति कर गया। इस घोड़ी को "लेडी" नाम से पुकारते हैं। मिसेज़ फोंडा ने इस घोड़ी को, जब यह बहुत छोटी थी, मोल लिया और प्रारम्भ में इसे मामूली बातें सिखाई थीं। परन्तु शीघ्र ही इसमें अद्भुत बुद्धि का विकास पाया गया। "लेडी" मामूली सरकस के घोड़ों से कहीं बढ़ कर कार्य करने लगी। जिस समय इस घोड़ी से कुछ पूछा जाता तो यह इस प्रकार आँख मीच कर खड़ी हो जाती मानो सोच रही हो।

यदि इस घोड़ी के सामने घड़ी और लकड़ी पर लिखे हुए अङ्क रख कर उससे समय पूछा जावे तो प्रथम तो वह जितने घण्टे होंगे, उनके द्योतक अङ्क पर मुँह रख देगी, फिर इसी प्रकार मिनिटों के अङ्क पर मुँह रक्खेगी। एक सज्जन ने अपनी घड़ी में १२, पर सुइयाँ करके लेडी से पूछा कि क्या बजा है? उसने उत्तर में ठीक अङ्कों पर मुँह रक्खा।

यदि लकड़ी के टुकड़ों पर अक्षर लिख कर रख दिए जायँ और घोड़ी से किसी के नाम के या शब्द के अक्षर पूछे जायँ तो वह एक-एक करके सब अक्षर ठीक-ठीक बता देती है। किसी के नाम का प्रारम्भ तथा अन्त का अक्षर यदि उसे पूरा नाम बता दिया जावे, तो ठीक-ठीक बता देगी। इसी प्रकार वह अङ्कगणित के सवाल भी निकाल देती है। मिसेज़ फोंडा ने घोड़ी दिखाने का कोई टिकट नहीं रक्खा है, और न वह उसे बेचना ही चाहती हैं।

❀ ❀ ❀

## एक अनोखा पौधा

सनड्यू (Sundew) नामक एक पौधा होता है, जो कि सीलन की जगह उत्पन्न होता है। इसकी पत्तियों पर श्वेत वर्ण के पानी की सी बूँदें चमकती हुई मोतियों की भाँति दिखाई देती हैं। यह वास्तव में पानी की बूँदें नहीं होतीं, क्योंकि तेज़ से तेज़ धूप में भी इसी प्रकार रहती हैं। यह बूँदें देखने में तो पानी की सी मालूम होती हैं, परन्तु छूने से मालूम होता है कि यह चिपकते हुए लसदार पदार्थ की बूँदें हैं। यह पदार्थ गोंद के समान चिपकने वाला होता है और वृक्ष की क्षुधा-पूर्ति में सहायक होता है।

सनड्यू का पौधा मांस-भक्षी पौधों में से है और कीड़े-मकोड़े के भक्षण से अपनी उदर-पूर्ति करता है। अन्य वृक्षों तथा पौधों की भाँति यह अपना भोज्य-पदार्थ अपनी जड़ द्वारा मिट्टी में से नहीं ग्रहण करता, यद्यपि अन्य वृक्षों की भाँति कुछ थोड़ा भोज्य-पदार्थ वायु द्वारा इसकी पत्तियों में अवश्य बनता रहता है, परन्तु उससे इसकी क्षुधा-पूर्ति नहीं होती। यह मोती के समान चमकने वाली चिपकती हुई बूँदें वृक्ष को उसका शिकार ( कीड़े-मकोड़े ) पकड़ने में सहायता देती हैं। इन बूँदों के सौन्दर्य पर मोहित होकर तथा उसको मधुकण समझ कर कीड़े-मकोड़े अपनी क्षुधा-तृप्ति के लिएबूँद के ऊपर आकर बैठ जाते हैं। परन्तु नेत्र खोलने पर क्या पाते हैं? भयङ्कर प्रतारण। यह चिपकता हुआ पदार्थ उनके पैरों तथा पङ्खों को चिपका देता है और उससे छुटकारा पाने के प्रयत्न में ही उनका अन्त हो जाता है। इसके उपरान्त पौधे के पत्तों में से एक प्रकार का रस निकलता है, जिसमें कीड़े-मकोड़े तथा मक्खियों का मांस घुल जाता है। पत्तियाँ इस रस को चूस लेती हैं और इस प्रकार वृक्ष की क्षुधा-पूर्ति होती है। इस वृक्ष पर फूल नहीं लगते। इस पौधे के सौन्दर्य को देख कर कौन कह सकता है कि यह अपने सौन्दर्य के पीछे प्राण-हरण कटार छिपाए हुए है?

* * *

# राष्ट्रीय चित्र

## अनूठे और नए डिज़ाइन.

दुर्गा पूजा, दशहरा

और

## दीवाली

नज़दीक है. आर्डर भेजिये,

पूरी बिक्री और भरपूर मुनाफा रहेगा

**बहुत से नए डिज़ाइन बढ़ाए गए है.**

## कुछ खास बातें.

१. हमारे कुल चित्र निजी चित्रकार द्वारा बनाये जाते हैं।

२. समय २ पर और भी बड़े २ चित्रकारों से सहायता ली जाती है।

३. हर डिज़ाइन नया व अनूठा होता है।

४. चित्रों के तैयार करने में भरपूर मेहनत व रुपया खर्च किया जाता है।

५. इन सब बातों का नतीजा यह हुआ है कि हमारे यहां के प्रकाशित चित्र देख कर लोग दङ्ग रह जाते हैं—नए चित्रों के प्रकाशित होने की लोग सदैव रास्ता देखा करते हैं।

६. चित्रों के रेट निहायत कम हैं।

## जनता कैसे लाभ उठा सकती है।

१. थोड़ी पूँजी वाले सैकड़े के भाव से थोक चित्र मँगाकर और फुटकर बेचने से १) रुपया से लेकर १०) तक रोज़ाना मुनाफा उठा सकते हैं।

२ कुछ ज्यादा यानी पचीस तीस रुपया लगा सकने वाले हज़ार के भाव से चित्र मँगा कर हाकर द्वारा बिकवा सकते हैं। इस प्रकार खुद को तो भरपूर मुनाफा होता ही है साथ में बहुत से ग़रीबों की रोटियां चलती हैं।

३. कोई भी दूकानदार अपने मौजूदा दूसरे सामान के साथ इन चित्रों को रखकर बिला किसी अतिरिक्त खर्च व मेहनत के काफी मुनाफा उठा सकता है।

४. चौथा तरीका एजेन्सी लेकर काम करने का है—हमारे यहाँ के एजेन्सी नियम अत्यन्त सरल व एजेन्टों के लिये बड़े सुभीते के हैं। एक शहर में केवल एक ही एजेन्ट बनाया जाता है।

५. अपने घर व कमरे सजाने के लिए फुटकर चित्र भी मँगाए जा सकते हैं। वी. पी. द्वारा १) रु० से कम का माल नहीं भेजा जाता।

# चित्र सूची *

नाप १० × १५ इञ्च चित्र दर ॥) दर्जन, ३॥) सैकड़ा, ५०० से ज्यादा के आर्डर पर ३०) हजार।

| चित्र नं० | |
|---|---|
| १ | महात्मा गांधी का ऐतिहासिक कूच |
| २ | विजय रथ |
| ३ | स्वराज्य ट्रेन |
| ४ | भगत की विचित्र भेंट |
| ५ | प्यारा झन्डा |
| ६ | सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त |
| ७ | झंडाभिवादन (झंडे का नया रूप मै गाने के) |
| ८ | चरखे का प्रभाव, विदेशी व्यापार का नाश |
| ९ | श्री सैन गुप्ता और नेली सैन गुप्ता |
| १० | रवीन्द्रनाथ टैगोर और मि० एन्डरूज |
| ११ | महात्मा गांधी, कस्तूरी बाई गांधी |
| १२ | स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द |
| १३ | सुभाषचन्द्र बोस और जवाहरलाल नेहरू |
| १४ | मोतीलाल की शान्ति-निद्रा |
| १५ | महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी |
| १६ | बल्लभभाई और विट्ठलभाई पटेल |
| १७ | जवाहरलाल और कमला नेहरू |
| १८ | जंगी क़ैदी (भगतसिंह, राजगुरू, सुखदेव) |
| १९ | तीन आजाद, पुलिस की गोलियों के शिकार |
| २० | भ्राता भक्त लक्ष्मण और भारत भक्त जवाहर |
| २१ | लक्ष्मी-गणेश |

नाप ३½ × ५½ इञ्च कार्ड दर =) दर्जन, ॥।) सैकड़ा, ५०० से ज्यादा के आर्डर पर ७) हजार।

| कार्ड नं० | |
|---|---|
| २००१ | महात्मा गांधी का ऐतिहासिक कूच |
| २००२ | विजय रथ |
| २००३ | स्वराज्य ट्रेन |
| २००४ | भगत की विचित्र भेंट |
| २००५ | प्यारा झन्डा |
| २००६ | भ्राता भक्त लक्ष्मण |
| २००७ | राष्ट्रीय वीर |
| २००८ | चरखे का प्रभाव, विदेशी व्यापार का नाश |
| २००९ | श्री सैन गुप्ता और नेली सैन गुप्ता |
| २०१० | रवीन्द्रनाथ टैगोर और मि० एन्डरूज |
| २०११ | महात्मा गांधी, कस्तूरी बाई गांधी |
| २०१२ | स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द |
| २०१३ | सुभाषचन्द्र बोस और जवाहरलाल नेहरू |
| २०१४ | मोतीलाल की शान्ति-निद्रा |
| २०१५ | महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी |
| २०१६ | बल्लभभाई और बिट्ठलभाई पटेल |
| २०१७ | जवाहरलाल और कमला नेहरू |
| २०१८ | जंगी क़ैदी |
| २०१९ | तीन आजाद, पुलिस की गोलियों के शिकार |
| २०२० | भारत भक्त जवाहर |
| २०२१ | लक्ष्मी-गणेश |

नोट :-१ चित्र एकही प्रकार के अथवा सब प्रकार के मिला कर ग्राहक मँगा सकते हैं।
२ सचित्र सूचीपत्र के लिए चार आने के टिकट भेजिये।

३ चित्रों और कार्डों के पूरे सैम्पुल-सेट के लिए २) रु० मनीआर्डर से भेजिये।
४ महसूल रेल व पोस्टेज खर्च जिम्मे खरीदार है।

पता :—गंगानरायन बिहारीलाल, पोस्ट बाक्स नं० ५७, पीली कोठी, कानपुर.

# सिनेमा तथा रंगमञ्च

अङ्गरेज़ी तथा अन्य विदेशी भाषाओं में सिनेमा तथा रङ्गमञ्च, साहित्य के विशेष अङ्ग माने जाते हैं और उनके विषय में प्रत्येक पत्र में कुछ न कुछ अवश्य प्रकाशित होता रहता है। उनके लिए विशेष सम्वाददाता, विशेष समालोचक तथा विशेष सम्पादक नियुक्त किए जाते हैं। यही नहीं, विदेशों में इन विषयों का अपना अलग साहित्य बन गया है। भारत से निकलने वाले अङ्गरेज़ी के पत्रों में भी काफ़ी सामग्री इन विषयों पर रहती है। परन्तु हिन्दी भाषा में इस विषय का कुछ भी साहित्य नहीं। न तो पत्र-पत्रिकाओं ने इस ओर ध्यान दिया है और न लेखकों ने ही। रङ्गमञ्च सम्बन्धी साहित्य की तो उतनी न्यूनता नहीं है, जितनी सिनेमा सम्बन्धी साहित्य की। हमारी धारणा है कि हिन्दी साहित्य में यह एक बड़ी भारी कमी है। कदाचित इस उदासीनता का कारण यह समझा जाता हो कि हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए सिनेमाघरों तथा फ़िल्मों की कमी है। परन्तु यह बात सत्य नहीं है। अब लगभग प्रत्येक बड़े नगर में कम से कम एक सिनेमाघर अवश्य है और भारतीय कम्पनियाँ भी इतनी हैं कि प्रायः सभी सिनेमाओं में हिन्दी के फ़िल्म दिखाए जाते हैं। इन्हीं बातों को लक्ष्य में रख कर हमने 'सिनेमा तथा रङ्गमञ्च' शीर्षक इस नए स्तम्भ का समावेश 'चाँद' में इस महीने से कर दिया है। हम इस स्तम्भ में प्रतिमास सिनेमा तथा रङ्गमञ्च सम्बन्धी इतिहास, लेख, समाचार, अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों की जीवनियाँ और नए फ़िल्मों की समालोचना आदि प्रश्नों पर प्रकाश डाला करेंगे।

## सिनेमा की उपयोगिता

इस बात को तो कोई भी अस्वीकार न करेगा कि सिनेमा ने अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है और उसका अस्तित्व अब संसार में स्थिर हो गया है। अनेकों विद्वानों का मत है कि सिनेमा केवल शिक्षा और प्रचार का साधन-मात्र रहे; उसमें से प्रेम, हास्य, जासूसी आदि के सम्बन्ध की बातों को बिलकुल ही निकाल दिया जाय। हम इस बात से सहमत नहीं। यह हम मानते हैं कि सिनेमा की शक्ति को शिक्षा का एक प्रबल साधन अवश्य ही बनाना चाहिए, जैसा कि, हमें लिखते हुए प्रसन्नता है, होलीवुड की कई कम्पनियों तथा इङ्गलैण्ड की British Instructional Pictures Ltd. ने करके दिखा दिया है। इन कम्पनियों ने जीव-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, कृमि-विज्ञान आदि विषयों की ऐसी-ऐसी घटनाएँ फ़िल्मों द्वारा जनता को दिखाई हैं, कि जिनका अन्यथा देखना असम्भव ही होता। इसी प्रकार की तसवीरें होती हैं पाथे पिक्टोरियल, गौमोंट-मिरर, टौपीकल गैज़ट आदि, जिनसे दर्शकों को संसार के अनेकों आश्चर्य-जनक पदार्थों का आँखों-देखा अनुभव हो जाता है। इतना होते हुए भी हमारी यह धारणा है कि सिनेमा का सबसे बड़ा उद्देश्य मनोरञ्जन है और उस मनोरञ्जन से हमारा अर्थ है शिष्ट एवं ठोस मनोरञ्जन। इस विषय में सिनेमा ने जो सफलता प्राप्त की है, उसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यूरोप तथा अमेरिका में अनेकों थियेटर सिनेमा बन गए हैं और अनेकों नए सिनेमा प्रति वर्ष खुलते जा रहे हैं। यही दशा भारत में भी है।

## विदेशी फ़िल्म-कम्पनियाँ

विदेशों में सिनेमा एक कला हो गया है और धीरे-धीरे वहाँ वालों ने इसका आश्चर्य-जनक विकास किया है। फ़िल्म बनाने के केन्द्र चार देशों में हैं। अमेरिका में होलीवुड, इङ्गलैण्ड में ऐलस्ट्री, जर्मनी तथा रूस। जगत-विख्यात ऐक्टर तथा ऐक्ट्रैस तो अमेरिका में ही अपने फ़िल्म बनाते हैं, जैसे चार्ली चैपलिन, डगलस फ़ेअरबैंक्स, हैरोल्ड लौयड, मैरी पिकफ़ोर्ड, नौर्मा टौलमेज आदि। इसका कारण यह है कि अमेरिका वाले इनको लम्बे-लम्बे वेतन दे सकते हैं—

इनमें अनेकों तो लाखों रुपए वार्षिक कमाते हैं। इङ्गलैण्ड फ़िल्म बनाने में कभी अगुआ नहीं रहा। कुछ दिनों पहिले ही इङ्गलैण्ड की बनी हुई फ़िल्मों को वहीं पर उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था। अब कुछ सुधार उनमें हुआ है और उसका एक प्रबल कारण यह है कि वहाँ पर सरकार द्वारा कोटा-सिस्टम जारी हो गया है, अर्थात् प्रत्येक सिनेमा-घर में १५ प्रतिशत इङ्गलैण्ड की बनी हुई फ़िल्में अवश्य ही दिखाई जाती हैं। जर्मनी और रूस के फ़िल्मों का बाहर के देशों में अधिक प्रचार नहीं, परन्तु जिस दर्जे के फ़िल्म इन देशों में बनते हैं, कला की दृष्टि से, वैसे फ़िल्म बनाना दूसरे देशों के लिए कठिन है। जर्मनी और रूस के फ़िल्मों में चित्रकारी तो कला के सौन्दर्य की पराकाष्ठा को पहुँच जाती है। जर्मनी की सबसे बड़ी कम्पनी ऊफ़ा ( U. F. A. ) है, जिसका ( Metropolis ) नामक फ़िल्म एक आश्चर्य था। रूस के फ़िल्म सार्वजनिक रूप से देखने को कहीं नहीं मिलते, क्योंकि प्रत्येक देश की सरकार को और सेन्सर को उन फ़िल्मों में बोल्शेविज़्म की बू आती है। इङ्गलैण्ड में मज़दूरों की कुछ समितियाँ इनको प्राइवेट रूप से अपने सदस्यों को दिखाती हैं। इन पंक्तियों के लेखक की, रूस के बने 'सेण्टपीटर्स बर्ग का अन्त', 'पृथ्वी', 'टर्कसिब' आदि फ़िल्म देखने के बाद, यह सम्मति है कि रूस वाले ही उपयोगी और कलापूर्ण फ़िल्म बनाना जानते हैं।

लगभग तीन वर्ष हुए, तब अमेरिका में बोलती हुई तसवीरों का आविष्कार हुआ था। तब से अब तक प्रायः प्रत्येक देश में बोलती तसवीरें बनने लगी हैं। इङ्गलैण्ड वाले पहले तो ऐसे आविष्कारों की खिल्ली उड़ाते हैं, परन्तु जब देखते हैं कि दूसरे देश वाले बाज़ी लिए जा रहे हैं, तो उन्हें अपना लेते हैं। सन् १९२९ में लन्दन में केवल ३ सिनेमा-घर बोलती तसवीरें दिखाते थे, आज वहाँ सैकड़ों सिनेमा ( लगभग ९९ प्रतिशत ) बोलती तसवीरें दिखाते हैं।

बोलती तसवीरों ने युगान्तर ला उपस्थित किया है। यूरोप में अनेकों थियेटर बन्द हो गए हैं। बेबोलती फ़िल्म को तो कोई देखना ही नहीं चाहता। हाँ, इसका एक अपवाद है, और वह है चार्ली चैपलिन। चार्ली ने बोलती तसवीर बनाने से मना कर दिया है, परन्तु लोग उसकी बे-बोलती फ़िल्म को देखने के लिए ही व्याकुल हो जाते हैं। अभी हाल ही में उसकी नई फ़िल्म City Lights लन्दन के एक सिनेमा में पाँच महीने चली थी और उससे चार्ली को लाखों रुपए की प्राप्ति हुई थी।

## भारतीय फ़िल्म कम्पनियाँ

हम इस विषय में विस्तार-पूर्वक किसी अगले अङ्क में लिखेंगे। यहाँ पर केवल दिग्दर्शन-मात्र करा देना ही सम्भव होगा। भारत में फ़िल्म कम्पनियाँ अब कई हो गई हैं। इनमें से अधिकतर बम्बई में, फिर कलकत्ता, लाहौर, कोल्हापुर, पूना आदि नगरों में हैं। माडन थिएटर्स की कम्पनी सबसे अधिक समृद्धिशाली है, क्योंकि इसके सौ से ऊपर तो समस्त भारतवर्ष में अपने सिनेमा ही हैं।

भारतीय फ़िल्म कम्पनियाँ अब बोलती हुई तसवीरें भी बनाने लगी हैं। 'माडन' ने कई फ़िल्म बनाए हैं—जिनमें 'शीरीं-फ़रहाद', 'समाज का शिकार' तथा 'लैला-मजनू' आजकल सिनेमाओं में चल रहे हैं। 'माडन' से आशा थी कि उनके फ़िल्म अमेरिका के फ़िल्मों की टक्कर ले सकेंगे। परन्तु यह आशा निराशा में परिणत हो गई। सब कुछ होते हुए भी ऐक्टिङ्ग में स्वाभाविकता तो छू भी नहीं गई—आदि से अन्त तक सब कुछ बनावटी है। 'समाज का शिकार' तो इस लिहाज़ से थर्डक्लास तसवीर है। इम्पीरियल ने इससे कहीं अच्छी तसवीरें बनाई हैं, परन्तु इस कम्पनी ने अपनी पहली फ़िल्म 'आलम-आरा' के लिए पुरानी चाल की कहानी क्यों चुनी, यह हमारी समझ में नहीं आया; जब कि आधुनिक सामाजिक कहानियाँ उन्हें काफ़ी मिल सकती थीं। अब 'रनजीत', 'प्रभात' आदि सभी कम्पनियाँ बोलती फ़िल्म बना रही हैं; देखना है, वे कसौटी पर कैसी उतरती हैं। इन फ़िल्मों में अन्य दोषों के साथ ही साथ, हम हिन्दी-भाषियों के लिए एक बड़ा दोष यह होता है कि ये लोग हिन्दी का तो ख़ून कर देते हैं। टाइटिलों पर की हिन्दी इतनी अशुद्ध होती है कि पढ़ कर उनके लेखक को दुआएँ देनी पड़ती हैं। बोलती तसवीरों का भी यही हाल

है। इसको सुधारने का एक ही उपाय है कि संयुक्त प्रान्त में एक फ़िल्म-कम्पनी खोली जाय। यह एक ऐसा अभाव है, जो सभी को अखरता है, परन्तु कोई आगे बढ़ कर इस काम को हाथ में नहीं लेता।

## मिस सुलोचना

ऐक्टिङ्ग के विषय में जहाँ हमने इतना रोना रोया है, वहाँ हमें यह देख कर बड़ा हर्ष होता है कि भारतीय सिनेमा में कुछ ऐक्ट्रैस ऐसी हैं, जिन पर हमें गर्व हो सकता है। उन्हीं में प्रमुख हैं 'इम्पीरियल' की स्टार मिस सुलोचना (जिनका चित्र आप यहाँ देखते है)। आपका वास्तविक नाम मिस रूबी मायर्स (Ruby Meyers) है। सिनेमा में आने से पूर्व आप टेलीफ़ोन कम्पनी, बम्बई में नौकरी करती थीं। आप 'कोहिनूर', 'इम्पीरियल', 'रनजीत' आदि कम्पनियों में काम कर चुकी हैं। प्रकृति ने आपको रूप दिया है और अपने परिश्रम से आपने कला के मर्म को समझा है। इस सौन्दर्य तथा कला के सम्मिश्रण ने आपको ऐक्टिङ्ग करने में कैसी सफलता प्रदान की है, इसका अनुमान वे लगा सकते हैं, जिन्होंने आपका ऐक्टिङ्ग, 'अनारकली', 'टेलीफ़ोन गर्ल', 'टाइपिस्ट गर्ल' आदि फ़िल्मों में देखा है। आप में घोड़े पर चढ़ना, तलवार चलाना, नृत्य करना आदि वे सब गुण हैं, जो एक सफल ऐक्ट्रैस के लिए आवश्यक हैं। आपको जो भारतीय 'मैरी पिकफ़ोर्ड' के नाम से पुकारा जाता है, उसमें कोई अत्युक्ति नहीं। मिस सुलोचना, हमें आशा है, बोलती तसवीरों में भी इसी प्रकार सफलता प्राप्त करेंगी।

सुप्रसिद्ध सिनेमा-स्टार—मिस सुलोचना

[ स्वरकार तथा शब्दकार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय ( नीलू बाबू ) ]

## सोरठ ३ ताल

स्थायी—१ तुम बिना हे प्रभु कौन हमारो ।
„ —२ जगत पिता जगदीश ईश्वर,
दया दृष्टि टुक मो पर डारो ॥
अन्तरा—गज अरु ग्राह लड़े जल भोतर,
वेगि धाय गज ही को उबारो ॥

### स्थायी

| १ | | × | | ३ | | ० | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| स | रे | म | प | सं | रें | निध (क) | प | निध (क) | पम | गरे | स | म | ग | रे | — |
| तु | म | बि | ना | हे | ए | प्रअ | भु | कोओ | ओओ | नअ | ह | मा | आ | रो | — |
| रे | ग | रे | रे | रे | प | म | म | ग | रे | ग | स | रे | मग | रे | — |
| ज | ग | त | पि | ता | आ | ज | ग | दी | ई | श | ई | ई | श्वअ | र | — |
| रे | रे | — | म | — | म | प | ध | पध | सं | नि (क) | ध | प | ध | प | — |
| द | या | — | दृ | — | ष्टी | टु | क | मोओ | ओ | प | र | डा | आ | रो | — |

### अन्तरा

| म | म | प | प | नि | — | सं | सं | प | — | नि | नि | नि | सं | रें | रें |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ग | ज | अ | रु | ग्रा | — | ह | ल | ड़े | — | ज | ल | भी | ई | त | र |
| रें | गं | रें | मं | गं | रें | | सं | प | — | नि | नि | नि | सं | रें | रें |
| ग | ज | अ | रु | ग्रा | आ | ह | ल | ड़े | — | ज | ल | भी | ई | त | र |
| नि | — | नि | सं | — | सं | सं | सं | निंस | रें | सं | नि (क) | प | ध | प | — |
| वे | — | गि | धा | — | य | ग | ज | ही | इ | को | उ | बा | आ | रो | — |

# श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[ हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द विरूपाक्ष ]

ख़बर बड़ी भयङ्कर है जनाब, परन्तु हमें तो सुनानी हो पड़ेगी। इसलिए निवेदन है कि मेहरबानी करके कलेजे को कस कर थाम लीजिए और पास में 'स्मेलिङ्ग साल्ट' की एक शीशी, एक टुकड़ा बरफ़, एक पङ्खा और एक लोटा ठण्डा पानी रखवा लीजिए। क्योंकि पूरी ख़बर सुन लेने पर आपका मूर्च्छित होकर गिर पड़ना अनिवार्य है।

❀

अच्छा तो सुनिए, लखनऊ के 'अवध अख़बार' को पता लगा है कि लाहौर में स्त्री-पहलवानों का दङ्गल होगा, अर्थात् दो बलवती स्त्रियाँ आपस में कुश्ती लड़ेंगी, ताक़त आज़माई करेंगी।..... क्या कहा? अब न कहें, नहीं तो आपकी धुकधुकी बन्द हो जाएगी?

❀

बात है भी ऐसी ही। क्योंकि शास्त्र पुकार-पुकार कर उन्हें 'अबला' कहते हैं। कवियों ने कमनीय कलेवरा, कोमलाङ्गी और गजेन्द्रगामिनी कह कर उनके 'नखशिख' का वर्णन किया है। समाज ने कृपण की कौड़ी की तरह चिथड़े के सात तहों में लपेट कर उनकी रक्षा की है। असूर्यम्पश्या उनका विशेषण, पुरुष को देखते ही सहमी हुई चुहिया की तरह बिल में छिप जाना उनका प्रधान गुण है।

❀

अब वे कुश्ती लड़ेंगी, बलवती बनेंगी, लम्पटों, लुचों और गुण्डों से अपनी रक्षा कर सकेंगी, बलवती होकर बलवान बच्चे पैदा करेंगी तो बाप रे बाप सनातनधर्म, सनातन प्रथा और सनातन सभ्यता मिट्टी में मिल जाएगी। समुचित व्यायाम से उनका शरीर नीरोग रहने लगेगा तो 'प्रदरान्तक लौह' बेच कर तोंद फुलाने वाले वैद्य जी के बाल-बच्चे भूखों मर जायँगे, आपके सिर पातक लगेगा और आप 'नाती-पूत समेत' नर्क में चले जायँगे।

❀

इसके सिवा हर साल प्रचुर दहेज़ की प्राप्ति के साथ बीबी बदलने का मज़ा भी जाता रहेगा। कमबख़्त कसरती बीबी शीघ्र मरने का नाम क्यों लेने लगी? लेहाज़ा एक ही बीबी के साथ सारा पैतृक जीवन बरबाद कर देना पड़ेगा। बेचारे पुरोहित जी 'हा हतोस्मि' कह कर रह जायँगे और गुरु जी भी हर साल नई चेली के कान फूँक कर ठनाठन-संग्रह से वञ्चित रहेंगे।

❀

भई, बीबी तो हलकी-फुलकी व दुबली-पतली—वज़न में ज़्यादा से ज़्यादा डेढ़ छटाँक की होनी चाहिए। मज़बूत बीबी लेकर कोई छकड़ा थोड़े ही चलाना है। इसलिए श्री जगद्गुरु स्त्रियों में व्यायाम आदि के प्रबल विरोधी हैं। अछाल पक्व कुष्माण्ड सा सुन्दर पीला रङ्ग हो और रज़ाई से भी ढक दीजिए तो हड्डियाँ दिखाई पड़ती रहें। बाबा सी बीबी भला किस काम की?

❀ ❀ ❀

# पायरेक्स

## मलेरिया के लिए मशहूर और ख़ास दवा

पायरेक्स—कोई गुप्त औषधि नहीं है, यह आजकल का सर्वोत्तम बुख़ार मिक्श्चर है बहुत प्रचलित और आज़माए हुए सिद्धान्तों के आधार पर बनी हुई है। किसी भी सज्जन के मँगाने पर विवरण भेजा जा सकता है।

पायरेक्स—यह सिर्फ़ मलेरिया बुख़ार ही के लिए उत्तम नहीं, बल्कि इसके लगातार उपयोग से किसी भी प्रकार का रोग पास नहीं फटकने पाता, उन स्थानों में, जहाँ पर मरीज़ों को किसी प्रकार की दवा का सुभीता नहीं, वहाँ यह घर-घर होनी चाहिये।

पायरेक्स—तापतिल्ली, जिगर व इनफ़्लुएञ्ज़ा और दूसरी बीमारियों के लिए भी बहुत उपयोगी है। एनीमिया के लिए भी विशेष फ़ायदा पहुँचाने वाली चीज़ है। बुख़ार के बाद की कमज़ोरी के लिए अद्वितीय दवा है।

पायरेक्स—४ औंस की बोतल, जिसमें १६ ख़ुराक होती है, उसमें बहुत अच्छी तरह से पेक की जाती है। इसके मुक़ाबिले दूसरी कोई भी बुख़ार की दवा सस्ती और मुफ़ीद ; कोई भी डॉक्टर या हकीम आपको नहीं दे सकेगा।

नक़ल करने वालों से होशियार रहिए। ख़रीदने के पहिले हमारा ट्रेडमार्क देख लीजिएगा।

बी० सी० पी० डब्लू०—बङ्गाल केमिकल एण्ड फ़ारमेस्यूटिकल वर्क्स लिमिटेड

१५ कॉलेज स्क्वायर, कलकत्ता

# हर एक रोग में जादू का सा गुण दिखाती हैं

## चालीस वर्षों की परीक्षा में किसी ने किसी प्रकार की शिकायत नहीं की

## सुधासिन्धु

कफ, खाँसी, हैज़ा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट-दर्द, क़ै, दस्त, इनफ़्लूएञ्ज़ा, बालकों के हरे-पीले दस्त और पाकाशय की गड़बड़ी से होने वाले रोगों की एक-मात्र दवा। इसके सेवन में किसी अनुपान की ज़रूरत नहीं। मुसाफ़िरी में इसे ही साथ रखिए। क़ीमत ॥) आना। डाक-ख़र्च एक से दो शीशी तक ।=)

## ग्रहामृत

शरीर में तत्काल बल बढ़ाता है ; क़ब्ज़, बदहज़मी, कमज़ोरी, खाँसी को दूर करता है ; बुढ़ापे के कारण होने वाले सभी कष्टों से बचाता है, नींद लाता है और पीने में मीठा व स्वादिष्ट है। क़ीमत तीन पाव की बड़ी बोतल २) ; डाक-ख़र्च १॥) ; छोटी १) डाक-ख़र्च १=)

ये तीनों दवाइयाँ सब दूकानदारों के पास मिलती हैं।

## बालसुधा

बच्चों को बलवान, सुन्दर और सुखी बनाने के लिए यह मीठा "बालसुधा" उन्हें पिलाइए, क़ीमत ॥), डाक-ख़र्च ॥-)

यदि आपके शहर में न मिलें तो इस पते से मँगाइए!

सुख-सञ्चारक कम्पनी, मथुरा

मूल्य केवल
दो पैसा

# भविष्य

की

विज्ञापन का रेट
बहुत ही सस्ता।

## कुछ विशेषताएँ

१—सर्वसाधारण की पहुँच से बाहर न हो, इसलिए इसका मूल्य केवल दो पैसे रोज़ रक्खा गया है।

२—यह २४ पाउण्ड के चिकने काग़ज़ पर डबल क्राउन साइज़ के ४ पृष्ठों पर छपता है। छोटा टाइप होने से अन्य दैनिकों की अपेक्षा इसमें दूना मैटर आता है।

३—इसके लिए एसोशिएटेड प्रेस, फ्री प्रेस तथा ब्यूरो आदि के विशेष तार मँगाने का प्रबन्ध है। ताज़े समाचारों के लिए अङ्गरेज़ी के बढ़िया से बढ़िया दैनिक पत्रों से टक्कर लेता है।

४—इसमें प्रायः सामयिक चुटीले कार्टून, चित्र, कविताएँ तथा गवेषणापूर्ण लेख रहते हैं।

५—इसके सम्पादन-विभाग में ऐसे व्यक्ति हैं, जो अपने-अपने विषयों के विशेषज्ञ हैं। इसीलिए इसके अग्र-लेखों, शीर्षकों तथा समाचारों के चुनाव में आप एक अपूर्व नवीनता पाएँगे।

प्रत्येक शहर में हमारे एजेण्ट हैं, जिनसे कह कर नित्य अपनी कॉपी पाने की व्यवस्था कीजिए या ग्राहक बनने के लिए सीधे हमारे कार्यालय को लिखिए।

## विज्ञापनदाताओं के लिए

दैनिक 'भविष्य' से अच्छा और सस्ता कोई हिन्दी का पत्र न मिलेगा, क्योंकि छोटे-छोटे ग्रामों तक में इसका प्रचार है। आज ही रेट मँगा कर देखिए!

याद रखिए, यदि आप दैनिक 'भविष्य' को अपनाएँगे तो दैनिक 'भविष्य' भी अपनी सेवाओं से आपको सदा सन्तुष्ट करने का उद्योग करेगा।

**मैनेजर 'भविष्य (दैनिक) चन्द्रलोक—इलाहाबाद**

## शीतल सुर्मा

हम गारण्टी करते हैं कि बरेली के रजिस्टर्ड शीतल सुर्मा के सेवन से जन्म भर आँखें न दुखेंगी, ज्योति बिजली के समान तेज़ हो जाएगी, चश्मे की आदत छूट जाएगी और धुन्ध, खुजली, रोहे, सुर्ख़ी, जाला, फूली, रतौंध, नज़ला, ढरका, तांगुर, परवाल, चकाचौंध, जलन, पीड़ा, पानी बहना, आँखों के आगे तारे से दीखना, एकदम अँधेरा आ जाना, ग्वाइयों का निकलना और दुखती आँखें, इन रोगों को भी जड़ से आराम न हो, तो सत्यता से एक पत्र लिखने पर पूरी क़ीमत वापिस देंगे। १ शीशी मय मनोहर सलाई १।) ख़र्च ।=), ३ शीशी ३।=) ख़र्च माफ़।

### जनता की सम्मतियाँ

(१) महाशय! मैं अपनी आँखों से नाउम्मेद हो गई थी। मेरी आँख में माड़ी पड़ गई थी, फुन्सियाँ निकलती थीं व पानी गिरता रहता था। डॉक्टर, एलो-पैथिक, होम्योपैथिक सब हार गए। आपके शीतल सुर्मा ने मेरे साथ वह काम किया, जो डॉक्टर लोग न कर सके। इसके लिए मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। (श्रीमती विन्ध्येश्वरीप्रसाद लिक्वेडेटर को-ऑपरेटिव सोसाइटी, मुरारपुर, जि० गया)

(२) प्रिय महाशय जी, सादर प्रणाम! शीतल सुर्मा बड़ा ही गुणकारी है, हमारा तो यहाँ तक विश्वास हो गया है, यदि चश्माधारी महाशय कुछ दिन इसका लगातार सेवन करें, तो चश्मा लगाने की उन्हें कोई ज़रूरत न रहेगी। कृपया बताइए, दर्जन के हिसाब से आप किस दर से देंगे? (धनुषधारीप्रसाद, पोस्ट सीतारामपुर, ज़िला बर्दवान)

(३) प्रिय महाशय जी, सविनय प्रणाम! आपका भेजा हुआ शीतल सुर्मा का वी० पी० प्राप्त हुआ। सेवन करके पूरा लाभ उठा चुका हूँ। धुन्ध, खुजलाहट, जलन जाता रहा है। (ठा० महाराजनारायणसिंह ज़मींदार, मौज़ा गोकुलपुर, पोस्ट खिलबरिया, ज़िला बहरायच)

(४) प्रिय महाशय! शीतल सुर्मा ने मुझे बहुत फ़ायदा किया है। सुर्ख़ी, ढरका, नज़ला एक ही शीशी में अच्छा हो गया और फूली भी चार हिस्सों में तीन हिस्सा रह गई है। कृपया दो शीशी वी० पी० द्वारा और भेज दीजिए। (ठा० श्रीलाल लालमनसिंह परिहार, मौज़ा इटमा, पोस्ट नागौद, स्टेशन सतना)

(५) मैनेजर साहब! हमने अपनी आँखों के रोगों, जलन का होना, गुहेरियों का ज़्यादा होना, कभी-कभी आँखों की शिकायत दुखने की हो जाना, की औषधि के लिए लिखा। आपने तीन शीशियाँ शीतल सुर्मा वी० पी० द्वारा भेजीं। उसके लगाने से तीन दिन में ही ऐसा आश्चर्य हुआ कि मेरी तमाम शिकायतें दूर हो गईं। (ठा० जयसिंह सोडा मिस्त्री, प्राग आइस फ़ैक्टरी, अजमेर)

**पता—शिवराज, कारख़ाना फूल ६, बरेली, यू० पी०**


Edited by Dr. D. R. Prem, M. R. C. S. (Eng.), L. R, C. P. (Lond.), and Printed and Published by Shrimati Lakshmi Devi, at The Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road—Chandralok, Allahabad.

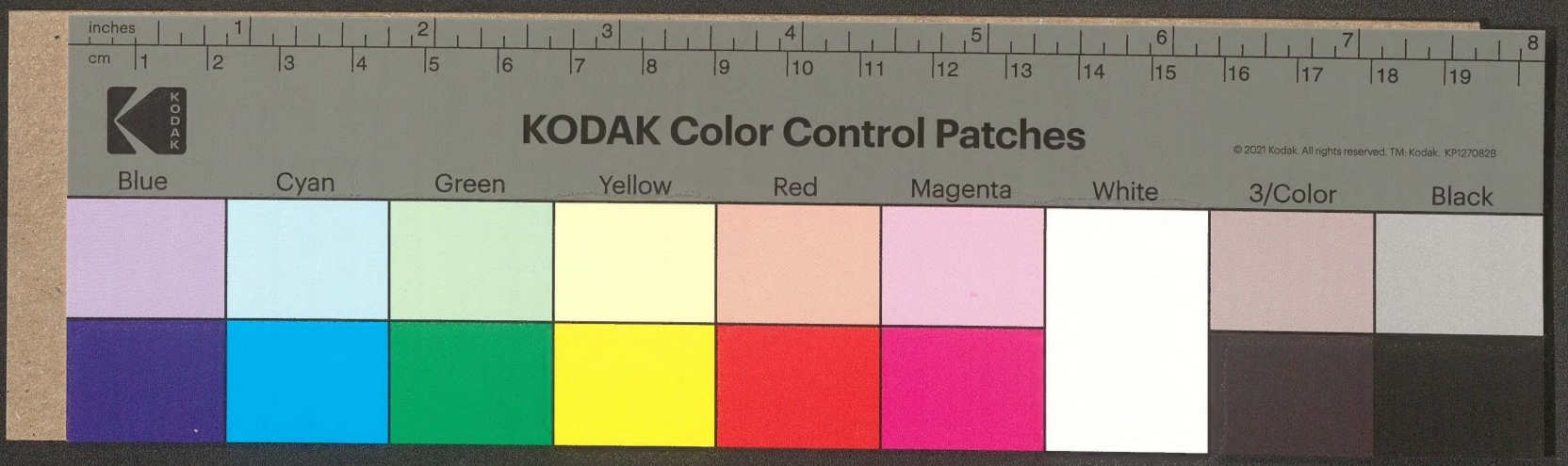

This PDF you are browsing now is in a series of several scanned documents by the Centre for the Study of Developing Societies (CSDS), Delhi

CSDS gratefully acknowledges the enterprise of the following savants/institutions in making the digitzation possible:

Historian, Writer and Editor Priyamvad of Kanpur for the Hindi periodicals (Bhavishya, Chand, Madhuri)

Mr. Fuwad Khwaja for the Urdu weekly newspaper Sadaqat, edited by his grandfather and father.

Historian Shahid Amin for faciliating the donation.

British Library's Endangered Archives Programme (EAP-1435) for funding the project that involved rescue, scan, sharing and metadata creation.

ICAS-MP and India Habitat Centre for facilitating exhibitions.

Digital Upload by eGangotri Digital Preservation Trust.